दिङ्नाग प्रणीता

कुन्दमाला



सम्पादक

कृष्ण कुमार धवन

शास्त्री, एम. ए. (संस्कृत-हिन्दी), एम. ओ. एल.

अध्यक्ष

संस्कृत-हिन्दी विभाग, आर्य कॉलेज, लुधियाना

प्राक्कथन लेखक

प्रो० रघुनन्दन शास्त्री

एम. ए., एम. ओ. एल.

सचिव

प्रकाशन विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय

संशोधक

प्रो० चारुदेव शास्त्री

एम. ए., एम. ओ. एल.

भूतपूर्व अध्यक्ष

संस्कृत विभाग, डी.ए.वी. कालेज लाहौर

प्रकाशक

भारतीय संस्कृत भवन

जालन्धर

प्रकाशक
कृष्णानन्द शास्त्री
भारतीय संस्कृत भवन,
पुस्तक विक्रेता तथा प्रकाशक
माई हीरां गेट,
जालन्धर नगर

मूल्य—तीन रुपए आठ आने

प्रथम संस्करण

१९५५

मुद्रक
श्री यश
वीर मिलाप प्रैस, जालन्धर
तथा
चरण दास शर्मा
भारत प्रिंटिंग प्रैस जालन्धर

प्राक्कथन

संस्कृत के नाटक-साहित्य में कुन्दमाला एक अपूर्व रचना है यद्यपि इस का प्रथम प्रकाशन इसी शती के तृतीय दशक में हुआ है, तथापि अपनी कला की चमत्कृति के कारण इस ने इस थोड़े समय में ही अनेक साहित्यज्ञों को अपनी ओर बलवत् आकृष्ट किया है। अनेक भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त डाक्टर ए. सी. बुलनर सरीखे अंग्रेज विद्वान् ने भी इस का अंग्रेजी रूपान्तर किया है। इधर हिन्दी में भी इसके दो-एक पद्य-गद्यात्मक रूपान्तर हो चुके हैं।

बात यह है कि इस नाटक की कला और टेकनीक में कुछ ऐसी विशेषताएं दीखती हैं जो संस्कृत के अन्य नाटकों में कम ही मिलती हैं। इस में न तो नाटकीय रूढ़ियों और परम्पराओं का यथावत् पालन दिया गया है और न वस्तु को आदर्शवाद के पालिश द्वारा अतिरंजित का यत्न है।

वाल्मीकि के सीता निर्वासन के कथानक से अनेक नाटककारों और कवियों ने प्रेरणा ली है। इन में भवभूति का उत्तरचरित और कुन्दमाला विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। परन्तु इन दोनों की टेकनीक और दृष्टिकोण में बहुत अन्तर है। नान्दी और प्रस्तावना आदि की जिस परम्परा का अनुसरण भवभूति ने किया है, निश्चय ही कुन्दमाला में उस से भिन्न किसी और पुरानी परम्परा का रूप मिलता है। निःसन्देह वह रूप भास की परम्परा के अधिक निकट प्रतीत होता है। दूसरे भास के मध्यम व्यायोग (घटोत्कच और भीम) और पंचरात्र (अर्जुन और अभिमन्यु) आदि के अनेक प्रसंगों में पिता पुत्र संमिलन की टेकनीक में जिन रुचियों का प्रदर्शन हुआ है, उनकी ठीक छाया हमें कुन्दमाला के पंचम अंक में मिलती है जहां राम का अपने पुत्रों से संमिलन दिखाया गया है। सब से बढ़ कर कुन्दमाला का 'छाया दृश्य' एक दम अनूठी चीज़ है जो वस्तुतः भवभूति को बहुत पीछे छोड़ जाती है। दो

हृदयों के कालुष्य को धोने के लिए कुन्दमाला ने भवभूति के समान तीसरे व्यक्ति की सहायता की अपेक्षा नहीं रखी।

सब से बढ़ कर कुन्दमाला की विशेषता यह है कि सीता वस्तुतः हाड-मांस की बनी सीता है। भवभूति ने सीता को आदर्शवाद के लेपन से इतनी कृत्रिम बना दिया है कि उसका मानुषी रूप एक दम लुप्त हो गया है। वह देवता बन गई है। निःसन्देह भवभूति की सीता 'स्वर्ण प्रतिमा' है, पर कुन्दमाला की सीता वाल्मीकि की सीता के अधिक निकट है और भवभूति की सीता आदर्शवाद की 'सीमातिगता प्रवृत्ति' का परिणाम है। कदाचित् वाल्मीकि के बाद कुन्दमाला ही एक ऐसी रचना है जिस में सीता के मानवीय रूप की एक झलक मिलती है। और यही एक विशेषता कदाचित इस की पुरातनता को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है।

कुन्दमाला का कर्ता कौन है, उस का ठीक नाम क्या है, उस का निर्माण काल क्या है, इत्यादि प्रश्न अभी तक विवादग्रस्त हैं और तब तक विवादग्रस्त रहेंगे जब तक कोई और पुष्कल और प्रकृष्ट प्रमाण उपलब्ध न होंगे। पर यह तो आखिर ऐतिहासिक की शिरोवेदना है इस की छान-बीन वही करता रहेगा। साहित्य रसिक के लिए तो कुन्दमाला अद्भुत रस से भरी हुई है। निर्माण कर्ता हलवाई का पता न होने पर भी तो लड्डू अपने आस्वाद से खाने वालों को चमत्कृत कर ही सकता है।

मुझे प्रसन्नता है कि संस्कृत के दो विख्यात विद्वानों ने कुन्दमाला का यह संस्करण प्रस्तुत किया है। आशा है इस से उन लोगों का पूर्ण हितसाधन होगा जिन के लिए यह तैयार किया गया है—

रघुनन्दन

६—६—१९५५

भूमिका

कुन्दमाला

संस्कृत साहित्य के अनेक अनमोल रत्न अभी तक प्रच्छन्न अवस्था में पड़े हैं। उन्हें खोज निकालने के लिए अथक प्रयत्न की आवश्यकता है। आज से प्रायः ३२-३३ वर्ष पूर्व संस्कृत जगत् को नाट्य दर्पण, सुभाषितावली, भाव प्रकाश, साहित्य दर्पण, शृंगारप्रकाश आदि ग्रन्थों में नामोल्लेख के अतिरिक्त 'कुन्दमाला' के विषय में कुछ भी ज्ञात न था। प्राचीन ग्रन्थों की खोज करने में दक्षिण भारत के विद्वानों ने विशेष प्रयत्न किया है। उन्हीं के उद्योग से हमें अनेक संस्कृत नाटक तथा अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं जिनमें से 'कुन्दमाला' एक है। सुव्यवस्थित रूप से खोज करने पर और भी अनेक ग्रन्थों के मिलने की सम्भावना की जा सकती है।

'कुन्दमाला' की अब तक छः हस्तलिखित प्रतियां मिली हैं। इन में से किसी में भी प्राकृत भाग की संस्कृत छाया नहीं है। 'कुन्दमाला' का प्रकाशन सर्वप्रथम १६२३ ईस्वी में मद्रास से हुआ था। सरल भाषा, उदात्तशैली तथा हृदयस्पर्शी कथा-वस्तु के कारण इस ने स्वल्प काल में ही अनेक पाठकों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। इस का अब तक अनेक आधुनिक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि अभी तक इस का मूलपाठ कई अंशों में खंडित तथा अशुद्ध मिलता है। कहीं कहीं कुछ ऐसे स्थल हैं जिन का संस्कृत रूपान्तर नहीं हो सका। हम ने अपनी ओर से इस न्यूनता को पूरा करने का प्रयत्न किया है पर अभी इस दिशा में विशेष परिश्रम की आवश्यकता है।

कर्तृत्व

'कुन्दमाला' के कर्तृत्व का प्रश्न विवादग्रस्त है। तंजोर से प्राप्त दो प्रतिलिपियों में नाटक के अन्त में इस का लेखक अनूपराध-वासी कवि **धीरनाग** लिखा है— 'अनूपराधस्य कवेर्धीरनागस्य।' धीरनाग एक प्रसिद्ध कवि प्रतीत होता है किंच उसका नाम एवं उसके पद्य 'सूक्ति मुक्तावली' तथा 'सुभाषितावली' में मिलते हैं। 'सूक्ति मुक्तावली' में उसका नाम 'भदन्त धीरनाग' लिखा है। जिससे वह बौद्ध प्रतीत होता है। 'कुन्दमाला' का रचयिता कदाचित् कोई बौद्ध नहीं हो सकता। इस की व्याख्या हम आगे करेंगे। 'सुभाषितावली' में इसके पांच श्लोक मिलते हैं परन्तु उनमें से एक भी 'कुन्दमाला' की उपलब्ध प्रतियों में नहीं, अतः उसे इस नाटक का कर्ता मानने में अनेक आपत्तियां हो सकती हैं।

राम चन्द्र-गुण चन्द्र ने अपने 'नाट्य-दर्पण' में इसका कर्ता वीरनाग बताया है— 'प्रकर्या यथा-वीर नाग निबद्धायां कुन्दमालायां सीतायास्तदपत्ययोः पालन संयोजनाभ्यां स्वफल निरवेक्षस्य वाल्मीकेः।' वीरनाग का 'नाट्यदर्पण' के अतिरिक्त सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में कहीं भी कुन्दमाला तथा उसके कर्ता का नाम एक साथ नहीं मिलता। लिपिकारों द्वारा **वीरनाग** के स्थान पर भ्रान्तिवश धीरनाग अथवा दिङ्नाग पढ़ा जाना भी कोई बड़ी बात नहीं।

मैसूर से प्राप्त प्रतिलिपियों की प्रस्तावना के अनुसार 'कुन्दमाला' का कर्ता अरारालपुर वासी **दिङ्नाग** है—'अरारालपुर वास्तव्यस्य कवेर्दिङ्नागस्य कृतिः कुन्दमाला नाम'। तंजोर से प्राप्त प्रतिलिपियों के अन्त में दिङ्नाग के स्थान पर 'धीरनाग' लिपिकार की त्रुटी प्रतीत होती है। नाटक के प्रारम्भ (प्रस्तावना) में यह त्रुटि सम्भव नहीं, किंच प्रत्येक लिपिकार प्रारम्भ में बड़ा सावधान होता है। अतः इस नाटक के कर्ता का नाम दिङ्नाग अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

दिङ्नाग एक प्रसिद्ध बौद्धाचार्य भी हुए हैं परन्तु 'कुन्दमाला' का लेखक दिङ्नाग तथा बौद्ध नैयायिक दिङ्नाग भिन्न २ व्यक्ति हैं। अन्तः-साक्ष्य के आधार पर स्पष्ट विदित होता है कि 'कुन्दमाला' का कर्ता ब्राह्मण धर्म का विरोधी कोई बौद्ध आचार्य नहीं हो सकता। 'कुन्दमाला' के प्रारम्भ में गणेश तथा शिव की स्तुति की गई है। नाटक के अन्य अनेक स्थलों से भी प्रतीत होता है कि इसके लेखक का पौराणिक हिन्दू धर्म पर दृढ़ विश्वास था। तथा च, बौद्ध आचार्य दिङ्नाग काञ्ची (वर्तमान कांजीवरम) के समीपस्थ सिंहवक्त्र का निवासी था जब कि 'कुन्दमाला' का लेखक अरारालपुर अथवा अनूपराध का। दूसरे, दिङ्नागाचार्य ईसा की चौथी-पांचवी शताब्दी में हुए हैं, 'कुन्दमाला' का उल्लेख भवभूति (७०० ई० के आसपास) के पूर्ववर्ती साहित्य में कहीं भी नहीं। 'कुन्दमाला' की कथावस्तु का आधार भी मुख्यतः भवभूति का 'उत्तररामचरितम्' है। अतः दिङ्नाग निश्चित रूप से भवभूति के पश्चात् हुआ है। 'कुन्दमाला' का सर्वप्रथम उल्लेख रामचन्द्र-गुणचन्द्र कृत 'नाट्य दर्पण' (११०० ई०) में मिलता है। अतः वर्तमान खोजों के आधार पर 'कुन्दमाला' का लेखक दिङ्नाग (वीरनाग) कवि सिद्ध होता है जो कि पौराणिक ब्राह्मण था। उसका स्थितिकाल ७०० ई० से ११०० ई० के बीच निर्धारित किया जा सकता है। 'कुन्दमाला' की प्राकृत तथा इस नाटक में अंकित धार्मिक तथा सामाजिक अवस्था भी इसी काल की ओर संकेत करती है।

जीवन

संस्कृत के अधिकतर कवियों का स्थितिकाल तथा उनकी जीवनी अनिश्चित है। वे सब कवि अपने विषय में मौन ही रहे हैं किंच उनका एकमेव उद्देश्य ज्ञान-विस्तार तथा सरस्वती की आराधना करना होता था न कि आत्म प्रख्यापना। संस्कृत साहित्य में एक यह त्रुटि अवश्य है कि मुख्य साहित्यकारों की जीवनी का उल्लेख अन्यत्र भी कहीं प्राप्य नहीं। उनका

स्थितिकाल तथा जीवन निर्धारित करने के लिए अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग साक्ष्यों पर ही आश्रित रहना पड़ता है।

दिङ्नाग के जीवन का इतिहास भी कहीं उपलब्ध नहीं। नीचे 'कुन्द-माला' के आधार पर ही उनके जीवन का अनुमानतः निरूपण किया गया है।

नाटक में प्रस्तुत वातावरण, नाटक की शैली एवं उसके वर्णन से प्रतीत होता है कि दिङ्नाग सुदूर दक्षिण भारत अथवा लंका का निवासी था। राम, लक्ष्मण, सीता, कौशिक आदि नंगे पांव चलते हुए वर्णित किए गए हैं। यह विशेषतः दक्षिण की ही प्रादेशिक तथा सामाजिक प्रथा है। नाटक में मुख्यतः ग्रीष्मकाल का वर्णन हुआ है। यह भी नाटककार के ग्रीष्म प्रधान दक्षिण देश का होने की ओर संकेत करता है। नाटक में प्राकृत का बहुलता से प्रयोग भी सुदूर दक्षिण अथवा लंका का ही प्रभाव है। प्रस्तावना के अनुसार दिङ्नाग अरारालपुर नामक नगर का वासी था तथा कुछ प्रतियों के अन्त में किए निर्देश के अनुसार अनूपराध का। अधिकतर विद्वानों के मत का झुकाव उसके अरारालपुर निवासी होने की ओर है। वह प्रस्तावना को ग्रन्थ की समाप्ति पर किए उल्लेख से अधिक विश्वसनीय समझते हैं। परन्तु प्राचीन ग्रन्थ लिपि, जिसमें 'कुन्दमाला' की मूल हस्तलिखित प्रतियां मिली हैं, की लेखन रीति कुछ ऐसी है कि उस में भ्रान्तिवश अनूपराध के स्थान पर अरारालपुर पढ़ा जाना सम्भव है। लिपिकारों से भी यह स्खलन हुआ प्रतीत होता है। किंच अभी तक अरारालपुर नामक कोई नगर नहीं मिला और अनूपराध लङ्का में स्थित है। अतः हम दिङ्नाग को अनूपराध का निवासी समझते हैं।

दिङ्नाग के स्थितिकाल के विषय में ऊपर नाटक के कर्तृत्व के प्रश्न पर विचार करते समय विस्तार से उल्लेख किया जा चुका है कि वह ७०० ई० तथा ११०० ई० के बीच कहीं हुआ है।

दिङ्नाग कट्टर पौराणिक ब्राह्मण था तथा देवी देवताओं पर इसकी पूर्ण आस्था थी। नाटक में शिव की स्तुति तथा उसके माहात्म्य का बार

बार विशेषरूपेण उल्लेख होने से प्रतीत होता है कि वह शैव ब्राह्मण था। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर उसे सामवेदी ब्राह्मण भी कहा जा सकता है। कुन्दमाला में स्थान स्थान (II 9, IV. 4, IV. 9, IV. 10) पर बड़े उत्साह के साथ सामवेद का नाम निर्देश करता है। VI. 45 में तो उसने 'वेदाः' के साथ 'साम' का पृथक् उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त सामवेद के उपवेद गान्धर्ववेद का भी दिङ्नाग ने सम्मान पूर्वक निर्देश किया है। सन्ध्या, अग्निहोत्र, अतिथि पूजा आदि के बारम्बार सविशेष उल्लेख होने से प्रतीत होता है कि वह पक्का कर्मकांडी था। उसे लोगों में प्रचलित अन्धविश्वास पूर्ण बातों पर भी विश्वास था। अतएव उसने 'कुन्दमाला' के पंचम अंक में विदूषक से कहलवाया है—'यः किल अराघवः इमं सिंहासनमधिरोहति तस्य मूर्द्धा शतधा शतधा विदलति—इति।'

दिङ्नाग को संगीत से विशेष प्रेम था तथा उसे सामवेद के अतिरिक्त गान्धर्व वेद, नारदीय शिक्षा वा वीणा—वादन में विशेष रुचि थी। नाटक में उसने कई स्थानों पर संगीत के मोहक प्रभाव का वर्णन किया है, और तो और उसके घोड़े वा हाथी भी संगीत की मधुरतान में मस्त हो जाते हैं। दिङ्नाग का व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन, आयुर्वेद तथा नाट्य शास्त्र पर पूर्ण अधिकार था। इस बात के अनेक प्रमाण हमें 'कुन्दमाला' से मिलते हैं।

दिङ्नाग ने कहीं भी राजसी ठाठबाट का ऐश्वर्यपूर्ण वर्णन नहीं किया। वह सदा वनों तथा आश्रमों के सरल जीवन का ही वर्णन करता है। इस से हम अनुमान लगा सकते हैं कि वह बड़ा धार्मिक तथा एकान्त प्रिय व्यक्ति था।

कथा

प्रथम अंक

विघ्नों का विनाश करने के लिए गणेश की स्तुति (नान्दी) के पश्चात् सूत्रधार दर्शक समाज की रक्षा के लिए शिव की जटाओं से प्रार्थना कर के सभासदों को अभी नाटक एवं उस के रचयिता का परिचय ही करा रहा होता है कि पर्दे के पीछे से लक्ष्मण के 'आर्या इधर आईए', शब्द सुनाई देते हैं। सूत्रधार के मुख से दर्शकों एवं पाठकों को ज्ञात होता है कि रावण के आश्रय में चिर काल तक रहने के कारण सीता के चरित्र के विषय में प्रचलित लोक-निन्दा के भय से घबरा कर राम ने गर्भिणी सीता का परित्याग कर दिया है तथा लक्ष्मण उसे वन में छोड़ने जा रहा है। (स्थापना)

वृक्षों तथा लताओं के जाल से भरे हुए गंगा-तट के वनों में रथ के न जा सकने के कारण सीता तथा लक्ष्मण, गंगा की धारा के साथ साथ सुखद समीर में धीरे धीरे पैदल ही चलते हैं। गर्भ-भार के कारण सीता शीघ्र ही थक जाती है तथा विश्राम करने के लिए एक वृक्ष की छाया में बैठ जाती है। विश्राम कर चुकने पर लक्ष्मण सीता को सूचित करता है कि राम ने लोकापवाद के भय से उसका परित्याग कर दिया है। सीता यह वज्र-कठोर समाचार सुनते ही मूर्छित हो जाती है। गंगा की शीतल पवन की कृपा से सचेत होने पर लक्ष्मण, निष्कारण परित्याग का विरोध करती हुई तथा आत्म हत्या करने के लिए प्रस्तुत, सीता को सान्त्वना देते हुए कहता है कि राम को उसके चरित्र पर अणुमात्र भी संदेह नहीं, नाही सीता के प्रति उसका प्रेम शिथिल हुआ है। उसने तो केवल उसके रावण के आश्रम में दीर्घ काल तक निवास करने के कारण उसके चरित्र के विषय में प्रचलित लोकापवाद के कलङ्क से अपने निर्मल रघुकुल को बचाए रखने के लिए उसका परित्याग किया है तथा उसके प्रवास काल में वह स्वयं राज–प्रासाद में भी वनवासी के समान ही रहेगा

एवं किसी भी अवस्था में दूसरा विवाह न करेगा। लक्ष्मण, सीता को शोक-वश आत्म-हत्या करने से भी रोकता है, किंच ऐसा करने पर तो रघुकुल का सर्वनाश हो जाएगा। प्रत्युत्तर में सीता राम को सन्देश भेजती है कि वह भी अपने स्वास्थ्य की ओर सावधान रहे तथा उसके शोक में प्रजा के प्रति अपने कर्तव्य से कदाचित् न चूके।

सीता को वन में अकेले छोड़ कर जाता हुआ लक्ष्मण वन देवताओं, ऋषियों, लोकपालों, पर्वतों तथा गंगा से प्रार्थना करता है कि वह सीता की रक्षा करे। उधर से महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्यों से विपत्ति की मारी किसी रोती हुई अबला के विषय में सुन कर तत्काल वहां पहुंचते हैं। वह सीता का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् योगशक्ति से सीता को निर्दोष जान कर उस की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लेते हैं तथा उसे अपने आश्रम में ले जाते हैं। सीता यहीं पर भगवती गंगा से प्रार्थना करती है कि यदि उसे सकुशल प्रसव हो गया तो वह प्रति दिन उसे एक कुन्दमाला भेंट किया करेगी।

द्वितीय अंक

दो मुनिकन्याओं के सम्वाद से हमें पता चलता है कि महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में सीता ने कुश तथा लव नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। वह अब दस वर्ष के हो गए हैं तथा वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' पढ़ते हैं। उधर राम ने नैमिशवन में अश्वमेध का आयोजन किया है तथा वाल्मीकि प्रभृति सब ऋषियों को निमन्त्रित किया है। (प्रवेशक)

सीता आश्रम में सदा शोक में डूबी रहती है। उस की सखी वेदवती उसे सान्त्वना देते हुए निर्दय राम द्वारा उस पर किए गए अत्याचार की याद दिला कर उसे राम के लिए दुखित होने से रोकती है। सीता का राम के प्रति दृढ़ अनुराग है तथा उसे विश्वास है कि राम भी उसे वैसे ही प्रेम करता है। वह किसी से भी राम को 'अपराधी' 'निर्दय' आदि सुनने को तैयार नहीं और इसीलिए वेदवती के उक्त कथन का प्रतिवाद करती है। पुनः

वेदवती उसे कहती है कि राम अश्वमेध में अन्य स्त्री का हाथ पकड़ेंगे तो सीता अति करुणापूर्ण शब्दों में उत्तर देती है कि उस का 'राम के हृदय पर अधिकार है, हाथ पर नहीं।' वेदवती उसे सान्त्वना देती है कि उस के प्रवास के दिन समाप्त होने को हैं। इतने में नेपथ्य से एक ऋषि की ध्वनि सुनाई देती है कि सभी आश्रमवासी राम द्वारा आयोजित अश्वमेध के अवसर पर नैमिशवन में पहुंचें सीता यह सुनते ही कुश-लव के प्रस्थान मंगल की तैयारी के लिए वहां से चल पड़ती है।

तृतीय अंक

सीता, कुश तथा लव नैमिशवन में पहुंच जाते हैं तथा राम-लक्ष्मण नैमिश वन में स्थित वाल्मीकि के आश्रम को, गोमती नदी के किनारे किनारे जा रहे होते हैं। (प्रवेशक)

मार्ग में राम निष्कारण सीता को निर्वासित करने के कारण अत्यधिक सन्तप्त दीखता है तथा लक्ष्मण से परिवेदना पूर्ण वर्तालाप करते हुए आगे बढ़ता है। लक्ष्मण उसके चित्त को शान्त करने के लिए उसका ध्यान गोमती नदी के सुन्दर दृश्य की ओर खींचता है। दोनों की दृष्टि एक साथ नदी के प्रवाह में बहती हुई एक कुन्द पुष्पों की माला पर पड़ती है। राम देखते ही पहचान लेता है कि हो न हो, वह माला सीता के हाथों की गुथी हुई है। जिधर से माला आ रही होती है, दोनों सीता की खोज में उधर ही चल पड़ते हैं। उस ओर से आती हुई वेद ध्वनि तथा धुएं से राम अनुमान लगाते हैं कि वाल्मीकि का आश्रम निकट ही है। थोड़ी दूर आगे जाने पर लक्ष्मण की दृष्टि किसी स्त्री के पद चिन्हों पर पड़ती है। राम उनके कोमल विन्यास तथा आकार से झट पहचान लेता है कि वह सीता के ही हैं। अब वह दोनों उन पद चिन्हों का अनुसरण करते हैं। कठोर भूमि पर वे चिन्ह ओझल हो जाते हैं तथा वह दोनों थकावट दूर करने के लिए समीपस्थ लताकुंज में बैठ जाते हैं।

उधर सीता फूल बीन रही होती है तथा वृक्षों की आड़ में उन दोनों के परस्पर वार्तालाप को सुनती है। राम को अपने विषय में अत्यधिक सन्तप्त होते देख कर सीता बड़ी कठिनता से अपने आपको उनके सम्मुख जाने से रोक पाती है। इतने में वाल्मीकि द्वारा प्रेषित ऋषि बादरायण राम और लक्ष्मण को खोजता हुआ उन्हें वाल्मीकि के पास लिवा लाने के लिए उसी कुंज में आ पहुंचता है।

चतुर्थ अंक

चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में वेदवती नामक आश्रमकन्या अपनी सखी यज्ञवेदि को बताती है कि तिलोत्तमा नामक अप्सरा सीता का रूप धारण कर राम के सम्मुख जावेगी तथा सीता सा आचरण करती हुई सीता के प्रति उस के प्रेमभाव को जांचेगी। यज्ञवेदि जब उसे कहती है कि उन की इस मन्त्रणा को राम के मित्र कौशिक (विदूषक) ने सुन लिया है तो वेदवती तिलोत्तमा को वैसा करने से रोकने का निश्चय कर लेती है। इन्हीं के संवाद से हमें यह भी ज्ञात होता है कि वाल्मीकि के दिव्य प्रभाव से आश्रम की बावड़ी पर स्थित स्त्रियों को कोई पुरुष देख न सकेगा और सीता आजकल सारा दिन बावड़ी के तट पर ही बैठी रहती है। तदनन्तर वेदवती तिलोत्तमा के पास चली जाती है तथा यज्ञवेदि सीता के पास। (प्रवेशक)

सीता बावड़ी के तट पर पूर्व वनवास काल में चित्रकूट की वनदेवता मायावती द्वारा उपहार में दिया शाल ओढे बैठी है तथा अपने दुःखों को स्मरण करती हुई विलाप कर रही होती है। यज्ञवेदि उसे शान्त करती है तथा पास ही राजहंसों के क्रीड़ामग्न जोड़े की ओर देख कर मनोविनोद करने को कह वहां से चली जाती है। इतने में, उधर से राम के साथ उस का बचपन का साथी कण्व 'वाल्मीकि के आदेश से' वन की सुषमा दिखला कर राम का मनोविनोद करने के लिए आता है। जब कण्व सन्ध्याकालीन नित्यकर्म सम्पादित करने के लिए राम को अकेले छोड़ कर चला जाता है तो राम

धुएं से पीड़ित नेत्र बावड़ी में धोने के लिए जाता है। वहां उसे सीता का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है उसे साक्षात् न पाने पर मूर्च्छित हो जाता है। तत्काल सीता अपने स्पर्श से उसे सचेत करती है। वह उसे सामने आने केलिए प्रार्थना करता है। सीता अव्यक्त रूप से उसे उत्तर भी देती जाती है। अपने प्रयत्न में असफल होने पर राम पुनः मूर्च्छित हो जाता है। सीता इस बार अपने आंचल से हवा कर के उसे सचेत करती है तथा राम सचेत होते ही सीता का शाल खींच लेता है और पहचान लेता है कि वह सीता का ही है। वह आदर पूर्वक उसे ओढ़ लेता है तथा अपना उतार देता है जिसे कि सीता उठा लेती है। तत्पश्चात् सायंकाल हो जाने पर सीता आश्रम को लौट जाती है।

राम इस घटना पर आश्चर्यपूर्वक विचार कर ही रहा होता है कि विदूषक आ कर राम को प्रातःकाल वेदवती तथा तिलोत्तमा के बीच, तिलोत्तमा का सीता का रूप धारण कर के राम के सम्मुख उपस्थित होने की छिप कर सुनी हुई बात सुनाता है। अब राम को विश्वास हो जाता है कि उसके साथ तिलोत्तमा ने ही उपहास किया है।

पंचम अंक

अगले दन प्रातः विदूषक तपस्वियों के एकत्र होने के समय की घोषणा करता है तथा राम को अपने साथ सभा मण्डप की ओर ले जाता है। राम अभी कल की बीती घटना पर विस्मय पूर्वक विचार कर रहा होता है। उस का मन नहीं मानता कि वह सब धोखा था, क्योंकि सीता का प्रतिबिम्ब देखने से, सीता परित्याग के पश्चात मृतप्रायः से उसके मन में नवीन चेतना का आविर्भाव हो गया था। सीता का ही बार बार स्मरण करते हुए राम पर विदूषक दोष लगाता है कि वह वाणी मात्र से सीता को चाहता है, हृदय से नहीं अन्यथा उसका परित्याग क्यों करता। प्रत्युत्तर में राम अपने को निर्दोष सिद्ध करता है। दोनों ही सीता के प्रसङ्ग से अत्यधिक सन्तप्त हो उठते हैं।

तपस्वियों के आने का समय निकट होने के कारण राम विदूषक को बाहर देखने के लिए भेजता है कि सभी द्वारपाल निश्चित स्थान पर खड़े हैं कि नहीं। विदूषक, वापसी पर राम को सूचित करता है कि बाहर बिल्कुल राम-लक्ष्मण से मिलती जुलती आकृति वाले दो तपस्वी-बालक खड़े हैं तथा वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' राम को सुनाने के लिए आए हैं। राम यह सुनते ही उत्कंठित हो जाता है तथा उन्हें शीघ्र ही भीतर लिवा लाने का आदेश देता है।

कुश तथा लव के भीतर प्रवेश करने पर उनको देखते ही राम के मन में विचित्र भावों का उदय होता है तथा उसके नेत्रों में आंसू छलछला उठते हैं। सीता ने लव को, राजा को प्रणाम करने तथा उसका कुशल समाचार पूछने का आदेश दिया था। स्वाभिमानी कुश पहले तो प्रणाम करने का विरोध करता है परन्तु राजा के सम्मुख जाते ही दोनों के सिर सहसा झुक जाते हैं। राम तपस्वी-बालकों को प्रणाम करते देख कर घबरा उठता है तथा उनका वही प्रणाम उनके गुरु के चरणों की भेंट कर देता है। तत्पश्चात् राम सिंहासन पर उन्हें अपनी गोदी में बिठा लेता है तथा प्रेमपूर्वक उनका आलिंगन करता है। उनके स्पर्श से राम को पुत्र-सुख का सा आनन्द अनुभव होने लगता है तथा सोचता है कि यदि सीता को भी सकुशल प्रसव हो गया होगा तथा उसकी सन्तान जीवित होगी तो वह भी अब तक उतनी बड़ी हो गई होगी।

इतने में विदूषक चिल्ला उठता है कि राम कुश-लव को नीचे उतारे, किंच रघुवंशियों के अतिरिक्त जो कोई उस सिंहासन पर बैठता है उस का सिर चूर चूर हो जाता है। राम तत्काल उन्हें नीचे उतार देता है तथा देख कर हैरान होता है कि राजसिंहासन पर बैठने के कारण उन्हें कोई आघात नहीं पहुँचा। उनसे प्रश्न करने पर राम को ज्ञात होता है कि वह दोनों जुड़वें भाई हैं, सूर्यवंशी हैं तथा उनका गुरु महर्षि वाल्मीकि है। वह यह भी बताते हैं कि उनके पिता को उनकी माता 'निर्दय' नाम से पुकारती है तथा उनकी माता को

वाल्मीकि 'वधू' एवं अन्य आश्रमवासी 'देवी' कहते हैं। इन सब बातों से रामका सन्देह दृढ़ हो जाता है कि वह सीता की ही सन्तान हैं तथा वह और भी अधिक अशांत हो जाता है। इतने में, नेपथ्य से कुश-लव को सम्बोधित करती हुई ध्वनि आती है कि वह 'रामायण' का गान प्रारम्भ करें राम रामायण सुनने के लिए मित्रों एवं सम्बन्धियों को वहां एकत्र होने के लिए सन्देश भेजता है।

षष्ठ अंक

सब के सभा मण्डप में एकत्र हो जाने पर राम की आज्ञा से कुश तथा लव दशरथ के विवाह से लेकर सीता-निर्वासन तक 'रामायण' की कथा सुनाते हैं। राम के वहां संदेह पड़ जाता है कि सम्भवतः सीता की मृत्यु हो जाने के कारण वाल्मीकि ने इसके आगे की कथा अप्रिय प्रसंग वश वहीं समाप्त कर दी होगी। तथापि आगे का प्रसंग जानने के लिए कण्व को बुलाया जाता है। कण्व तीन और श्लोकों में कथा पूरी करता है तथा उन्हें बतलाता है कि कुश और लव राम की ही सन्तान हैं। यह समाचार सुनते ही भावावेश में राम, लक्ष्मण, कुश तथा लव मूर्छित हो जाते हैं।

इतने में वाल्मीकि सीता के साथ प्रवेश करता है तथा वह दोनों सब को सचेत करते हैं। वाल्मीकि राम को, सीता की अग्नि-परीक्षा ले लेने पर भी केवल कुछ उच्छृङ्खल लोगों के कहने से उसका परित्याग करने के कारण कड़े शब्दों में डांटता है तथा तत्पश्चात् सीता को अपनी सच्चरित्रता प्रमाणित करने के लिए आदेश देता है। सीता भरी सभा में सब देवताओं, ऋषियों, लोकपालों तथा रघु प्रवर्तक सूर्यदेव को सम्बोधित करके शपथ पूर्वक कहती है कि वह सर्वथा शुद्ध चारित्रा है तथा पृथ्वी देवी से प्रार्थना करती है कि वह साक्षात् प्रकट हो कर सब के सम्मुख घोषित करे कि सीता सच्चरित्र-सम्पन्न पतिव्रता है वा नहीं।

सीता के पातिव्रत्य तेज के बल से पृथ्वी देवी भूतल से सहसा वहां

प्रकट होकर सब को विश्वास दिलाती है कि सीता का चरित्र सर्वथा पुनीत एवं निष्कलङ्क है एवं उसने कभी मन से भी राम के अतिरिक्त अन्य पुरुष का चिन्तन नहीं किया। तत्पश्चात् पृथ्वी देवी अन्तर्हित हो जाती है तथा राम सीता को स्वीकार कर लेता है।

अब राम लक्ष्मण को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता है परन्तु लक्ष्मण की ही अभ्यर्थना पर उसे इस उत्तरदायित्व से मुक्त कर ज्येष्ठ पुत्र कुश को इस पद के लिए निश्चित करता है। तदनन्तर वाल्मीकि, राम के कहने पर कुश को सम्राट पद पर तथा लव को युवराज पद पर अभिषिक्त करता है। अन्त में, हर्षपूर्ण वातावरण में वाल्मीकि सब को आशीर्वाद देते हैं और नाटक समाप्त हो जाता है।

कथावस्तु का आधार

'कुन्दमाला' की कथा वाल्मीकि—रामायण के उत्तर काण्ड तथा भवभूति द्वारा रचित 'उत्तर राम चरितम्' से ली गई है। मुख्यकथा—लोकापवाद के कारण सीता-परित्याग, प्रवास काल में उस का वाल्मीकि-आश्रम में निवास नैमिशवन में राम का अश्वमेध करना, कुश तथा लव का राम को रामायण सुनाना आदि—का आधार 'वाल्मीकि रामायण है तथा शेष स्थलों वाल्मीकि आश्रम में सीता का राम तथा अन्य पुरुषों के लिए अदृश्य होना, पृथ्वी देवी का स्वयं आ कर सीता की चरित्र-शुद्धि प्रमाणित करना, सीता-राम पुनर्मिलन आदि की रचना भवभूति के 'उत्तर राम चरितम्' अनुसार की गई है। पंचम अंक में नाटककार बहुत कुछ कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के सप्तम अंक से प्रभावित हुआ दीखता है। इस में राम का कुश-लव को पहचानने तथा सीता-राम के पुनर्मिलन के दृश्य दुष्यन्त के भरत को पहचानने तथा दुष्यन्त-शकुन्तला पुनर्मिलन के दृश्यों के समान ही अंकित किए गए हैं। प्रथम अङ्क में सीता को वन में अकेले छोड़ने पर सहानुभूति वश शोक-विधुर पशु-पक्षियों के दुःख के वर्णन पर भी 'शाकुन्तलम्' में कालिदास द्वारा वर्णित शकुन्तला के पति-गृह जाने के समय मृगों, मयूरों तथा लताओं के शोक के वर्णन की छाप है। (देखिए कुन्दमाला' I. 18 तथा 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्')

नाटक में मानवीय स्वभाव के चित्रण, नाटकीय प्रभाव में उत्कर्ष तथा अभिनय में सुकरता लाने के उद्देश्य से दिङ्नाग ने अपने पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं में प्रस्तुत अनेक स्थलों में परिवर्तन एवं परिवर्धन किए हैं।

परिवर्तन वा परिवर्धन

क १. 'रामायण' में राम, लक्ष्मण को सीता को गंगा के पार तमसा नदी के तट पर स्थित वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आने के लिए आदेश देता

है वहां पहुंचने के लिए नाव द्वारा गंगा को पार करना पड़ता है। नाव द्वारा गंगा पर करने का दृश्य रंगमंच पर प्रस्तुत करना अति कठिन है अतः 'कुन्दमाला' में वाल्मीकि का आश्रम गंगा-तट पर स्थित दिखलाया गया है।

२. 'रामायण' में सीता को वन में छोड़ने पूर्व लक्ष्मण बता देता है कि उसे वाल्मीकि के आश्रम के निकट छोड़ा जा रहा है। उधर, वाल्मीकि भी सीता के आगमन को जान लेता है।

'आयान्ती चासि विज्ञाता मया धर्म समाधिना।'

'कुन्दमाला' में माल्मीकि तथा सीता को ऐसा कुछ ज्ञान नहीं।

(उत्तर काण्ड)

३. अंक २—४ तक की कथा 'रामायण' में बिल्कुल नहीं पाई जाती।

४.—'रामायण' में सीता अन्त में पृथ्वी में समा जाती है। नाट्यशास्त्र के नियमानुसार नाटक को दुःखान्त बनाना तथा उसमें मृत्यु दिखाना वर्जित है अतः 'कुन्दमाला' में 'उत्तररामचरितम्' के समान सीता-राम का पुनर्मिलन दिखाया गया है।

५.—पुनर्मिलन के पश्चात् 'कुन्दमाला' में कुश तथा लव को क्रमशः महाराज तथा युवराज पद पर अभिषिक्त किया जाता है। 'रामायण' तथा 'उत्तर राम चरितम्' में ऐसा नहीं हुआ।

ख १. 'उत्तर राम चरितम्' में करुण रस के अतिरिक्त अश्वमेध का घोड़ा रोक लेने पर कुश-लव का राम की सेना के साथ युद्ध वर्णन के द्वारा वीर रस का भी समावेश किया गया है। 'कुन्दमाला' में इस का अभाव है। यह केवल करुणरस पूर्ण नाटक है। कहीं कहीं 'उत्तररामचरितम्' के समान विप्रलम्भ शृङ्गार की झलक अवश्य मिलती है।

२. 'उत्तररामचरितम्' में संस्कृत नाटकों में प्रायः पाए जाने वाले विदूषक नामक पात्र का अभाव है। 'कुन्दमाला' में यह है। राम नाटकों में

सम्भवतः 'कुन्दमाला' ही एक ऐसा नाटक है जिसमें विदूषक पाया जाता है।

३. 'उत्तर राम चरितम्' में सीता कुश लव के स्तन्य-त्याग के पश्चात् उन्हें वाल्मीकि-आश्रम में छोड़ कर स्वयं पाताल चली जाती है। 'कुन्दमाला' में पूर्ण प्रवास काल वह वाल्मीकि आश्रम में ही बिताती है तथा कुश लव उस के साथ रहते हैं।

४. भवभूति ने सीता का प्रवास काल १२ वर्ष दिखलाया है; दिङ्नाग ने १० वर्ष।

५. 'उत्तर राम चरितम्' में सीता को ज्ञान है कि उस के गर्भ में दो शिशु हैं परन्तु 'कुन्दमाला' की सीता इस विषय में अनभिज्ञ है।

६. 'उत्तर राम चरितम्' में राम शम्बूक वध के कारण पुनः वन में जाता है तथा वहीं सीता के सम्पर्क में आता है। वहां वह पंचवटी में भी जाता है। 'कुन्दमाला' में वह अश्वमेध के कारण केवल नैमिशवन में जाता है।

७. 'उत्तर राम चरितम्' में सीता भगवती गंगा के वरदान के फलस्वरूप पुरुषों के लिए अदृश्य रहती है, 'कुन्दमाला' में वाल्मीकि के वर से। भवभूति ने सीता के प्रतिबिम्ब के अदृश्य होने की ओर कोई स्पष्ट संकेत नहीं किया नाही गंगा ने सीता को ऐसा वर दिया था तथापि राम और वासन्ती उसे देख नहीं पाते, दिङ्नाग ने भवभूति की इस त्रुटि को दूर किया है तथा छाया दृश्य का समावेश करके नाटक के सौन्दर्य एवं उसकी रोचकता में अभिवृद्धि की है।

८. 'उत्तररामचरितम्' में अदृश्य सीता मूर्च्छित राम को सचेत करने के लिए केवल उसका स्पर्श करती है। 'कुन्दमाला' में आंचल से हवा करती है तथा आलिंगन भी।

९. 'उत्तररामचरितम्' में राम अदृश्य सीता का हाथ पकड़ लेता है, कुन्द-

माला' में वह उसका शॉल (उत्तरीय) खींच लेता है तथा दोनों परस्पर शॉल बदल लेते हैं।

१०. 'उत्तररामचरितम्' में राम, प्रवास काल में सीता के सम्पर्क में केवल एक बार आता है। 'कुन्दमाला' में दो बार, एक बार अंक ३ में दूसरी बार अंक ४ में।

११. 'उत्तर राम चरितम्' में राम सीता को केवल उसके स्पर्श से पहचानता है। 'कुन्दमाला' में उसके वास स्थान की ओर से आती हुई वायु, चरण-चिन्हों, जल में पड़ते हुए प्रतिबिम्ब, आलिंगन तथा वनदेवता मायावती के दिए हुए शॉल से।

१२' 'उत्तररामचरितम्' में कुश-लव को ज्ञान नहीं कि वह सूर्यवंशी हैं। 'कुन्दमाला' में वे यह जानते हैं। इससे रामको उन्हें शीघ्र पहचानने में सहायता मिलती है।

१३. 'कुन्दमाला' में कुश-लव को राम अपने साथ सिंहासन पर बिठलाता है। कौशिक जब राम को कहता है कि 'यः किल अराघवः इमं सिंहासन-मधिरोहति तस्य मूर्द्धा शतधा शतधा विदलति' तो राम उन्हें नीचे उतार देता है। परन्तु कुश-लव को इस से कोई क्षति नहीं पहुंचती। इस से राम का सन्देह दृढ़ होता है कि वह उस की सन्तान हैं। 'उत्तर राम चरितम्' में कुश-लव के जृम्भकास्त्र के प्रयोगसे राम उन्हें पहचानने में समर्थ होता है।

१४. 'उत्तर राम चरितम्' में वाल्मीकि द्वारा आयोजित नाटक के अन्तर्गत दूसरे नाटक में कुश-लव राम को 'रामायण' सुनाते हैं, 'कुन्दमाला' में राम द्वारा आयोजित सभा मण्डप में। दोनों नाटकों में राम रामायण-श्रवण के अनन्तर पुत्रों को पहचानता है।

१५. 'उत्तर राम चरितम्' में सीता की चरित्र-शुद्धि प्रमाणित करने के लिए गंगा तथा पृथ्वी स्वयं सीता को साथ ले कर रामादि के समक्ष उपस्थित

होती हैं, सीता उन्हें नहीं कहती। कुन्दमाला' में सीता एतदर्थ स्वयं पृथ्वी का आह्वान करती है।

१६. 'उत्तररामचरितम्' में राम द्वारा सीता को स्वीकार करने के पश्चात् नाटक समाप्त हो जाता है। 'कुन्दमाला' में अंत में कुश-लव का क्रमशः सम्राट् तथा युवराज पद पर अभिषेक किया गया है। इस से नाटक की कथा पूर्णता आ गई है।

इन के अतिरिक्त दोनों नाटकों में और भी अनेक समानताएं तथा विभिन्नताएं हैं। ये सब परिवर्तन नाटक कार की नाट्यकुशलता का परिचय देते हैं। इनसे नाटक की रोचकता में अभिवृद्धि होने के साथ नाटकीय वातावरण में पर्याप्त स्वभाविकता भी आ गई है।

—o—

धार्मिक और सामाजिक परिस्थिति

प्रत्येक साहित्यिक रचना अपने काल की परिस्थितियों की परिचायक होती है। जिस रचना में उस काल की परिस्थिति का सच्चा प्रतिफलन नहीं होता आलोचक उसकी गणना वास्तविक साहित्य में करने से हिचकिचाते हैं। 'कुन्दमाला' नाटक इस कसौटी पर पूरा उतरता है। इस के अध्ययन से हमें तात्कालीन धार्मिक तथा सामाजिक दशा का स्पष्ट परिचय मिलता है।

दिङ्नाग के समय पौराणिक हिन्दु धर्म पूर्णता को प्राप्त हो चुका था। देवी देवताओं की पूजा खूब प्रचलित हो चुकी थी तथा लोगों की उन पर पूर्ण श्रद्धा थी। नाटक के प्रारम्भ में की गई गणेश तथा शिव की स्तुति तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश का सम्मान पूर्ण उल्लेख इसी बात का द्योतक है। अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए मनौतियां मानी जाती थीं। सीता सकुशल प्रसव होने पर गंगा को प्रतिदिन कुन्दमाला भेंट चढ़ाने की प्रतिज्ञा करती है। उस काल में अवतारवाद का भी खूब प्रचलन हो चुका था। दिङ्नाग ने राम का विष्णु के अवतार रूप में निरूपण किया है। उसने राम को 'रामाह्वयस्य मधुसूदनस्य,' 'रामाभिधानो हरिः' कह कर ही वर्णित किया है। गंगा को पवित्र नदी माना जाता था तथा उसे 'मातर्गंगे' के नाम से पुकारा जाता था। लोगों का विश्वास था कि गंगा के दर्शन एवं उसमें स्नान करने से बड़ा पुण्य होता है तथा समस्त पापों का क्षय हो जाता है।

तात्कालिक समाज सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि पौराणिक देव-जातियों से सुपरिचित था, अतएव नाटक में उनका बार २ उल्लेख हुआ है। लोगों की यह भी धारणा थी कि पृथ्वी को शेषनाग ने अपने सिर पर उठाया हुआ है। उन दिनों सन्ध्या अग्निहोत्र आदि धार्मिक कृत्यों का पालन प्रतिदिन नियमित रूप से होता था। नाटक के प्रायः सभी मुख्य पात्र धार्मिक क्रियाओं के अनुष्ठान में सदा तत्पर दीखते हैं। अनेक प्रसंगों से स्पष्ट है कि आर्य परि-

वारों में दोनों समय यज्ञ होता था तथा यज्ञ में स्त्रियां भी भाग लेती थीं। उनके बिना यज्ञ अपूर्ण एवं निष्फल माना जाता था। विवाह का उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति तथा यज्ञ समझा जाता था : 'अपत्यमिष्टं च वदन्ति देवाः फलद्वयं दारपरिग्रहस्य' घरों में पुंसवन, जात कर्म, उपनयन आदि संस्कारों को भी प्रधानता प्राप्त थी। एक स्थान पर प्रस्थान के समय की मंगल विधि का भी उल्लेख है।

ब्राह्मणों को तत्कालीन समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। ये राजाओं के लिए भी आदरणीय थे। कुश तथा लव को ब्राह्मण-बालक समझने के कारण उन्हें आदर सूचक शब्दों में संबोधित करता है तथा उनके प्रणाम करने पर वह घबरा उठता है। तपस्वियों को भी मानपूर्ण पदवी प्राप्त थी। राम अपने बाल सखा ऋषि कण्व द्वारा मान पूर्वक संबोधित किये जाने पर भी संकोच का अनुभव करता है। तपस्वियों के तप का प्रभाव अमोघ एवं सर्वकार्यसाधक माना जाता था। देवता तक उन्हें कोई हानि न पहुंचा सकते थे। (V. 14)

दिङ्नाग के समय बहु विवाह प्रथा प्रचलित थी विशेषतः राजाओं में परन्तु राम जैसे लोगों को इससे घृणा थी। लोग वानप्रस्थ आश्रम में कम ही प्रवेश करते थे।'स्थाने खलु परिक्रामन्ति तपोवन पराङ्मुखः गृहमेधिनः' राम का यह वाक्य इसी बात का द्योतक है। अतिथि सत्कार को मुख्य धर्म माना जाता था वा घर आए अतिथि का आलिंगन करके अभिनन्दन किया जाता था। कुश-लव द्वारा केवल कुशल समाचार पूछे जाने पर राम उन्हें कहता है—'भवतोः किं वयमत्र कुशल प्रश्नस्य भाजनम्, न पुनरतिथिजनस्य समुचितस्य कण्ठग्रहस्य ?' उन दिनों छोटा भाई बड़े भाई का नाम न लेता था। राम से कुश का परिचय कराते समय लव कुश का नाम नहीं लेता, परन्तु स्त्रियां सास-ससुर का नाम लेने में संकोच नहीं करती थीं। सीता अनेक प्रसंगों में सास ससुर तथा पति का नाम लेती हैं। आपत्काल में इस प्रकार नाम लेने में कोई दोष भी नहीं।

स्त्रियां वैसे बड़ी लज्जाशील होती थीं। वे अपरिचित व्यक्तियों के समक्ष जल विहार तथा फूल बीनने में भी संकोच करती थीं—(चतुर्थ अंक)। स्त्रियों में पर्दा प्रथा भी प्रचलित थी। छठे अंक में रामायण सुनने के अवसर पर कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी तथा उर्मिला, श्रुतकीर्ति, मांडवी आदि पर्दे के पीछे बैठती हैं। यज्ञ आदि वैदिक कृत्यों में अधिकार होने पर भी स्त्रियों को समाज में सम्माननीय स्थान प्राप्त न था, उन्हें अबला ही समझा जाता था। उस समय लोग नंगे पांव चलते थे। राम, लक्ष्मण, सीता विदूषक आदि ग्रीष्म ऋतु में भी नंगे पांव घूमते दीखते हैं। यह दक्षिण की प्रथा है। लोगों की अन्ध विश्वास पूर्ण बातों पर श्रद्धा थी। राम जैसा व्यक्ति भी विदूषक के 'यः अराघवः इमं सिंहासनमधिरोहति तस्य मूर्धा शतधा शतधा विदलति'—वचन पर विश्वास कर लेता है।

राजा सदा प्रजा के हित साधन में तत्पर रहते थे। प्रजा के हित के लिए वह महान् से महान् कष्ट सहने को प्रस्तुत रहते थे। राजाओं की मृत्यु के उपरान्त उनकी मूर्तियां बनाई जाती थीं तथा उनकी समुचित पूजा की जाती थी। सीता, प्रथम अंक में वन में छोड़ कर जाते हुए लक्ष्मण से कहती है 'शुश्रूषितव्यः प्रतिमागतो महाराजः'। परन्तु कहीं पर देव-मूर्तियों का उल्लेख नहीं। सम्भवतः तब तक मूर्ति पूजा वर्तमान रूप में प्रारम्भ न हुई थी।

उस काल के समाज में गो सेवा तथा गो पूजा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। गोवंश की वृद्धि तथा उस के कुशल-क्षेम के प्रति लोग विशेष चिन्तित रहते थे। नाटक में दो बार गौओं के कल्याण तथा उन के वंश की वृद्धि के लिए प्रार्थना की गई है।

'स्वस्ति गोभ्यः वर्धतां गोकुलं च।'



दिङ्नाग की शैली

दिङ्नाग की शैली प्रसाद गुण पूर्ण तथा सरल है इसकी भावव्यञ्जना शैली में कहीं भी दुरूहता नहीं। भाषा में भी कहीं क्लिष्टता नहीं तथा उस में लम्बे लम्बे समासों का सर्वथा अभाव है। इस से नाटक की क्रियाशीलता को पर्याप्त तीव्रता मिली है। दिङ्नाग की रचना भारवी, माघ, बाण आदि की कृत्रिम शैली एवं भाषा से सर्वथा मुक्त है। इसने अनुप्रास, यमक आदि, भाषा में चमत्कार लाने वाले अलंकारों का प्रयोग अवश्य किया है परन्तु भाषा की सरलता एवं भावों की स्पष्टता को कोई आघात नहीं पहुंचने दिया। भाषा में चमत्कार लाने की अपेक्षा दिङ्नाग ने भावों को सुबोध बनाने की ओर अधिक ध्यान दिया है। इसका यह अर्थ नहीं कि उसने अलंकारों अथवा शब्द शक्तियों का प्रयोग किया ही नहीं या यदि किया है तो कम। दिङ्नाग अलंकारों का समुचित प्रयोग करने में सिद्धहस्त था तथा उसने अलंकारों की सहायता से अनेक मुँह बोलते चित्र अंकित किए। उदाहरण के लिए देखिए—

'पदे पदे मे पदमादधाना शनैः शनैरेतु मुहूर्तमार्या, कलहंसाः कलगिरः निर्लक्षणो लक्ष्मणः, आर्यस्य रम्ये भवनेऽपि वासस्तव प्रवासे वनवास एव, विजने वने, सजल जलद, इत्यादि। उसकी उपमाएं भी बड़ी हृदय ग्राहक हैं। जैसे, 'असितपक्षचन्द्रलेखेव दिने दिने परिहीयसे (द्वितीय अंक) त्वमति प्रबलेन हृदय सन्तापेन बडवानलेनेव भगवान् महासमुद्र आत्मनो महत्वे न परिहीयसे, अहं पुनः स्वभाव लघुतया देव्याः सीतया गतिं स्मृत्वा दावानलेनेव तुषार बिन्दुर्निरवशेषं परिशुष्यामि। (पंचम अंक)

प्रविश्य तरुमूलानि नीत्वा मध्यन्दिनातपम्।
अध्वनीना इव छाया निर्गच्छन्ति शनैः शनैः॥ (तृतीय अंक)

इसी प्रकार उत्प्रेक्षा, रूपक, निदर्शना, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास आदि

अलंकारों के प्रयोग में भी कवि की कुशलता का परिचय मिलता है। इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि कुछ स्थानों के अतिरिक्त दिङ्नाग के वर्णन परम्परा भुक्त हैं उन में मौलिकता तथा नवीनता का अभाव है।

सरलता दिङ्नाग का मूल मन्त्र है परन्तु उसने कहीं कहीं अति सरल शब्दों का प्रयोग अत्यन्त असाधारण अर्थ में किया है जैसे, 'विषाद' का प्रयोग उद्वेग के अर्थ में, 'वेग' का दबाव, 'नियुक्त' का प्रार्थना 'निष्क्रान्तम्' का मृत्यु, 'परिधानक' का पहनने वाला, 'महार्घम्' का भीषण, 'प्रणीतम्' का उपहार में दिया हुआ, 'अद्य' का आज से लेकर, 'प्रदर्शितम्' का दिया के अर्थ में प्रयोग हुआ है। व्याकरण की दृष्टि से इन शब्दों का प्रयोग शुद्ध होने पर भी देखने, प्रेक्षक तथा पाठक को कवि का अभिप्राय समझने में कठिनाई होती है।

दिङ्नाग को प्राचीन शब्दों के तुल्य नए शब्द गढ़ने का भी शौक है, जैसे 'अत्याहितम्' के अनुरूप 'महाहितम्', 'अन्तर्हिता' के अनुरूप 'अन्तर्भूता'।

कुछ शब्दों तथा प्रत्ययों के साथ कवि का विशेष अनुराग है तथा उन का वह बार २ प्रयोग करता है, जैसे 'मात्र—स्मरणमात्रेण, दर्शनमात्रेण, आपातमात्रेण, भाव—भावदोषात्, भावबन्धेन, अनुरागभावात्, परित्यक्त-बालभावौ, पत् धातु–पात, संपतित, संनिपतित, संपात। केवल संपात शब्द का प्रयोग दस स्थानों पर हुआ है, अन्प्रत्यय—परिधानक, दारुणत्वसूचनः; छ से पूर्व च् (तुक्) का आगम—इवच्छाया, एषच्छत्रम्; संज्ञा बनाने के लिए क्त का प्रयोग—जीवित (जीवन) निष्क्रान्तम् (मृत्यु), इष्टम् (यज्ञ)।'

व्याकरण शास्त्र का पंडित होने पर भी दिङ्नाग की रचना में व्याकरण के अनेक दोष पाए जाते हैं। नामय के स्थान पर नमस्व, व्यवसातुम् के स्थान पर व्यवसितुम्, आकाङ्क्षतु के स्थान पर आकाङ्क्षमाण आदि प्रयोग दिङ्नाग अथवा उस के लिपिकारों के प्रमाद के द्योतक हैं।

इन कुछ त्रुटियों के अतिरिक्त दिङ्नाग की भाषा परिष्कृत एवं रुचिर है। दिङ्नाग की रचना की एक विशेषता यह भी है कि उसके पद्य तथा गद्य दूरान्वय दोष रहित हैं तथा गद्य भी ताल एवं लय पूर्ण है। उसने प्रायः सर्वत्र संक्षेप शैली का अवलम्बन किया है। वह कई स्थानों पर संज्ञा को स्वयंगम्य छोड़ कर केवल विशेषण का प्रयोग करता है जैसे, 'ज्येष्ठ—(भ्रातृ)—वचनानुवर्ती', अत्याहितम्-(कर्म)-आचरितम् आदि। इस से भाषा में सौष्ठव आ गया है तथा भाव सौन्दर्य में वृद्धि हुई है।

दिङ्नाग के कथोपकथन भी उसकी अपनी विशेषता हैं। कथोपकथन अथवा संवाद नाटक का प्राण होते हैं। कथानक को गति प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि संवाद सुनते ही समझ में आ जाने वाले हों तथा छोटे हों। लम्बे संवाद सुनने तथा पढ़ने वालों में तो अरुचि उत्पन्न करते ही हैं साथ कथानक में भी नीरसता उत्पन्न कर देते हैं। दिङ्नाग किसी भी भाव का लम्बा चौड़ा वर्णन न करके उसकी मार्मिक व्यञ्जना मात्र कर देता है। उसके संवाद आदि से अन्त तक छोटे, सरल, चुस्त और मुहावरेदार हैं तथा प्रत्येक पात्र के मुख से उस के अनुरूप ही कथोपकथन कराया गया है। कथोपकथन प्रत्येक पात्र के चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। इस से उन में पर्याप्त स्वाभाविकता तथा रोचकता आ गई है तथा इन विशेषताओं के कारण वह दर्शक अथवा पाठक को बरबस अपनी ओर खींच लेते हैं। इन संवादों से नाटकीय प्रभाव में भी अपूर्व शक्ति आ गई है। छोटे होने पर भी वह प्रत्येक भाव को उत्तरोत्तर अधिक उत्कर्ष तक पहुंचाने तथा दर्शकों वा पाठकों में उत्सुकता निर्माण करने में विशेष सहायक सिद्ध हुए हैं। ऐसे वचनों के प्रयोग में दिङ्नाग को अपनी योग्यता का पूर्ण ज्ञान रहा है अतएव वह झट वहां कह देता है: 'अहो उदात्तरम्यः समुदाचारः' 'अहो संक्षेपः' आदि। अन्यत्र, जहां उस ने पूर्ववर्ती कवियों का अनुकरणमात्र किया है वहां चुप रहता है। कवि ने यत्र तत्र साधारण बोलचाल की भाषा का भी प्रयोग किया है

जैसे, 'तिलोत्तमा सिलोत्तमा' आदि। संवादों की सहायता से कथानक को आगे बढ़ाने का दिङ्नाग का ढंग सचमुच प्रशंसनीय है।

संवादों के समान दिङ्नाग का चरित्र चित्रण भी सर्वथा स्वाभाविक और सजीव है। उस के सभी पात्रों का अपना व्यक्तित्व है। वह नाटककार के हाथ में कठपुतली के समान नहीं खेलते। वह हमारे समान इसी जगत् के दुख सुख भोगते हुए, चलते फिरते जीव प्रतीत होते हैं। वह किसी वर्ग विशेष के पात्र नहीं तथा उन का चरित्र परिस्थितियों के अनुसार धीरे २ हमारे सामने विकसित होता है। दिङ्नाग ने उन की अन्तःप्रकृति तथा बाह्यप्रकृति का अति सुन्दर चित्रण किया है। मानवीय स्वभाव का मनोवैज्ञानिक चित्रण करने में वह पूर्णरूपेण सफल रहा है। जब किसी का अपने से बड़े पर वश नहीं चलता तो छोटों पर क्रोध करता है। सीता, राम पर वश न चल सकने के कारण पुत्रों पर क्रोधित होती है—'तस्याप्रभवन्ती एतेनवचनेन निरनुक्रोशस्य पुत्रौ इत्येवम् दारकौ निर्भर्त्सयति।' प्रवास में पति के दर्शन करने पर सीता के मन की दशा का चित्रण तथा शिशुओं को देखने से राम के हृदय में उमड़ पड़ने वाले पतृप्रेम का वर्णन सर्वथा मानवी-स्वभाव के अनुकूल है।

रामादि को अवतार मानते हुए भी दिङ्नाग ने अपने पात्रों को आदर्शवाद के सांचे में ढालने का प्रयत्न नहीं किया। उस ने अपने पात्रों की मानवीय दुर्बलताओं का स्पष्ट दिग्दर्शन कराया है। दिङ्नाग की सीता भवभूति की सीता के समान चुपचाप पति के अत्याचार को नहीं सह लेती, वह उस का विरोध करती हुई पाई जाती है तथा अपने पति को 'निर्दय, निरनुक्रोश, विपरीतः खलूपालम्भः, क एष यो युवाभ्यामेवं प्रेक्षिता' आदि कठोर वचन कहने में भी नहीं सकुचाती। राम में जो मानवोचित दुर्बलताएं हैं उन को भी नाटक में स्पष्ट दिखलाया गया है। सीता के पदचिह्न तथा उस का प्रतिबिम्ब आदि देखने से उत्पन्न राम की आकुलता तथा सीता को पाने की अधीरता आदि को कवि ने छिपाने का यत्न नहीं किया, चाहिए भी नहीं

था अन्यथा उस में कृत्रिमता आ जाती। यथार्थ चित्रण होने पर भी दिङ्नाग का चरित्र चित्रण आदर्शोन्मुख है। मन में विद्रोह की ज्वाला होने पर भी दिङ्नाग की सीता पति-निन्दा सुनने को कभी तैयार नहीं। उसे आदर्श पत्नी के समान अपने पति पर पूर्ण विश्वास है कि वह उसे कभी धोखा नहीं देगा।

प्रकृति चित्रण में दिङ्नाग ने कोई विशेषता नहीं दिखलाई। यथार्थ-वादी कवि के समान उस ने प्रकृति के सीधे-सादे, स्थूल चित्र ही अंकित किए हैं। इस से प्रतीत होता है कि कवि में कोमल कल्पना तथा प्रौढ़ वर्णन-शक्ति का अभाव था अन्यथा नैमिशवन की सुषमा, गंगा, आश्रम—वापिका, लताकुञ्जों तथा सूर्य के अस्ताचल की ओर जाने आदि दृश्यों का वर्णन सुन्दर रीति से कर सकता था।

छठे अंक में प्रस्तुत प्रकृति का भयावह चित्र तथा पृथ्वी का पाताल से रंगमंच पर प्रवेश का दृश्य अवश्य भयानक एवं अद्भुत रस का संचार करने में सफल रहा है अतः उत्तम है। उपमाओं के लिए कवि ने सभी चित्र प्रकृति से लिए हैं, इस से प्रतीत होता है कि कवि को प्रकृति का ज्ञान तो था परन्तु किन्हीं कारणों से उस ने उस के विशद एवं सुकोमल चित्रण में रुचि नहीं दिखाई।

'कुन्दमाला' करुण रस परिपूर्ण नाटक है। कवि ने करुण रस की व्यंजना इस रीति से की है कि पाठकों अथवा दर्शकों की सहानुभूति पात्रों के साथ स्वतः हो जाती है। लक्ष्मण द्वारा सीता को वन में छोड़ने का दृश्य किस वज्र-हृदय को पिघला देने में समर्थ नहीं। पशु-पक्षी भी सीता को विपन्न दशा में देख कर शोकाकुल हो उठते हैं। (I. 18)। द्वितीय अंक में सीता का भूतकाल की सुखद स्मृतियों का वर्णन शोक की गरिमा को और भी असह्य बना देता है। इसी अंक में, अपनी सखी वेदवती से राम द्वारा अश्वमेध के अवसर पर अन्य स्त्री का पाणि-ग्रहण करने की बात सुन कर प्रत्युत्तर में सीता

का 'आर्य पुत्रस्य हृदये प्रभवामि न पुनर्हस्ते' कथन सुनते ही दर्शकों का हृदय सीता की असहाय दशा पर व्यथित हो उठता है।

तृतीय अंक में नैमिशवन में आया हुआ राम, सीता पर किए अत्याचारों के कारण दारुण शोक से उद्विग्न हो उठता है तथा अपने आप को कोसता है। सीता की दुर्दशाका ध्यान आतेही वह शोक-सागर में डूब जाता है। राम की इस विकलता को देख कर सामाजिकों के हृदय में स्वाभाविक संवेदना जागृत हो उठती है। इसी अंक में सीता के हाथों से गुथी हुई कुन्दमाला एवं सीता के पदचिह्न तथा चतुर्थ अंक में बावड़ी में सीता का ही प्रतिबिम्ब देखने से सन्तप्त एवं छटपटाते हुए राम की विकल दशा हमारे कारुणिक भाव को उत्तेजित करने में कोई कमी नहीं छोड़ती। तृतीय तथा चतुर्थ अंक में राम तथा सीता के कथोपकथनों में भी करुण रस की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है। यहां पर दोनों की अन्तर्वेदना प्रज्वलित हो उठती है तथा राम और सीता के साथ दर्शकों को भी विकल कर देती है। इन संवादों में एक दूसरे को दिए गए प्रेमपूर्ण उलाहने कारुणिकता को और भी अधिक तीव्र बना देते हैं। चतुर्थ अंक में राम का सीता को पाने के लिए अपने व्यर्थ प्रयत्न का वर्णन—

'तृषितेन मया मोहात् प्रसन्नसलिलाशया।
अञ्जलिर्विहितः पातुं कान्तारमृगतृष्णिकाम्॥'

भी दर्शकों के हृदय में सहानुभूति उत्पन्न कर देता है।

पंचम तथा षष्ठ अंक में कुश तथा लव के दर्शन एवं परिचय के समय दर्शकों के नेत्र राम के साथ छलछला उठते हैं।

उपरोक्त सब प्रसंगों से स्पष्ट है कि दिङ्नाग के करुणरस पूर्ण वर्णन अत्यन्त हृदयस्पर्शी हैं। वह सीधे मर्मस्थलों पर चोट करते हैं। करुण भाव की व्यंजना में कवि की भावुकता मुखरित हो उठी है तथा वह अपने नाटक में करुणरस पूर्ण वातावरण की सृष्टि करने में सफल रहा है। दिङ्नाग ने

'कुन्दमाला' में जो करुणरस की गंगा प्रवाहित की है उस की विमल एवं सतत धारा में सीता-परित्याग जन्य मालिन्य सदा के लिए धुल गया है।

'कुन्दमाला' में करुण रस के अतिरिक्त कहीं २ विप्रलंभ शृंगार तथा वात्सल्य रस की भी झलक मिलती है। छठे अंक में अदभुत रस का भी अच्छा परिपाक हुआ।

त्रुटियां—

'कुन्दमाला' में नाटकीय दृष्टि से कुछ ऐसी त्रुटियां हैं जो कि नाटककार की असावधानी की द्योतक हैं।

पहले तो कवि ने इक्ष्वाकुओं की वंशावली का निर्देश करते समय बड़ी असावधानी दिखलाई है। उसने 'सगर, दिलीप, रघु, अज, दशरथ' के स्थान पर, सीता के मुख से विपरीत क्रम से 'रघु सगर दिलीप दशरथ' कहलवाया है। **दूसरे,** जब लक्ष्मण तथा बादरायण आदि वाल्मीकि के शिष्यों को इस बात का ज्ञान है कि राम विष्णु का अवतार है तो उन्हों ने उसकी दशा पर खिन्न न होना चाहिये था। **तीसरे,** चतुर्थ अंक में दर्शकों को बतलाया जाता है कि तिलोत्तमा 'रामायण' के गान में भाग लेने के लिए वाल्मीकि-आश्रम में आई है परन्तु वह उस अवसर पर कहीं नहीं दिखाई देती। **चौथे,** छठे अंक में सीता का स्वयं पृथ्वी का आह्वान करके उसे न पहचानना तथा रंगमंच पर उपस्थित सब व्यक्तियों का 'नमो भगवत्यै वसुन्धरायै' कह कर अभिनन्दन करने और पृथ्वी का अपना परिचय कराने पर भी सीता का 'भगवति का त्वम्?' कह कर पूछना बड़ा अस्वाभाविक प्रतीत होता है। **पांचवें,** वाल्मीकि का कुश तथा लव को 'रामायण' सुनाने के समय राम के भावों को जांचने का निर्देश कुश-लव के मुख से स्पष्ट कहलवा देना अनुचित प्रतीत होता है। **छठे,** नाटक को प्रभाव-शाली बनाने के लिए घटनाओं की अने-

कता का होना आवश्यक होता है। इसका भी 'कुन्दमाला' में अभाव है।

उपरोक्त त्रुटियों तथा भाषा के कुछ दोषों के होते हुए भी दिङ्नाग एक सुन्दर नाटक प्रस्तुत करने में सफल रहा है। गुणों के साथ दोष होते ही हैं, फूल के साथ कांटे भी मिलते हैं। सर्वथा निर्दोष रचना ढूंढना भी विफल प्रयास होगा। अपने पूर्ववर्ती कवियों का अनुकरण करने के साथ साथ दिङ्नाग ने अनेक मौलिक उद्भावनाएं की हैं, विशेषतः इसका 'छाया दृश्य' दर्शनीय है। नाटक की सरल भाषा, हृदयग्राही संवाद, संक्षिप्त तथा काव्यमय वर्णन, स्वाभाविक तथा सजीव चरित्रचित्रण तथा प्रभावशाली नाटकीय प्रयोग दिङ्नाग को उच्च कोटि के कवियों वा नाटककारों में ला बिठाते हैं। दिङ्नाग की शैली की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उसका नाटक सरलता से सफलता पूर्वक अभिनीत किया जा सकता है। यह गुण भास के अतिरिक्त संस्कृत के कम ही नाटककारों में पाया जाता है।



दिङ्नाग और भवभूति

दिङ्नाग तथा भवभूति दोनों संस्कृत के श्रेष्ठ नाटककार हुए हैं। भवभूति के तीन नाटक 'महावीर चरित,' 'मालती माधव' तथा 'उत्तर राम चरित' और दिङ्नाग का 'कुन्दमाला' नाटक संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि हैं। 'कुन्दमाला' तथा 'उत्तर रामचरित' की कथा वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में प्राप्त प्रसंग पर आधारित है। दोनों नाटककारों ने मूल स्रोत से प्राप्त कथा में नाटकीय दृष्टि से आवश्यक अनेक परिवर्तन एवं परिवर्धन किये हैं। इन परिवर्तनों से कथावस्तु निखर उठी है। (देखिए पीछे 'कथा वस्तु का आधार')

संस्कृत-नाट्यशास्त्र के नियम का पालन करते हुए दोनों नाटककारों ने अन्त में राम-सीता का पुनर्मिलन दिखा कर नाटकों को सुखान्त बनाया है। दोनों ने नवीन नाटकीय प्रयोगों का आविष्कार कर अपनी नाट्य-कुशलता का भी परिचय दिया है। इस विषय में दोनों नाटकों में अदृश्य सीता की कल्पना तथा 'छायादृश्य' उल्लेखनीय हैं। यहां यह कह देना अप्रासंगिक न होगा कि 'कुन्दमाला' का छाया दृश्य 'उत्तर रामचरित' के कल्पित छाया दृश्य की अपेक्षा अधिक सुन्दर तथा रोचक है एवं नाटकीय दृष्टि से भी अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली है।

दिङ्नाग तथा भवभूति के उपरोक्त दोनों नाटकों का अध्ययन करने से पता चलता है कि दिङ्नाग भाव तथा भाषा दोनों क्षेत्रों में भवभूति का ऋणी है। 'कुन्दमाला' के अनेक वाक्य 'उत्तररामचरित' में प्रयुक्त वाक्यों का प्रतिरूप हैं तथा वह उसी प्रसंग में प्रयुक्त किए गए हैं जहां कि 'उत्तर रामचरित' में, जैसे—'जलभरितमेघस्तनितमांसलः' (उत्तर०)='सजल जलधर ध्वनित गम्भीर०' (कुन्द०) 'परिपाण्डु दुर्बल कपोल माननम्' (उत्तर०)= 'आपाण्डरेण......वदनेन' (कुन्द०); 'न जानामि आर्यपुत्र दर्शनेन कीदृशीमवस्थामनुभवामि' (कुन्द०)='एतस्य एवंविधेन दर्शनेन कीदृश इव मे हृदया-

नुबन्ध इति न जानामि' (उत्तर०)।

छाया दृश्य आदि कलात्मक नाटकीय प्रयोगों में भी दिङ्नाग ने मूलतः भवभूति का अनुकरण किया है। 'कुन्दमाला' की कथा भी आदि से अन्त तक 'उत्तररामचरित' से मिलती जुलती है परन्तु उसे दोनों ने विभिन्न दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। भवभूति ने राम को आदर्श महापुरुष तथा सीता को आदर्श पतिव्रता एवं देवी के रूप में अंकित किया है। वह राम के प्रत्येक कार्य को निर्दोष प्रकट करने में सदैव सचेष्ट रहा है। राम द्वारा सीता-परित्याग को भी न्याय्य सिद्ध करने में उसने कोई कसर नहीं उठा रखी। 'उत्तर राम-चरित' की सीता भी राम के क्रूरतम व्यवहार को पतिपरायणा स्त्री के समान शुद्ध भाव से सह लेती है दिङ्नाग ने राम को विष्णु का अवतार मानते हुए भी उसे साधारण मानव के रूप में अंकित किया है। उसने उसकी मानव-सुलभ दुर्बलताओं को छिपाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। कई आलोचक इस कारण दिङ्नाग पर असंगति-दोष लगाते हैं परन्तु यह सर्वथा अनुपपन्न है। जब विष्णु भगवान् ने मनुष्य रूप में अवतार ले लिया तो उन्हें इहलौकिक मानववत् चित्रित करना ही युक्ति संगत था। इसी प्रकार सीता के चरित्र चित्रण में भी दिङ्नाग ने निष्कारण परित्यक्ता सती नारी के स्वाभाविक मनोभावों का स्पष्ट चित्रण किया है। 'कुन्दमाला' की सीता निर्विवाद आदर्श पतिव्रता है परन्तु राम के द्वारा अपने प्रति किए क्रूर व्यवहार के कारण उस से अस-न्तुष्ट है। राम के व्यवहार को अनुचित जान स्पष्ट कह देती है 'सीताया अपि नाम एवं सम्भाव्यते इति सर्वथाऽलं महिलात्वेन।' वह राम को 'निरनु-क्रोश' कहने में भी झिझकती नहीं। राम के सम्मुख खड़े कुश-लव को कहा गया सीता का वचन—'क एष यो युवाभ्यामेवं प्रेक्षितः'—उसके मन में भभ-कती हुई क्रोध की सहज ज्वाला का स्पष्ट द्योतक है। पर ध्यान रहे कि दिङ्-नाग का चरित्र चित्रण यथार्थ होने पर भी आदर्शोन्मुख है।

पात्रों के सजीव चित्रण चित्रण में दोनों कवि समान रूप से सफल

रहे हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है, 'उत्तर रामचरित' के पात्र अधिकतर दिव्य गुण सम्पन्न हैं जब कि 'कुन्दमाला' के मानवीय स्वभाव के मूर्त प्रतीक। यहां यह कह देना भी अनुपयुक्त नहीं कि 'कुन्दमाला' में पात्रों की संख्या 'उत्तर रामचरित' की अपेक्षा कम है तथा उन में विविधता भी नहीं। इस कारण नाटक की कथावस्तु सीमित रही है तथा दर्शकों अथवा पाठकों में समुचित उत्सुकता का निर्माण नहीं हो सका। इस के अतिरिक्त 'उत्तर राम-चरित' में तमसा, मुरला, पृथ्वी, गंगा आदि अनेक अतिमानवी चरित्र हैं जो कि स्वाभाविकता के विरूद्ध हैं उनका रंगमंच पर प्रवेश दर्शकों को अखरता है। किसी दिव्य नाटक के लिए वह सर्वथा उपयोगी हैं। 'कुन्दमाला' में केवल पृथ्वी एक ऐसा पात्र है और सीता के चरित्र की शुद्धि का दैवी प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए उसका लाना अनिवार्य था।

'कुन्दमाला' में 'उत्तरराम चरित' का सा घटना वैचित्र्य भी नहीं। वहां सीता-परित्याग, शम्बूक वध, कुश-लव का राम की सेना से युद्ध आदि अनेक घटनाएं घटित होती हैं, 'कुन्दमाला' में केवल एक ही घटना को दिख-लाया गया है। इस घटना वैचित्र्य के अभाव के कारण नाटक की रोचकता एवं आकर्षकता को गहरा आघात पहुंचा है।

नाट्यशास्त्र के नियमानुसार नाटक में श्रृंगार अथवा वीररस मुख्य होना चाहिए परन्तु दिङ्नाग तथा भवभूति ने इस नियम की अवहेलना कर एक नवीन आदर्श की स्थापना की है। उन्होंने रूढ़ि का परित्याग कर अपने नाटकों में करुण रस को प्रधानता दी है। करुण रस की मार्मिक अभि-व्यंजना करने में यद्यपि दिङ्नाग भवभूति की तुलना नहीं कर सकता तथापि वह अपने नाटक में करुण रस पूर्ण वातावरण की सृष्टि करने में पूर्ण सफल रहा है। (देखिए—'शैली')

दोनों नाटकों में हास्य तत्त्व का अभाव है। संस्कृत नाटकों में हास्य रस की उत्पत्ति के लिए विदूषक नामक पात्र का समावेश किया जाता है।

उत्तररामचरितम्' में तो 'विदूषक' है ही नहीं, 'कुन्दमाला' में उसका समावेश तो किया गया है पर वहां वह नायक के सहायक और मित्र के रूप में आया है न कि जनता का मनोरंजन करने के लिए ।

दिङ्नाग ने भावाभिव्यञ्जन के लिए आडम्बर शून्य भाषा को अपनाया है । उसमें जो सरलता, सरसता एवं हृदयग्राहकता है वह भवभूति की भाषा में विरल ही पाई जाती है । और तो और, दिङ्नाग का गद्य भी ताल तथा लयपूर्ण है । भवभूति की भाषा विशेषतः गद्य भाग की, अतीव कठिन तथा नाटक के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है । उसमें सुदीर्घ समासों, क्लिष्ट शब्दों तथा सानुप्रास वाक्यों की भरमार है । संक्षेपतः, भवभूति ने काव्यसौन्दर्य तथा पांडित्य प्रदर्शन पर अधिक बल दिया है और दिङ्नाग ने नाटकीय सौन्दर्य पर ।

नाटक के प्राण, कथोपकथन की रचना में भी दिङ्नाग भवभूति से बढ़ कर है । दिङ्नाग ने सर्वत्र संक्षेप शैली को अपनाया है तथा कहीं भी संवादों की स्वाभाविकता एवं सरलता को नष्ट नहीं होने दिया । भवभूति के संवाद प्रायः दुरूह तथा लम्बे हैं । उनमें वह सशक्तता भी नहीं जो दिङ्नाग के संवादों में है ।

कवि के रूप में दिङ्नाग निस्सन्देह भवभूति के समकक्ष नहीं । उसमें भवभूति की सी मार्मिकता, भावगरिमा तथा प्रौढ़ कल्पना कहां । मानव-मनोभावों के सूक्ष्म चित्र तथा प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रोपम वर्णन भी उसमें नहीं मिलते । दम्पति प्रेम के जो मंजुल चित्र हमें भवभूति ने दिए हैं वह भी दिङ्नाग में कहां । यहां यह निर्देश कर देना आवश्यक है कि भवभूति के अनेक प्रेम-प्रसंग कामुकता-भावपूर्ण हैं । दिङ्नाग ने नाटक में नैतिकता का पूर्ण ध्यान रखा है तथा सर्वत्र विशुद्ध एवं सात्विक प्रेम के चित्र अंकित किए हैं । दिङ्नाग में नई नई मौलिक उद्भावनाएं करने की शक्ति तथा एक कवि के लिए परमावश्यक वर्णनाशक्ति का भी अभाव है ।

काव्यमय विशद वर्णन, भावुकता के मुखरण, प्रकृति के कलात्मक

निरूपण, करुण रस की मार्मिक अभिव्यंजना, कोमल कल्पना एवं मौलिक उद्भावना करने में यदि भवभूति श्रेष्ठ है तो नाटक की क्रियाशीलता तथा अभिनेयता एवं सप्राण संवादों की रचना की दृष्टि से दिङ्नाग अधिक सफल रहा है।



प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण

राम—

राम कुन्दमाला नाटक का धीरोदात्त नायक है। वह विनयशील, आत्म-त्यागी, अहंकार शून्य, गम्भीर तथा दृढ़व्रती है। स्वायत्त राजा, होने पर भी वह सच्चा प्रजातन्त्रवादी है तथा लोक-इच्छा का समुचित आदर करता है। उसकी न्याय प्रियता का बखान तो वाल्मीकि जैसे ऋषि भी करते नहीं थकते। प्रजा की हित साधना तथा कुल-कीर्ति की रक्षा उसके जीवन का सर्वोच्च ध्येय हैं। अपने विमल इक्ष्वाकु कुल के कलंकित होने की आशंका मात्र से वह प्राणप्रिया सीता का भी परित्याग करने में घबराया नहीं। राम भावना से कर्त्तव्य को ऊँचा मानता है। सीता परित्याग-जनित दुःख से आक्रान्त होने पर भी वह एक आदर्श राजा के समान प्रजा के प्रति निज कर्त्तव्य पालन में अप्रमत्त रहा।

कर्तव्य क्षेत्र में कठोर होने पर भी राम स्वभाव से निष्ठुर नहीं वह हृदय से अति कोमल है। सीता के प्रवास दुःख का ध्यान आते ही उसका मन व्यथित हो उठता है तथा नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह निकलती है। निर्वासित सीता के पद चिन्ह आदि देख कर प्रेमवश वह पागल सा हो जाता है। सीता के साथ उसका प्रेम निष्कपट एवं अहैतुक है। राम की प्रेम

भावना सचमुच आदर्श एवं लोकोत्तर है। सीता-निर्वासन के पश्चात् वह प्रासाद में भी वनवासी के समान रहा। मलय समीर तथा चन्द्रकिरणें भी उसके लिए सन्ताप का कारण बन गईं। प्रेम-साधना के मार्ग में वह कहीं भी विचलित नहीं हुआ। अश्वमेध के अवसर पर दूसरा विवाह करने की अपेक्षा उसने सीता की सुवर्ण-मूर्ति रख कर यज्ञ पूरा करने का निश्चय किया। वह परस्त्री के विषय में बात करना वा सुनना पाप समझता है।

राम के हृदय में वात्सल्य भाव की भी पावन सरिता बहती है। कुश-लव को न पहचानते हुए भी उसके हृदय में सहज पितृप्रेम उमड़ पड़ता है। पितृप्रेम की उसकी कल्पना कितनी सच्ची है,

यां यामवस्थामवगाहमानमुत्प्रेक्षते स्वं तनयं प्रवासी।
विलोक्य तां ताञ्च गतं कुमारं जातानुकम्पो द्रवतामुपैति ॥

राम के चरित्र का औदार्य वहां देखने योग्य है जहां वह कुश-लव से रामायण सुनते समय उन्हें माता कैकेयी का प्रसंग छोड़ कर आगे की कथा सुनाने को कहता है। वह चौदह वर्ष का कठोर वनवास दिलवाने वाली माता कैकेयी की निन्दा सुनना नहीं चाहता। राम को अभिमान छू तक नहीं गया। वह अपने मित्रों (कण्व आदि) द्वारा 'महाराज' कहलवाने में संकोच का अनुभव करता है तथा 'मित्र' कहलाने में आनन्द। स्वतन्त्र शासक होने पर भी अपने ऊपर मन्त्रियों के नियन्त्रण को बुरा नहीं मानता बल्कि आवश्यक समझता है। राम शालीनता की भी मूर्ति है। वह वाल्मीकि आदि के सम्मुख सीता का हाथ पकड़ने में लजाता है।

राज-कार्यों में व्यस्त राम धार्मिक कृत्यों का पालन भी नियमित रूप से एवं सोत्साह करता है। धर्मभीरू वह इतना है कि सीता के हाथों की गुथी हुई कुन्दमाला को इस भय से नहीं पहनता कि वह किसी देवता का उपहार होगी। उसके मन में तपस्वियों के लिए विशेष आदर है। ब्राह्मण के उसको प्रणाम करने पर उसे अत्यधिक कष्ट का अनुभव होता है। कुश-लव को ब्राह्मण बालक समझने के कारण उनका प्रणाम उसके लिए असह्य बन गया। अधिक

क्या, राम एक आदर्श राजा, आदर्श पति तथा आदर्श धर्मात्मा है। वाल्मीकि आदि महर्षि भी उसके आचरण की प्रशंसा करते नहीं थकते।

सीता—

सीता इस नाटक की नायिका तथा राम की धर्मपत्नी है। उस में आदर्श नारी के सब गुण पाए जाते हैं। आत्म-बलिदान, पवित्रता, साहस तथा सहनशीलता की तो वह साक्षात् मूर्ति है। उसे इस बात का अभिमान है कि उसका पति एक आदर्श राजा है। प्रजा की आराधना के लिए राम द्वारा निर्वासित किए जाने पर भी उसकी पति भक्ति में कोई विकार नहीं आया। उसे विश्वास है कि राम का उस के प्रति एकनिष्ठ एवं अटूट प्रेम है। निष्कारण क्रूर व्यवहार का शिकार होने पर भी सखियों से पतिनिन्दा सुनना नहीं चाहती। अपनी सखी वेदवती से राम द्वारा अश्वमेध के अवसर पर दूसरी स्त्री का पाणि ग्रहण करने की बात सुन कर इतना भर कह देती है कि 'आर्य पुत्रस्य हृदये प्रभवामि न पुनर्हस्ते।' सखियां उसका दृढ़ अनुराग देख कर चकित रह जाती हैं। निर्वासित होने पर भी उसे राम के स्वास्थ्य की चिन्ता बनी रहती है वह लक्ष्मण को इस विषय में विशेष आदेश देती है कि वह उसकी अनुपस्थिति में राम के स्वास्थ्य का सदा ध्यान रखे।

सीता आदर्श पतिव्रता है पर अतिमानवी नहीं। वह भी कोमल हृदया नारी है। उसे अपने सद्गुणों का पूर्ण ज्ञान है, अतएव राम के व्यवहार को अनुपपन्न जान कर वह स्वाभिमान पूर्वक कहती है। 'सीताया अपि नाम एवं सम्भाव्यते इति सर्वथाऽलं महिलात्वेन।' निष्कारण परित्यक्ता होने के कारण वह लज्जा का अनुभव करती है तथा प्राकृतिक क्रोधवश राम को 'महाराज', 'निरनुक्रोश' आदि कह कर मन का क्षोभ प्रकट करती है, परन्तु अन्य किसी से पति के विषय में यह शब्द सुनने को तैयार नहीं। उसके नारीत्व को राम के अनपेक्षित व्यवहार से आघात पहुंचा है और वह उसका विरोध करती है

परन्तु झटिति उसका पति प्रेम जागृत हो उठता है और अपनापन खोकर उसके प्रति सचिन्त हो जाती है। प्रवास काल में राम को देखने पर उसके मन में राम के प्रति स्वाभाविक क्रोध तथा प्रेम के परस्पर नितान्त विरोधी भावों का संघर्ष होता है। इसी प्रकार एक ओर तो कुश-लव को महाराज (राम) के सम्मुख सादर अवनत होने का आदेश देती है और दूसरी ओर राम को साश्चर्य निहार रहे उनको 'क एषः, यो युवाभ्यमेवं प्रेक्षितः' कह कर डांटती है। बिना सोचे समझे उसका परित्याग करने के कारण वाल्मीकि जब राम को डांटता है तो उसका नारी हृदय पिघल उठता है और राम के दण्ड का कारण अपने को समझ कर सदय हो जाती है। यह प्रसंग उसके संकुचित चित्त तथा स्वाभाविक अन्तर्द्वन्द्व का स्पष्ट दिग्दर्शन कराते हैं।

सीता सास-ससुर के प्रति सादर है तथा लक्ष्मण से उसका विशेष प्रेम है। वह सन्ध्या-वन्दन आदि भी नियमित रूप से करती है।

लक्ष्मण—

लक्ष्मण राम का आज्ञानुवर्ती भाई है। वह उसकी आज्ञा को सर्वोपरि मानता है तथा उसके लिए अपनी इच्छाओं एवं धारणाओं का भी बलिदान करने को सर्वदा प्रस्तुत रहता है। अनिच्छा होने पर भी बड़े भाई की आज्ञासे सीता को वन में छोड़ आता है। सीता के प्रति वह हृदय से दुःख का अनुभव करता है। अपना कोई दोष न होने पर भी, सीता को राम की आज्ञा से वन में छोड़ने मात्र से अपने को 'वध्यः' तथा 'पातकी' समझता है। इस कार्य से उसे इतकी ग्लानि है कि वह चाहता है कि इससे तो वह लंका-युद्ध में मर जाता तो अच्छा था। उधर, राम के दुःख से भी वह झट सन्तप्त हो उठता है तथा उसके निवारण के लिए सतर्क रहता है। कोमल हृदय होने पर भी इसे परिस्थितिवश कठोर होना पड़ता है।

आत्म त्याग की भावना लक्ष्मण में कूट कूट कर भरी हुई है। राम उसे अपना उत्तराधिकारी (कोशल देश का सम्राट्) बनाना चाहता है परन्तु

वह अस्वीकार कर देता है। वह राम का अनुचर बना रहने में ही अपना सौभाग्य समझता है। इतिहास में इस प्रकार के स्वार्थ त्याग की चरमसीमा के उदाहरण कम ही मिलते हैं इसके साथ ही वह राम के सिंहासन पर बैठना अनधिकार चेष्टा समझता है तथा कुश को सम्राट् पद पर अभिषिक्त करने के लिए सुझाव देता है। इस से उस की परम्परा-पालन के प्रति निष्ठा तथा लोकव्यवहार के ज्ञान की कुशलता का भी परिचय मिलता है।

कुश तथा लव—

कुश तथा लव राम के यमज पुत्र हैं। ये सीता के प्रवास काल में उत्पन्न हुए थे। दोनों की आकृति राम-लक्ष्मण से मिलती है। दोनों ही अति चञ्चल, शील सम्पन्न तथा धैर्यवान् हैं। हृदयहारी सौन्दर्य तथा मुग्धता के कारण वे सब आश्रम वासियों के आकर्षण का केन्द्र हैं। सौम्यता उनका विशेष गुण है। क्षत्रिय-बालक होने के कारण स्वाभिमानी भी हैं। वे जानते हैं: 'अप्रणन्तारः किल अस्मद्वंश्यः।' कुश तो सीता के आदेश से भी राम के सम्मुख अवनत होना अपमान समझता है; परन्तु उच्चवंशज होने के कारण शालीनता के गुण से भी सम्पन्न हैं तथा शिष्टाचार का पालन करना जानते हैं। राम के सम्मुख आते ही दोनों का सिर स्वतः झुक जाता है। राम जानता नहीं कि वह उसकी सन्तान है परन्तु उनकी मधुर आकृति तथा सरलता से आकृष्ट हो कर उनका आलिंगन करने को अधीर हो उठता है। भोले वे इतने हैं कि इन्हें माता-पिता के नाम तक का ज्ञान नहीं। रामायण सुनाने के अवसर राम के मनोभावों को जानने का वाल्मीकि का गोपनीय आदेश भी विदूषक को बतला देते हैं। राम को दुखी देख कर झट सहानुभूति पूर्ण हो जाते हैं। संक्षेपतः, वन में उत्पन्न होने तथा बड़ा होने पर भी उन में राज-कुमारों के योग्य सब गुणों का सम्यक् विकास हुआ है।

वाल्मीकि—

वाल्मीकि 'कुन्दमाला' का मुख्य पात्र है। नाटक की सब घटनाएं प्रायः उसी पर केन्द्रित हैं तथा सभी घटनाएं या उसके आश्रम में घटित होती हैं अथवा उसके निकट। रामायण का प्रणेता, वाल्मीकि एक सिद्ध महर्षि है तथा विश्व प्रेम का पुतला। अपने शिष्यों से वन में रोती हुई किसी असहाय अबला का समाचार सुनकर झट वहां दौड़ा जाता है। वहां सती सीता को शोचनीय दशा में देखकर उसके संरक्षण का भार अपने ऊपर ले लेता है। वाल्मीकि दशरथ का बाल-मित्र था। रघुवंशियों के सब संस्कार वही सम्पन्न कराता था। राम भी उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार करता है। वह वाल्मीकि के आए बिना अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा नहीं लेता।

वाल्मीकि न्यायप्रिय है। न्याय का पालन कराने के लिए वह कभी कभी प्रचंड रूप धारण कर लेता है। निष्कारण सीता का परित्याग करने के कारण राम को भर्त्सना युक्त वचन कहने के अवसर पर वह भीषण रूप में हमारे सामने आता है। उसे अपनी उच्चता का भी पूर्ण ज्ञान है। कण्व से कुश-लव का परिचय प्राप्त करनेके पश्चात्, जब वाल्मीकि सीता को मूर्छित राम की ओर दृष्टिपात करने को कहता है तो सीता उत्तर देती है कि यह उसके पति की आज्ञा के विरुद्ध है। इस पर वाल्मीकि का क्रोध भड़क उठता है और कहता है : 'मयि स्थिते को वा अभ्यनुज्ञायाः, प्रतिषेधस्य वा।' इस के साथ ही वाल्मीकि सहृदय भी है। राम आदि के मूर्च्छित होने पर उन्हें सचेत करने के लिए तत्काल चिन्तित हो उठता है।

वाल्मीकि में वह सामर्थ्य है कि वह असम्भव को सम्भव में परिणत कर देता है। उसकी आज्ञा सर्वमान्य है। उसी के प्रभाव से सीता आश्रम में पुरुषों के लिए अदृश्य हो जाती है। वह सचमुच एक दिव्य शक्ति सम्पन्न ऊर्जस्वी चरित्र है। उसमें असत् को सत् में परिवर्तित करनेकी अमोघ शक्ति है।

संकेत चिह्न

प्र०	प्रथम पुरुष/प्रथमा विभक्ति
म०	मध्यम पुरुष
उ०	उत्तम पुरुष
ए०	एक वचन
द्वि०	द्विवचन/द्वितीया विभक्ति
ब०	बहुवचन
तृ०	तृतीया विभक्ति
च०	चतुर्थी विभक्ति
प०	पञ्चमी ,,
ष०	षष्ठी ,,
स०	सप्तमी ,,
द्वन्द्व०	द्वन्द्व ,,
तत्पु०	तत्पुरुष समास
कर्मधा०	कर्मधारय ,,
द्विगु०	द्विगु समास
बहुव्री०	बहुव्रीहि ,,
भ्वा०	भ्वादिगण
अदा०	अदादि गण
दिवा०	दिवादिगण
स्वा०	स्वादिगण
तुदा०	तुदादि गण
जुहो०	जुहोत्यादिगण
क्र्या०	क्र्यादिगण
रुधा०	रुधादिगण
चुरा०	चुरादिगण
प०	परस्मैपद
आ०	आत्मनेपद
उ०	उभयपद

विशेष—भाषानुवाद के भाग में दो प्रकार के कोष्ठक चिन्हों का प्रयोग किया गया है। (Round Bracket) में वह शब्द दिए गए हैं जिनका मूल संस्कृत पाठ नहीं हैं परन्तु भाषानुवाद के लिए आवश्यक हैं। [Square Bracket] में कठिन संस्कृत शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के हेतु उसी शब्द का दूसरा अर्थ लिखा गया है।

नाटक के पात्र

(पुरुष पात्र)

सूत्रधार—नाटक का संयोजक
राम—नायक
लक्ष्मण—राम का छोटा भाई
कुश—राम का ज्येष्ठ पुत्र
लव—राम का छोटा पुत्र
वाल्मीकि—एक महान् ऋषि, रामायण का प्रणेता

सुमन्त्र—राजा का रथवाहक
कौशिक—विदूषक
कंचुकी
कण्व—वाल्मीकि का शिष्य तथा राम का बचपन का साथी
बादरायण—वाल्मीकि का दूसरा शिष्य एक ऋषि

(स्त्री-पात्र)

सीता—नायिका, रामकी पत्नी
यज्ञवेदि—आश्रम कन्या
मुनिकन्या—(द्वितीय अंक के प्रारम्भ में)

वेदवती—आश्रम कन्या, सीता की सखी
पृथ्वी—पृथ्वी देवी

[इनके अतिरिक्त राम की माताओं—कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा; भरत, लक्ष्मण, तथा शत्रुघ्न की पत्नियों, कुछ तपस्विनियों, अप्सराओं ऋषियों, देवताओं, विभिन्न देशों के राजाओं आदि का भी नाटक में उल्लेख है परन्तु वह रंग मंच पर उपस्थित नहीं होते ।]

ॐ

कुन्दमाला

प्रथमोऽङ्कः

जम्भारिमौलिमन्दारमालिकामधुचुम्बिनः ।
पिबेयुरन्तरायाब्धिं हेरम्बपदपांसवः ॥१॥

अन्वय—जम्भारि-मौलि-मन्दार-मालिका-मधु-चुम्बिनः हेरम्ब-पद-पांसवः अन्तराय-अब्धिं पिबेयुः ॥ १ ॥

व्याकरण—जम्भारिमौलिमन्दारमालिकामधुचुम्बिनः—जम्भस्य अरिः जम्भारिः तस्य मौलौ याः मन्दाराणां मालिकाः तासां यद् मधु तद् चुम्बितुं शीलं येषां ते (बहुव्री०)। मन्दार—√मदि+आरन्। चुम्बिनः—√चुम्ब्+णिनि (इन्)। हेरम्बपदपांसवः—हेरम्बस्य पदयोः पांसवः (ष०तपु०)। अन्तरायाब्धिम्—अन्तरायाणां अब्धिम् (ष० तत्पु०)। अब्धि—अप्+√धा (धारण करना)+कि, आपो धीयन्ते अत्र। पिबेयुः+√पा (पीना), विधिलिङ्, प्र० ब० ॥१॥

कठिन शब्दार्थ—जम्भारिः—जम्भनामक राक्षस का शत्रु, इन्द्र। मौलि—मस्तक, मुकुट। मन्दार—पांच देव वृक्षों में से एक। हेरम्ब—विघ्न विनाशक गणेश। पांसवः—धूलिकण। अन्तराय—विघ्न। अब्धिम्—सागर को ॥१॥

प्रथम अङ्क

इन्द्र के मस्तक पर (विराजमान) मन्दार पुष्पों की माला के (पुष्पों का) मकरन्द [पुष्परस] पान करने वाले (श्री) गणेश के चरणों के रजकण (सब के) विघ्नों के सागर को पीलें [सुखा दें], अर्थात् सब के विघ्नों का विनाश करें ॥१॥

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

ज्वालेवोर्ध्वविसर्पिणी परिणतस्यान्तस्तपस्तेजसो
गङ्गातोयतरङ्गसर्पवसतिर्वल्मीकलक्ष्मीरिव ।
सन्ध्येवार्द्रमृणालकोमलतनोरिन्दोः सदास्थायिनी
पायाद्वस्तरुणारुणांशुकपिला शम्भोर्जटासन्ततिः ॥२॥

अन्वय—परिणतस्य अन्तः-तपः-तेजसः ऊर्ध्व-विसर्पिणी ज्वाला इव, गङ्गा-तोय-तरङ्ग-सर्प-वसतिः वल्मीक—लक्ष्मीः इव, आर्द्र-मृणाल-कोमल-तनोः-इन्दोः सदास्थायिनी सन्ध्या इव, तरुण-अरुण-अंशु-कपिला शंभोः जटा—सन्ततिः वः पायात् ॥२॥

व्याकरण—परिणतस्य—परि √ नम् + क्त, ष०ए० । अन्तस्तपःतेजसः—तपस्तेजः=तपः एव तेजः, अन्तर्वर्तमानं यत् तपस्तेजः, तद् अन्तः यस्य । तेजसः—तेजस्, ष०ए० । ऊर्ध्वविसर्पिणी—ऊर्ध्वं विसर्पति इति (उपपद स०) । विसर्पिणी—वि + √सृप्लृ (जाना) + णिनि (इन्) । गङ्गातोयतरङ्गसर्पवसतिः—गङ्गायाः तोयस्य तरङ्गाः एव सर्पाः तेषां वसतिः । तरङ्ग—√तृ (तरणे) + अङ्गच् । आर्द्रमृणालकोमलतनोः (बहुव्री०)— आर्द्रं यत् मृणालं तद्वत् कोमला तनुः यस्य । इन्दोः—इन्दु, ष० ए० ॥२॥

तरुणारुणांशुकपिला—तरुणस्य अरुणस्य अंशवः इव कपिला (कर्मधा०) । तरुण—√ तृ + उनन् । अरुण—√ऋ (गतौ) + उनन् । जटासन्ततिः—जटानां सन्ततिः (ष० तत्पु०) । वः—युष्मद्, द्वि० ब० । पायात्—√पा (रक्षा करना), आशीर्लिङ्, प्र०ए० ॥ २ ॥

कठिन शब्दार्थ—परिणतस्य—पूर्णता (प्रखरता) को प्राप्त । ऊर्ध्वविसर्पिणी—ऊपर उठने वाली । तोय—जल । वसतिः—निवास स्थान । मृणाल—कमल-नाल । अंशु—किरण । सन्ततिः—समूह । वः—आप सब की । पायात्—रक्षा करे ॥२॥

आदिष्टोऽस्मि परिषदा—तत्रभवतोऽरारालपुरवास्तव्यस्य कवेर्दिङ्नागस्य कृतिः कुन्दमाला नाम, सा त्वया प्रयोक्तव्येति, तद्यावदस्य संदर्भस्य प्रयोगसाचिव्यविधायिनीमार्यामाहूय रङ्गभूमिमवतरामि।

व्याकरण—आदिष्टोऽस्मि—आदिष्टः + अस्मि। आदिष्टः—आ + √दिश् (कहना) + क्त, प्र०ए०। अस्मि √अस् (होना), लट्, उ० ए०। परिषदा—परिषद्, स्त्री०, तृ० ए०। वास्तव्यस्य—√वस् (रहना) + तव्यत्, ष० ए०। सा—तद् (स्त्री०) प्र० ए०। त्वया—युष्मद्, तृ० ए०। प्रयोक्तव्या—प्र + √युज् (नियोजने) + तव्यत्, प्र०ए०। तद्यावदस्य—तद् + यावत् + अस्य। प्रयोगसाचिव्यविधायिनीम्—प्रयोगे साचिव्यं विदधातीति ताम् (उपपद स०)। आहूय—आ √ह्वे (शब्दे) ल्यप्। अवतरामि—अव + √तॄ (तैरना), लट्, उ० ए०।

(नान्दी के पश्चात् सूत्रधार का प्रवेश)

प्रखर आन्तरिक तप के तेज की ऊपर उठती हुई (ज्वालाओं) जैसी, गङ्गा-तरङ्ग रूपी सर्पों के वासस्थान, बांबी के समान शोभायमान, अभिनव [ताजे] कमल के नाल के समान कोमल चंद्रमा (के शिवाजी के मस्तक पर होने के कारण) सदा रहने वाली सन्ध्या (काल की स्थिति) जैसी, बालसूर्य की किरणों के समान कपिल (सुनहरी) शिवजी की जटाओं का समूह आपकी रक्षा करे ॥२॥

दर्शक-समाज ने मुझे आदेश दिया है, "अरारालपुर निवासी समादरणीय कवि दिङ्नाग की कुन्दमाला नामक रचना है, उस का तुम अभिनय करो।" तो मैं इस नाटक के अभिनय में सहायिका आर्या [नटी] को बुलाकर रङ्गमंच पर जाता हूं।

(*नेपथ्ये*)

इत इतोऽवतरत्वार्या ।

सू—अये को नु खल्वयमार्यासमाह्वानेन सहायमिव मे सम्पादयति ।

(*विलोक्य*) कष्टं भोः । कष्टं भोः । अतिकरुणं वर्तते—

लंकेश्वरस्य भवने सुचिरं स्थितेति

रामेण लोकपरिवादभयाकुलेन ।

व्याकरण—अवतरत्वार्या—अवतरतु + आर्या, अव + √तृ (तैरना) लोट्, म० ए० । खल्वयमार्या—खलु + अयम् + आर्या । समाह्वानेन—सम् + आह्वानेन । वर्त्तते—√वृत् (होना), लट्, प्र० ए० ।

अन्वय—अयं लक्ष्मणः, लङ्केश्वरस्य भवने सुचिरं स्थिता-इति-लोक-परिवाद-भय-आकुलेन रामेण जनपदात् अपि निर्वासितां गर्भ-गुर्वीं सीतां वनाय परिकर्षति ॥३॥

व्याकरण—अयम्—इदम् (पुं०) प्र० ए० । लङ्केश्वरस्य—लङ्कायाः ईश्वरः तस्य (ष०तत्पु०) । स्थिता—√स्था + क्त, प्र०ए० । लोकपरिवादभयाकुलेन—लोकपरिवादात् भयेन आकुलेन (सुप्सुपा) । निर्वासिताम्—निः√ + वस् + णिच् + क्त, द्वि० ए० । गर्भगुर्वीम्—गर्भेण गुर्वीम् (तृ० तत्पु०) । परिकर्षति—परि + √कृष् भ्वा० लट्, प्र० ए० ॥ ३ ॥

कठिन शब्दार्थ—परिवाद—निन्दा । आकुलेन—व्याकुल । जनपदात्—राज्य से । निर्वासिताम्—निकाली हुई । परिकर्षति—ले जाने की शीघ्रता कर रहा है ।

(नेपथ्य में)

इधर से, इधर से आर्या उतरें ।

सूत्रधार—अरे ! आर्या को बुलाता हुआ यह कौन मेरी सहायता सी कर रहा है । (देखकर) ओह, ओह, (यह) बड़ा कारुणिक [दुःखद] (दृश्य) है—

निर्वासितां जनपदादपि गर्भगुर्वी
सीतां वनाय परिकर्षति लक्ष्मणोऽयम् ॥३॥

(इति निष्क्रान्तः)

इति स्थापना

(*ततः प्रविशति रथाधिरुढा सीता सारथिर्लक्ष्मणश्च*)

ल०—इत इतोऽवतरत्वार्या। एतानि गहनतरुलताप्रतानसंरुद्धतया रथप्रवेशायोग्यानि भागीरथीतीरकाननानि। तदवतरत्वार्या।

सी०—वत्स लक्ष्मण अतिप्रवृत्ततुरंगमवेगकम्पितदेहा अत्र न
वच्छ लक्खण अदिप्पउत्ततुरंगमवेअकंपिअदेहा एत्थ ण

व्याकरण— गहनतरुलताप्रतानसंरुद्धतया——गहनानां तरूणां लतानां च प्रतानैः संरुद्धानि (काननानि), तेषां भावः तत्ता तया। संरुद्धतया— सम्+ √रुध् (रोकना)+क्त, तस्य भावः तत्ता तया।

यह लक्ष्मण, '(सीता) रावण के भवन (प्रासाद) में दीर्घ काल तक रही है' इस कारण लोकनिन्दा के भय से व्याकुल [विक्षुब्ध] राम द्वारा राज्य से निकाली हुई कठोर गर्भा (पूर्ण गर्भा) सीता को वन में (छोड़ने के लिए) शीघ्र लिये जा रहा है॥३॥

(निकल जाता है)

इति स्थापना

(रथ पर बैठे हुए सीता, सारथी तथा लक्ष्मण का प्रवेश)

लक्ष्मण—आर्ये! इधर [यहां] उतरिए। घने वृक्षों तथा फैली हुई लताओं से व्याप्त गंगा-तट के वन-प्रदेशों में रथ नहीं जा सकता। अतः देवी (रथ से) उतरें।

सीता—वत्स लक्ष्मण! घोड़ों की तीव्र गति से शरीर के कांपने

पारयामि संस्थातु' किं पुनरवतरितुम् ।

पारेमि संठादु' किं पुण ओदरिदु' ।

ल०—सुमन्त्र ! ननु तुरंगमनियमने क्रियतां यत्नः ।

सु०—क्रियमाणमपि यत्नमतिवर्त्तन्ते गान्धर्वप्रिया वाजिनः तथाहि—

अमी पतद्भिः श्रवणेष्वमन्द्रं विकृष्यमाणाः कलहंसनादैः ।
अनाश्रवाः प्रग्रहसंयमस्य तुरंगमास्तूर्णतरं प्रयान्ति ॥ ४ ॥

अन्वय— श्रवणेषु पतद्भिः कलहंसनादैः अमन्द्रं विकृष्यमाणाः प्रग्रह-संयमस्य अनाश्रवाः अमी तुरङ्गमाः तूर्णतरं प्रयान्ति ॥४॥

व्याकरण—तुरङ्गम— √तुर् (त्वरणे) + मुम् (म्) । √ गम् (गमने) + खच् । तुरंगमनियमने—तुरंगमाणां नियमने (ष० तत्पु०) । क्रियताम्— √कृ (करणे), कर्मवाच्य, लोट्, प्र० ए० ।

क्रियमाणम्— √कृ (करना) + शानच् द्वि० ए० । अतिवर्तन्ते—अति + √वृत् (वर्तने), लट्, प्र०ब० । गान्धर्वप्रियाः—गान्धर्वं प्रियं येषां ते (बहुव्री०) ।

पतद्भिः — √पत् (गिरना) + शतृ, तृ०ब० । कलहंसनादैः—कलहंसानां नादैः (ष० त०) । अमन्द्रम्—न + मन्द्रम् (नञ् तत्पुरुष) । विकृष्यमाणाः—वि + √ कृष् (कर्मवाच्य) + शानच् प्र० ब० । प्रग्रहसंयमस्य—प्रग्रहैः संयमः तस्य (तृ० तत्पु०) । अनाश्रवाः—न + आ + √ श्रु (श्रवणे) + अच् ।

के कारण (मैं) अपने को धारण [खड़ा] करने अथवा सम्भालने में भी असमर्थ हूं, उतरना तो दूर रहा ।

लक्ष्मण—सुमन्त्र ! घोड़ों को रोकने का प्रयत्न कीजिए ।

सुमन्त्र—यत्न करने पर भी संगीत-प्रिय घोड़े काबू में नहीं आरहे । क्योंकि :—

ल०—सुमन्त्र ! अतिरभसप्रवृत्तवेगत्वादनालक्षितसमविषमास्तुरंगमा गंगाप्रपाते स्यन्दनं विनिपातयन्ति, तत् सर्वात्मना क्रियतां यत्नः ।

(*सुमन्त्रः रज्ज्वाकर्षणमभिनयति*)

ल०—एष स्थितो रथः, तदवतरतु देवी।

व्याकरण— (नञ् तत्पु०) । अमी—अदस् (पुं०) प्र० ब०। प्रयान्ति—प्र + √या (गमने), लट्, प्र० ब० ॥४॥

अतिरभस प्रवृत्तवेगत्वात्—अतिरभसेन प्रवृत्तः यः वेगः तत्त्वात् । गङ्गाप्रपाते—गङ्गायाः प्रपाते (ष० तत्पु०) प्रपात—प्र+√पत्+घञ् ।

एषः—एतद् (पुं०), प्र० ए० । स्थितः—√स्था (ठहरना)+क्त, प्र० ए० ।

कठिन शब्दार्थ—अमन्द्रम्—अत्यधिक । विकृष्यमाणः—खींचे जाते हुए । प्रग्रह—लगाम । अनाश्रवाः—ध्यान न देते हुए । तूर्णतरम्—शीघ्रतर ॥४॥

कानों में पड़ती हुई कलहंसों की ध्वनि से (उसी ओर) अत्यधिक आकृष्ट हुए २ (अतएव) लगाम खींचने की ओर से अनवधान [ध्यान न देते हुए], यह घोड़े अतिशीघ्र भागे जा रहे हैं ॥४॥

लक्ष्मण— सुमन्त्र ! अत्यधिक प्रसन्नता [उत्साह] से बढ़ी हुई गति के कारण ऊंचे नीचे प्रदेशों को न देखते हुए (यह) घोड़े रथ को (कहीं) गंगा-प्रवाह में न गिरा दें, अतः पूर्ण शक्ति से (घोड़ों को रोकने का) प्रयत्न कीजिए ।

(सुमन्त्र लगाम खींचने का अभिनय करता है)

लक्ष्मण—रथ रुक गया है, अतः आप उतरें ।

(*सीता अवतीर्य परिक्रामति*)

ल०—सुमन्त्र ! दीर्घमार्गपरिश्रान्ता एते तुरङ्गमाः, तद्विश्रामयैतान् ।

सु०—यदाज्ञापयति देवः (*इति रथमधिरुह्य निष्क्रान्तः*)

ल०—(*परिक्रम्य आत्मगतम्*) समादिष्टोऽहमार्येण, अथवा स्वामिना—

वत्स लक्ष्मण ! देव्याः किल सीतायाः रावणभवनसंस्थाना-च्चारित्रं प्रति समुत्पन्नविमर्शानां पौराणामन्यादृशाः प्रलापाः प्रवर्त्तन्ते, तन्न शक्नोमि सीतामात्रस्य कृते शरच्चन्द्रनिर्मल

व्याकरण— दीर्घ मार्गपरिश्रान्ताः— दीर्घेण मार्गेण परिश्रान्ताः (तृ० तत्पु०) । परिश्रान्ताः—परि + √श्रम् + क्त, प्र० ब० । एते—एतद् (पुं०), प्र० ब० । विश्रामय—वि + √श्रम् + णिच् , लोट् , म० ए० ।

आज्ञापयति—आ + √ज्ञा (जानना) + आप् + णिच्, लट् , प्र० ए० । रथम् अधिरुह्य—'अधि'के योग मे 'रथ' में द्वितीया । अधिरुह्य—अधि + √रुह् (उगना) ल्यप् । निष्क्रान्तः – निः + √क्रम् (चलना) + क्त, प्र० ए० ।

परिक्रम्य—परि + क्रम् + ल्यप् । समादिष्टः—सम + आ + √दिश् + क्त, प्र०ए० । स्वामिना—स्वामिन् , तृ०ए० । समुत्पन्नविमर्शानाम्—सम्यक् उत्पन्नः विमर्शः येषां तेषाम् (बहुव्रीहि) । प्रवर्तन्ते— प्र + √वृत् (आत्मने०), लट् प्र०ब० । शक्नोमि—√शक्, लट् , उ० ए० । शरच्चन्द्रनिर्मलस्य—शरच्चन्द्र इव निर्मलस्य (कर्मधा०) । प्रार्थितः—प्र + √अर्थ + क्त, प्र०ए० । आरोप्य—आ +

(सीता उतर कर इधर उधर घूमती है)

लक्ष्मण—सुमन्त्र ! दीर्घ मार्ग (यात्रा) के कारण यह घोड़े थक गए हैं, अतः इन्हें विश्राम कराईए ।

सुमन्त्र—जो आप की आज्ञा । (रथ पर चढ़ कर निकल जाता है)

स्येक्ष्वाकुकुलस्य कलङ्कमुत्पादयितुम् । सीतया चाहं गर्भिणीभावसुलभेन दोहदेन भागीरथीदर्शनं प्रार्थितः। तस्मात् त्वमनेन गङ्गागमनव्याजेन सुमन्त्राधिष्ठितं रथमारोप्य कस्मिंश्चिद्वनोद्देशे परित्यज्य निवर्तस्व-इति । तदहमपि स्वजनविस्रम्भनिर्विशङ्कां देवीमादाय गृहहरिणीमिव वध्यभूमिं वनमुपनयामि ।

सी०— वत्स लक्ष्मण ! अतिशयितगर्भभरोद्वहनपरिश्रान्तौ न
वच्छ लक्खण ! अदिसइदगब्भभरुव्वहणपरिस्संता ण

√रुह् + णिच् + ल्यप् । परित्यज्य—परि + √त्यज् + ल्यप् । निवर्तस्व—नि + √वृत् (आ०), लोट्, म०ए० । स्वजनविस्रम्भनिर्विशङ्काम्—स्वेषु जनेषु यः विस्रम्भः तेन निर्विशङ्काम् (तृ० तत्पु०) । आदाय–आ + √दा (देना) + ल्यप् । वध्यभूमिमुपनयामि—'उप' के योग में 'भूमि' में द्वितीया विभक्ति । उपनयामि—उप + √नी (ले जाना), लट्, उ० ए० ।

लक्ष्मण—(घूम कर, अपने आप) मुझे आर्य ने, नहीं-नहीं महाराज ने आज्ञा दी है, 'प्रिय लक्ष्मण, देवी सीता के रावण के घर रहने के कारण (उसके) चरित्र के विषय में सन्दिग्ध नागरिकों में और ही प्रकार के (अनेक अशुभ) प्रवाद प्रचलित हो गए हैं; तो केवल सीता के कारण शरत्कालीन चन्द्रमा के समान विमल इक्ष्वाकु-वंश को मैं कलङ्कित नहीं कर सकता । गर्भिणी की अवस्था में स्वाभाविक दोहद [गर्भेच्छा] के कारण सीता ने मुझे गंगा के दर्शनों के लिए प्रार्थना की है, अतः तुम इस गंगा जाने के बहाने (सीता को) सुमन्त्र द्वारा चालित रथ पर बिठा कर किसी वन-प्रान्त में छोड़ आओ ।' सो, मैं अपने सम्बन्धियों पर विश्वास के कारण निश्शंक देवी को, वध्यशाला ले जाई जाती हुई पालतू हरिणी के समान, वन में छोड़ने के लिए ले जा रहा हूँ ।

प्रभवतो मे चरणौ । तदग्रतो भूत्वा निवेदय कियद्दूरे भगवती
प्पहवंति मे चलणा । ता अग्गदो भविअ णिइवेहि कीसदूरे भअवई
भागीरथी वर्तत इति ।
भाईरई वट्टदित्ति ।

ल०—नन्वासन्नैव भगवती भागीरथी तदलं विषादेन, संप्राप्ता एव वयम् । पश्य—

आदाय पङ्कजवनान्मकरन्दगन्धान्
कर्षन्नितान्तमधुरान् कलहंसनादान् ।

व्याकरण—परिश्रान्तौ—परि+√श्रम्+क्त, प्र० द्वि० । भूत्वा—भू+क्त्वा । नन्वासन्नैव—ननु+आसन्ना+एव । आसन्ना—आ+√सद्+क्त (स्त्री०), प्र० ए०। सम्प्राप्ताः—सम्+प्र+√आप् (प्राप्त करना)+क्त, प्र० ब० । पश्य—√दृश् (देखना), लोट्—म० ए० ।

अन्वय—गङ्गा-अनिलः पङ्कज-वनात् मकरन्द-गन्धान् आदाय नितांत-मधुरान् कलहंस-नादान् कर्षन् शीताः तरङ्गकणिकाः विकिरन् इव तव सभाजन—आकाङ्क्षया इव अभि—उपैति ॥५॥

व्याकरण—गङ्गानिलः—गङ्गायाः अनिलः (ष० तत्पु०) । पंकज-वनात् (ष० तत्पु०) । मकरन्द गन्धान्—मकरन्दस्य गन्धान् (ष० तत्पु०) । आदाय—आ+√दा+ल्यप् । कर्षन्—√कृष्+शतृ, प्र० ए० । विकिरन्—वि+√कॄ (फेंकना)+शतृ, प्र०ए० । उपैति—उप+आ+एति; √इ(जाना) लट्—प्र० ए० ॥ ५ ॥

सीता—प्रिय लक्ष्मण ! गर्भ का प्रवृद्ध [गुरु] भार उठाने के कारण थके हुए मेरे चरण आगे नहीं बढ़ रहे । जरा (आगे) चल कर पता दो कि भगवती गङ्गा कितनी दूर है ।

लक्ष्मण—भगवती गंगा निकट ही है अतः उद्विग्न [व्यग्र] न होइये, हम पहुंच ही गए हैं । देखिए—

शीतास्तरङ्गकणिका विकिरन्नुपैति

गंगानिलस्तव सभाजनकाङ्क्षयेव ॥ ५ ॥

सी०— (*स्पर्शं नाटयति*) साम्प्रतं जननीकरस्पर्शसुखशीतलस्य भागी-
संपदं जणणीकरप्परिससुहसीअलस्स भाई-

रथीतरङ्गमारुतस्य स्पर्शेन परिश्रमस्येव पापस्य परिक्षयो जातः ।
रईतरंगमारुदस्स परिसेण परिस्समस्स विअ पावस्स परिक्खओ जाओ,

कठिन शब्दार्थ—अनिलः— पवन, वायु । पङ्कज — कमल । मकरन्द—पुष्परस । कर्षन्—लाती हुई । विकिरन्—बिखेरती हुई । सभाजनकाङ्क्षया—सम्मानित करने की इच्छा से ।

व्याकरण—जननीकरस्पर्शसुखशीतलस्य—जनन्याः करस्यं स्पर्शेन यत् सुखं तद्वत् शीतलस्य (कर्मधा०)। भागीरथीतरङ्गमारुतस्य – भागीरथ्याः तरङ्गाणां मारुतस्य (ष०तत्पु०)। गङ्गावगाहनम्—गङ्गायां अवगाहनम् (स० तत्पु०)। समुत्साहयति—सम् + उद् + णिच्, लट्०, प्र० ए० । आदेशय—आ + √दिश् ।

गङ्गा की [गंगा में से हो कर आती हुई] वायु कमलों के वन से मकरन्द की सुगन्धि को ले कर, कलहंसों की अतीव मधुर ध्वनियों को (अपने साथ) लाती हुई (तथा) तरंगों के शीतल जलकणों को बिखेरती हुई, मानों आपको सम्मानित करने की इच्छा से (इधर) आ रही है ॥५॥

टिप्पणी—पांचवें श्लोक म प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोप किया गया है । लक्ष्मण सीता के प्रति स्नेह तथा उदारभाव के कारण समझता है कि गंगा-पवन सीता का अभिनन्दन करने के लिए ही बह रहा है ।

तथापि दोहदकौतूहलं गङ्गावगाहने मां समुत्साहयति । तदस्मात्तट-
तह वि दोहदकुदूहलं गंगावगाहणे मं समुस्साहेदि । ता इमादो तट-
प्रपाताद्यथा परिश्रान्तावतरामि तथादेशय मे मार्गम् ।❀
प्पपादादो जह परिस्संता ओदरामि तह आदेसेहि मे मग्गम् ।
ल०— (*निर्दिश्य*) अत्यन्तविश्रान्तमनुष्यसंचारतया दुरवतारा-
स्तटप्रदेशाः । तस्मात् प्रपदमास्थाय सम्यक्—

व्याकरण— अत्यन्तविश्रान्तमनुष्यसंचारतया—अत्यन्तं विश्रान्ताः ये मनुष्याः तेषां यः संचारः तस्य भावः तत्ता तया (ष० तत्पु०) । विश्रान्त—वि + √श्रम् + क्त । दुरवताराः—दुर् + अव + √तॄ (तैरना) + खल् , प्र० ब० । आस्थाय—आ + √स्था + ल्यप् ।

सीता—(वायु के स्पर्श के अनुभव का अभिनय करती है) अब माता के स्पर्श के समान सुखद तथा शीतल गङ्गा की तरङ्गों (में से आते हुए) पवन के स्पर्श से (मेरा) परिश्रम (गङ्गा स्पर्श से नष्ट होने वाले) पापों के समान दूर हो गया है। तथापि दोहद की इच्छा मुझे गङ्गा में स्नान करने के लिए प्रेरित [उत्साहित] कर रही है । तो मुझे ऐसा मार्ग दिखाओ जिस से इस निम्नतट-प्रदेशों से थकी हुई मैं नीचे उतर सकूँ ।

लक्ष्मण —मनुष्यों के आवागमन के अभाव के कारण तट-प्रदेशों से उतरना कठिन है। अतः पांव का अग्रभाग [पंजा] अच्छी प्रकार रखते हुए —

❀टिप्पणी—सीता की यह उक्ति अत्यन्त सोद्देश्य है। सीता को अब माता के हाथों का सुखद स्पर्श प्राप्त न होगा । गङ्गा ही अब उसका मातृ-स्थानीय होगी तथा उसकी तरङ्गों से उठता हुआ पवन मातृ-हस्त ।

हिन्दु गङ्गा को पतित पावनी मानते हैं तथा उनका विश्वास है कि उस में एक डुबकी लगाने से सभी पाप नष्ट हो जाते है ।

वामेन नीवारलतां करेण जानु समालम्ब्य च दक्षिणेन ।
पदे पदे मे पदमादधाना शनैः शनैरेतु मुहूर्त्तमार्या ॥ ६ ॥

सी०—(*यथोक्तमवतीर्य*) वत्स ! सुष्ठु परिश्रान्तास्मि, एतस्यां पादप-
वच्छ सु परिस्संतंमि, एतस्सि पाअव-
च्छायायां मुहुर्त्तमुपविश्य विश्रमिष्यामि ।
च्छायाए मुहुत्तं उपविसिअ विस्समिस्सं ।

ल०—यदभिरुचितं देव्यै ।

अन्वय—वामेन करेण नीवारलतां दक्षिणेन च (करेण) जानु समालम्ब्य मे पदे पदे पदं आदधाना आर्या शनैः शनैः एतु ॥६॥

व्याकरण— नीबारलताम् — नीवाराणां लताम् (ष० तत्पु०) । समालम्ब्य—सम् + आ + √लम्ब् + ल्यप् । आदधानः— आ + √धा (रखना) + शानच्, प्र० ए० । एतु—√इ, लोट्—म० ए० ।

व्याकरण—यथोक्तम्—यथा + उक्तम् । उक्तम्—√वच् (कहना) + क्त, प्र० ए० । अवतीर्य—अव + √तॄ + ल्यप् । एतस्याम्—एतद् (स्त्री०), स० ए० । उपविश्य—उप + √विश (प्रवेश करना) + ल्यप् । विश्रमिष्यामि—वि + √श्रम्, लृट्—उ० ए० ।

कठिन शब्दार्थ—नीवार—वन्य-धान्य । जानुम्—घुटने को । समालम्ब्य—पकड़ कर । आदधाना—रखते हुए ।

बाएँ हाथ से नीवारलता को तथा दाएँ से घुटने को पकड़ कर मेरे पैरों (के चिह्नों) पर पैर रखते हुए [अर्थात् मेरे पीछे पीछे] आप धीरे धीरे आवें ॥ ६ ॥

सीता—(निर्देशानुसार उतर कर) वत्स ! (मैं) बहुत थक गई हूं, वृक्षों की इस छाया में कुछ काल बैठ कर विश्राम करूँगी ।

लक्ष्मण—जैसी आप की इच्छा ।

(सीता उपविश्य विश्रान्तिं नाटयति)

ल०—अहो असंहार्यपरिच्छदाः सुकृतिनः । तथा हि—

तरङ्गा वीजन्ते सजलकणिकान् शीतमरुत-
स्तथैते सङ्गीतं दधति कलहंसाः कलगिरः
सखीव छायेयं रमयति परिष्वज्य हृदयं
वने शून्येऽप्यस्मिन् परिजनवतीवाऽत्रभवती ॥ ७ ॥

व्याकरण— असंहार्यपरिच्छदाः — असंहार्याः परिच्छदाः येषां ते (बहुव्री०) । सुकृतिनः—सुकृतिन्, प्र० ब० ।

अन्वय—तरङ्गाः सजल-कणिकान् शीत मरुतः बीजन्ते, तथा कलगिरः एते कलहंसाः सङ्गीतं दधति । इयं छाया हृदयं परिष्वज्य सखीवत् रमयति, अस्मिन् शून्ये अपि वने अत्रभवती परिजनवती इव ॥ ७ ॥

व्याकरण— वीजन्ते— √वीज् (आत्मने०), लट्—प्र० ब० । कलगिरः—कलाः गिरः येषां ते (बहुव्री०) । दधति—√धा, लट —प्र० ब० । परिष्वज्य—परि+√स्वञ्ज्+ल्यप् । रमयति—√रम (रमणकरना)+णिच्, लट्, प्र० ए० ॥ ७ ॥

कठिन शब्दार्थ—मरुत्—पवन । कलगिरः—मधुर स्वर वाले । **परिष्वज्य**—आलिङ्गन करके । **परिजनवती**—सेवकों से युक्त ॥७॥

(सीता बैठकर विश्राम करने का अभिनय करती है)

लक्ष्मण—अहो ! पुण्यात्माओं से (आनन्द-उपभोग) के उपकरण कभी पृथक् नहीं होते । [अर्थात् पुण्यशील व्यक्ति जहां कहीं, जिस किसी स्थान में रहते हैं उनके लिए सेवा की सामग्री जुट ही जाती है ।] जैसे कि—

सी०—यथा भणितं कुमारेण, स्वजनमध्यगताया इवात्राभिरमते
जह भणिदं कुमारेण, सअणमज्झगदाए विअ एत्थ अहिरमदि
मे हृदयम्।
मे हिअअं।

ल०—(आत्मगतम्) एषा विश्रान्ता सुखोपविष्टा च देवी, तदयमेवावसरो यथास्थितं व्यवसितुम्।

व्याकरण—भणितम्—√भण् (कहना)+क्त, प्र०ए०। अभिरमते—अभि+√रम् (आ०), लट्, प्र० ए०। मे=मम—अस्मद्, ष० ए०।

विश्रान्ता—वि + √श्रम्+क्त, (स्त्री०), प्र० ए०। सुखोपविष्टा—सुखेन उपविष्टा। उपविष्टा—उप+√विश्+क्त, (स्त्री०) प्र० ए०। व्यवसितुम्—वि+अव+√सो+तुमुन्। निपत्य—नि+√पत्+ल्यप्।

(गङ्गा की) तरंगे जलकणों से भरी हुई शीतल पवन चला रही हैं, मधुर स्वर वाले ये कलहंस संगीत कर रहे हैं, तथा यह छाया (सीता का) आलिङ्गन करके सखी के समान (उसके) हृदय को आनन्दित कर रही है। इस शून्य वन में भी देवी (सीता) मानों परिजनों से युक्त हैं ॥ ७ ॥

सीता—कुमार ने ठीक कहा है, यहां मेरा मन अपने बन्धुओं में बैठी हुई की तरह आनन्दित हो रहा है।

टिप्पणी—सातवें श्लोक में लक्ष्मण ने सीता के अधिकार पूर्ण व्यक्तित्व को अभिव्यक्त किया है कि किस प्रकार प्रकृति सीता की चेरी बन कर उस की सेवा कर रही है। तरंगे पंखा झेलने वाली दासियों का, हंस गाने वाले चारणों अथवा गायिकाओं का तथा सुन्दर छाया सखियों का कार्य कर रही है। प्रासाद से वन में आने पर भी सीता की सेवा में कोई अन्तर नहीं पड़ा।

(*प्रकाशम्*) (*सहसा पादयोर्निपत्य*) अयमनवरतप्रवासदुःखभागी निर्लक्षणो लक्ष्मणो विज्ञापयति—स्थिरीक्रियतां हृदयम् ।

सी०—(*ससम्भ्रमम्*) अपि कुशलमार्यपुत्रस्य ?

अवि कुसलं अंअउत्तस्य ?

ल०—(*वनं निर्दिश्य*) एवं गते कीदृशं कुशलमार्यस्य ?

सी०—आर्यया कैकेय्या पुनरपि समादिष्टो वनवासः ?

अज्जूए केकईए पुणो वि समादिठ्ठो वणवासो ?

ल०— समादिष्टो वनवासः, न पुनरम्बया ।

व्याकरण—गते— √गम् + क्त, सति सप्तमी । कीदृशम्—कीदृश, द्वि० ए० ।

समादिष्टा—सम् + आ + √दिश् + क्त (स्त्रीं०) प्र० ए० ।

लक्ष्मण—(अपने आप) देवी ने विश्राम कर लिया है तथा सुखपूर्वक बैठी है। (राम का सीता-निर्वासन विषयक) निश्चय प्रकट करने का यही अवसर है। (प्रकट) (सहसा चरणों में गिर कर)

सदा वनवास के दुःखों में साथ देने वाला यह गुणहीन लक्ष्मण कुछ निवेदन करना चाहता है—मन को दृढ़ कर लीजिए ।

सीता—(उद्वेग के साथ) आर्यपुत्र तो सकुशल हैं ?

लक्ष्मण—(वन की ओर संकेत करते हुए) इस परिस्थिति में आर्य की कुशलता कैसी ?

सीता—(क्या)माता कैकेयी ने पुनः वनवास की आज्ञा दी है ?

लक्ष्मण—वनवास की आज्ञा (तो) हुई है, पर माता जी की ओर से नहीं ।

सी०—केन पुनः समादिष्टः ?

केण उण समादिठ्ठो ?

ल०—आर्येण ।

सी०—कथं समादिष्टः ?

कहं समादिठ्ठो ?

ल०—*(वाष्पस्तम्भमभिनीय)*

आर्यस्यादेश इत्येववक्तुमिच्छामि यत्नतः ।
तथापि हृदयं गत्वा ग्रन्थिं बाध्नति भारती ॥ ८ ॥

अन्वय—आर्यस्य आदेशः इति एव यत्नतः वक्तुं इच्छामि तथापि भारती हृदयं गत्वा ग्रन्थिं बध्नाति ॥ ८ ॥

व्याकरण—क्तुम्—√वच् (कहना)+तुमुन् । गत्वा—√गम्+क्त्वा । बध्नाति—√बंध् (बांधना), लट् , प्र० ए० । ॥ ८ ॥

कठिन शब्दार्थ—आदेशः—आज्ञा । भारती—वाणी । ग्रन्थि—गांठ ॥ ८ ॥

सीता—तो किसने आज्ञा दी है ।

लक्ष्मण—आर्य ने ।

सीता—क्यों ?

लक्ष्मण—(आंसू रोकने का अभिनय करके)

आर्य (राम) की आज्ञा है, केवल इसी कारण जैसे तैसे (वह) कहना चाहता हूँ, तथापि मेरी वाणी हृदय तक पहुंच कर रुक जाती है ॥ ८ ॥

सी०– किं मम समादिष्टो वनवासः ?

किं मम समादिठ्ठो वणवासो ?

ल०— न केवलं तव, आत्मनोऽपि ।

सी० – कथमिव ?

कहं विअ ?

ल०—*प्रकामभुक्ते स्वगृहाभिमानात्*
सुहृज्जनेनाहितयागवह्नौ ।
आर्यस्य रम्ये भवनेऽपि वास-
स्तव प्रवासे वनवास एव ॥ ९ ॥

अन्वय—स्वगृह-अभिमानात् सुहृद्-जनेन प्रकाम-भुक्ते आहित-यागवह्नौ रम्ये भवने अपि आर्यस्य वासः तव प्रवासे वनवासः एव ॥ ९ ॥

व्याकरण—भुक्ते – √भुज् + क्त, स० ए० । स्वगृहाभिमानात्—स्वगृहस्य अभिमानात् (ष०तत्पु०) । आहित—आ + √धा (रखना) + क्त ॥ ९ ॥

कठिन शब्दार्थ—स्वगृहाभिमानात् —अपना घर समझ कर । प्रकामभुक्ते– आनन्दपूर्वक उपभुक्त । आहितयागवह्नौ—(जिस भवन में) यज्ञ की अग्नि स्थापित की गई हो ॥ ९ ॥

सीता—क्या मुझे वनवास दिया है ?

लक्ष्मण—केवल आपको (ही) नहीं, अपने आपको भी ।

सीता—वह कैसे ?

लक्ष्मण—अपना घर मान कर मित्रों द्वारा सानन्द उपभोग किए गए, (तथा) यज्ञ की (निरन्तर जलती हुई) अग्नि से युक्त, सुन्दर प्रासाद में भी आर्य का निवास आपके [प्रवास के कारण] वनवास ही है ॥ ९ ॥

सी०—वत्स ! परिस्फुटं कथय, अद्य कथं मम वनवास आर्य

वच्छ परिप्फुडं कहेहि, अज्ज कहं मम वणवासो अंअउत्तस्स

पुत्रस्य वनवास इति।

वणवासोत्ति।

ल०—किमपरं कथयामि मन्दभाग्यः।

त्यक्ता किल त्वमार्येण चारित्रगुणशालिना।
मयापि किल गन्तव्यं त्यक्त्वा त्वामिह कानने ॥ १० ॥

सी० - हा तात, आर्य कोसलाधिप ! अद्योपरतोऽसि।

हा ताद, अय्य कोसलाहिप ! अज्ज उवरदोसि।

(मोहं गच्छति)

अन्वय—चरित्र गुणशालिना आर्येण त्वं त्यक्ता किल, त्वाम् इह कानने त्यक्त्वा मया अपि गन्तव्यम् किल ॥१०॥

व्याकरण—चारित्रगुणशालिना—चारित्रगुणैः शालते यः तेन (बहुव्री०) त्यक्ता—√त्यज् (छोड़ना + क्त, प्र० ए०। त्वाम्—युष्मद, द्वि० ए०। त्यक्त्वा—√त्यज् +क्त्वा। गन्तव्यम्—√गम्+तव्यत् ॥१०॥

सीता—वत्स ! स्पष्ट कहो, आज यह मेरा वनवास, आर्यपुत्र का वनवास, यह कैसी (बात है) ?

लक्ष्मण—मैं अभागा और क्या कहूं ?

(प्रजारंजन आदि) चारित्रिक गुणों से सम्पन्न राम ने तो आपका परित्याग कर ही दिया है, आपको इस वन में छोड़ कर मुझे भी (लौट) जाना है ॥१०॥

सीता—हा तात ! पूज्य कौशलराज ! (मेरे लिए तो) आप आज मृत्यु को प्राप्त हुए हैं।

(मूर्च्छित हो जाती है)

ल०—(ससम्भ्रमम्) कष्टं भोः ! कष्टं भोः ! निर्घातपातदारुणेनानेन परित्यागवार्ताश्रवणेन नूनमुपरता देवी (*निर्वर्ण्य*) दिष्ट्या श्वसिति। तत्को नु खल्वस्याः प्रत्यानयनेऽभ्युपायः। (*विषादं नाटयति*) आश्चर्यमाश्चर्यम्—

भागीरथीशीकरशीतलेन सम्भाव्यमाना मृदुनानिलेन।

व्याकरण—अद्योपरतोऽसि— अद्य + उपरतः + असि। उपरत— उप + √रम् + क्त, प्र०ए०। असि—√अस्, लट्—म० ए०।

निर्घातपातदारुणेन—निर्घातपातेन इव दारुणेन (कर्मधा०)। निर्घात—निः + √हन् (मारना) + घञ्। परित्यागवार्ता—परित्यागस्य वार्ता (ष. तत्पु०)। निर्वर्ण्य—निर् + √वर्ण + ल्यप्। प्रत्यानयने—प्रति + आ + √नी + ल्युट् (अन), स० ए०।

अन्वय—भागीरथी–शीकर–शीतलेन मृदुना–अनिलेन सम्भाव्यमाना मत्–भाग्य–शेषेण च बोध्यमाना राजसुता कथंचित् प्रत्यागता ॥११॥

व्याकरण—भागीरथी-शीकर शीतलेन—भागीरथ्याः शीकरैः शीतलेन (तृ० तत्पु०)। शीकर—√शीक् + अरन्। शीतल—√शीत + लच्।

कठिन शब्दार्थ— शीकर—जलकण। मृदुना—कोमल (मंद)। अनिलेन—वायु से। सम्भाव्यमाना—सेवा की जाती है। प्रत्यागता— सचेत हो गई है।

लक्ष्मण—(उद्वेग से) अ ह ह ! बज्रपात के समान कठोर निर्वासन का यह समाचार सुन कर आर्या ने निश्चित ही प्राण छोड़ दिए हैं। (देख कर) सौभाग्य से श्वास ले रही है। इसे सचेत करने का क्या उपाय है ? (निराशा का अभिनय करता है) बड़ा आश्चर्य है कि—

मद्भाग्यशेषेण च बोध्यमाना प्रत्यागता राजसुता कथञ्चित् ॥ ११ ॥

सी०—वत्स लक्ष्मण ! किं गतोऽसि ?

वच्छ लक्खण ! किं गदोसि ?

ल०—आज्ञापय, तिष्ठाम्येष मन्दभाग्यः ।

सी०—किमुपालभ्यास्मि परित्यक्ता ?

किं उवालभिअ अंमि परिच्चत्ता ?

व्याकरण— मृदुना—मृदु, (तृ० ए०) । सम्भाव्यमाना—सम्+√भू+णिच्, (कर्मवाच्य)+शानच् (स्त्री), प्र० ए० । बोध्यमाना—√बुध्+णिच् (कर्मवाच्य),+शानच्, (स्त्री०), प्र० ए० । प्रत्यागता —प्रति+आ+√गम्+क्त (स्त्री०) प्र० ए० ॥११॥

गतः—√गम+क्त, प्र० ए० । असि—√अस्, लोट् , म० ए० ।

आज्ञापय—आ+√ज्ञा+णिच् (पय्), लोट्०, म० ए० ।

उपालभ्य—उप+आ+√लभ+ल्यप् । परित्यक्त परि+√त्यज्+क्त, स्त्री०- प्र० ए० ।

गंगा के जलकणों से शीतल (एवं) मन्द पवन से सेवा की जाती हुई, तथा मेरे शेष भाग्य से प्रबुद्ध की जाती हुई राज कुमारी ने किसी न किसी प्रकार चैतन्य को (पुनः) प्राप्त कर लिया है। ११ ॥

सीता—वत्स लक्ष्मण ! क्या चले गए हो ?

लक्ष्मण—आज्ञा दीजिए, (मैं) अभागा यह खड़ा हूँ ।

सीता—क्या दोष लगा कर मेरा परित्याग किया गया है ?

ल०—कीदृशो देव्या उपालम्भः ?

सी०—अहो मे ऽधन्यत्वम्, किमुपालम्भमात्रेण विना निगृही-
अहो मे अधण्णत्तणं, किं उवालम्भमेत्तएण विणा णिगहि-
तास्मि। किमस्ति किमपि तेन सन्दिष्टम् ?
दह्मि। किं अत्थि किं वि देण संदिट्टं ?

ल०—अस्ति !

सी०—कथय कथय।
कहेहि कहेहि।

ल०—*तुल्यान्वयेत्यनुगुणेति गुणोन्नतेति*
दुःखे सुखे च सुचिरं सहवासिनीति।

व्याकरण—निगृहीता—नि+ग्रह्+क्त, स्त्री० प्र० ए०। सन्दिष्टम्—सम्+ √दिश्+क्त, प्र०ए०।

अन्वय—सीते ! अहं जानामि, तुल्य-अन्वया इति, गुणोन्नता इति, सुखे दुःखे च सहवासिनी इति (अहं) केवलं जनवादभीत्या भवतीं त्यजामि, भावदोषात् तु न ॥१२॥

व्याकरण—तुल्यान्वया—तुल्यः अन्वयः यस्याः सा (बहुव्री०)। अनुगुणा—अनुकूलाः गुणाः यस्याः सा; (बहुव्री०)। जानामि—√ज्ञा, लट्, उ० ए०। जनवादभीत्या जनवादात् भीतिः तया (पं० तत्पु०) ॥१२॥

लक्ष्मण—आपका क्या अपराध हो सकता है ?

सीता—मैं कितनी अभागिन हूं, क्या मुझे बिना किसी अपराध के दण्ड दिया गया है ? उन्होंने कोई सन्देश भी दिया है ?

लक्ष्मण—है।

सीता—कहो कहो।

जानामि केवलमहं जनवादभीत्या
सीते त्यजामि भवतीं न तु भावदोषात् ॥ १२ ॥

अयमार्यस्य संदेशः ।

सी०—कथं जनवादभयेनेति । किमपि वचनीयं मेऽस्ति ?

कहं जणवादभयेणेत्ति । किंवि वअणीअं मे अत्थि ?

ल०—कीदृशमार्याया वचनीयम् ।

ऋषीणां लोकपाला ामार्यस्य मम चाग्रतः
अग्नौ शुद्धिं गता देवी किन्तु—

अन्वय—ऋषीणां लोक पालानां आर्यस्य मम च अग्रतः देवी अग्नौ शुद्धिं गता, किन्तु लोकः निरंकुशः ॥१३॥

कठिन शब्दार्थ—अन्वय—वंश । जनवाद—लोक निन्दा, लोका—पवाद । भावदोष— चित्त विकार ।

लक्ष्मण—'सीते ! मैं जानता हूं (कि तुम मेरे) समान वंश वाली, अनुकूल गुण (कर्म-स्वभाव) युक्त, गुणों के कारण उच्च पदवी पर पहुंची हुई ,तथा सुख दुःख की साथिन हो। (मैं केवल लोक निन्दा के भय से तुम्हारा परित्याग कर रहा हूँ, (किसी) चित्त विकार के कारण नहीं" ॥१२॥

यह है आर्य का सन्देश ।

सीता—क्या ! लोक-निन्दा के भय से । क्या मेरे सम्बन्ध में कोई आक्षेपार्ह बात है ?

लक्ष्मण—आर्या के विषय में निन्दनीय बात कैसी ?

ऋषियों, लोकपालों, आर्य (राम) तथा मेरे सम्मुख आप अग्नि (परीक्षा) में शुद्ध सिद्ध हुई थीं किन्तु........

सी०—(*लज्जां नाटयति*) कथय, किन्तु—
कहेहि, किंतु—

ल०—*लोको निरंकुशः ॥ १३ ॥*

सी०—अग्निशुद्धिसङ्कीर्तनेन प्रतिबोधितास्मि । रावणभवनोदन्तः
अग्गिसुद्धिसंकित्तणेण पडिबोधिदम्हि । रावणभवणउत्तंतो
पुनरप्युद्बाधयति । सीताया अपि नाम एवं सम्भाव्यत इति सर्व-
पुणोवि उब्वादिअदि । सीदाए वि णाम एव्वं संभावीअदित्ति सव्व-
था ऽलं महिलात्वेन । एवं परित्यक्ता । ननु परित्यक्तास्मि ? किन्न
हा अलं मम महिलत्तणेण । एव्वं परिच्चत्ता । णु परिचत्तम्मि ? किं ण

व्याकरण—अग्निशुद्धिसंकीर्तनेन—अग्नौ शुद्धेः यत् संकीर्तनं, तेन ।
प्रतिबोधिता—प्रति + √बुध् (जानना) + णिच् + क्त, स्त्री० प्र. ए. ।
उद्बाधयति—उद् + √बाध् (पीड़ा देना) + णिच + स्वार्थे, लट्०, प्र० ए० ।
सम्भाव्यते—सम् + √भू + णिच्, कर्मवाच्य । परित्यक्तुम्—परि + त्यज् + तुम् ।

सीता—(सीता लज्जा का अभिनय करती है) कहो, किन्तु—
लक्ष्मण—लोग निरंकुश हैं कुछ भी कहने को स्वतन्त्र हैं) ॥१३॥

सीता—अग्नि-शुद्धि के कथन से मुझे स्मरण कराया गया है । रावण के भवन में रहने का वृत्तान्त (प्रसंग) पुनः कष्ट दे रहा है । यदि सीता के विषय में भी इस प्रकार की सम्भावना की जा सकती है, तो स्त्रीत्वमात्र से कुछ काम नहीं ? (अर्थात् यदि पवित्र चरित्रयुक्त तथा परीक्षित नारी के विषय में भी सन्देह है तो नारी रूप में जन्म लेना अथवा स्त्रीत्व ही व्यर्थ है) इस प्रकार मेरा त्याग कर दिया गया है ? क्या मैं सचमुच त्यागी गई हूँ ? तो क्या आर्य पुत्र

खलु युक्तं ममार्यपुत्रपरित्यक्तमात्मानं परित्यक्तुम् ? किन्न खलु
खु जुत्तं मम अअंउत्तपरिच्चत्तं अत्ताणं परिच्चइदुं ? किं ण खु
तस्यैव निरनुक्रोशस्य समान एष प्रसवः प्रेक्षितव्य इति वचनीय-
तस्स एव्व णिरनुक्कोसस्स समाणो एसो पसओ पेक्खिदव्वोत्ति वअणीअ-
कण्टकोपहितं जीवितं परिरक्षामि।
कंटकोपहिदं जीविदं परिरक्खामि।

ल०—अनुगृहीतोऽस्मि । (*उत्थाय प्रणमति*) इदमपरमार्येण सन्दिष्टम् ।

सी०—किन्नु खलु भविष्यति ।
किं णु खु भविस्सदि ।

ल०—*त्वं देवि चित्तनिहिता गृहदेवता मे*
स्वप्नागता शयनमध्यसखी त्वमेव ।

व्याकरण—निरनुक्रोशस्य—निर्गतः अनुक्रोशः यस्मात् तस्य (बहुव्री०) । प्रेक्षितव्यः— प्र + √ईक्ष् (देखना) + तव्यत्, प्र. ए. । कण्टकोपहितम्—कण्टकेषु उपहितम्, (स० तत्पु०) । उपहितम्—उप + √धा (रखना) + क्त, प्र. ए. ।

अनुगृहीतः—अनु + √ग्रह् (ग्रहण करना) + क्त, प्र० ए० । उत्थाय—उद् + √स्था + ल्यप् । सन्दिष्टम्—सम् + √दिश् (तुदा०) + क्त, प्र. ए. ।

द्वारा परित्यक्ता मेरे लिए अपने शरीर का त्याग उचित नहीं । अथवा उसी निर्दय के तुल्य इस सन्तान की देख भाल करनी होगी, क्या) इस विचार से निन्दा के कांटों पर पड़े हुए [कांटों से बिंधे हुए] जीवन की रक्षा करूँ ?

लक्ष्मण—अनुगृहीत हूँ । (उठ कर प्रणाम करता है) आर्य ने यह (एक) और सन्देश दिया है ।

सीता—वह क्या ?

दाराऽन्तराहरणनिःस्पृहमानसस्य
याग तव प्रतिकृतिर्मम धर्मपत्नी ॥ १४ ॥

सी०—एवं सन्दिशतार्यपुत्रेण परित्यागदुःखं मयि निरवशेषमपनीतम् । न हि तथान्यासक्ता पत्युः, स्त्रीजनस्य दुःखमुत्पादयति
एव्वं संदिशंतेण अंअउत्तेण परिच्चाअदुक्कं मयि निरवसेसं अवणीदं । ण हि तह अण्णासत्ता पइणो, इत्थिआजणस्स दुक्कं उप्पादेदि

अन्वय—देवी ! त्वं मे चित्त-निहिता गृहदेवता, त्वम् एव स्वप्न-आगता शयन-मध्य-सखी (असि), दारान्तर-निस्पृह-मानसस्य मम यागे तव प्रतिकृतिः धर्म पत्नी भविष्यति ॥१४॥

व्याकरण—चित्तनिहिता – चित्ते निहिता (स०त०) । निहिता—नि + √धा + क्त । स्वप्नागता—स्वप्ने आगता (स० त०) । स्वप्न पुं० है ।

आगता—आ + √गम् + क्त प्र० ए० । दारान्तराहरण-निस्पृह-मानसस्य—अन्ये दाराः दारान्तराणि (मयूर व्यंसकादि समास) तेषाम् आहरणे (ष० तत्पु०) निस्पृहंमानसं यस्य तस्य (बहुव्री०) । निस्पृहम्—निर्गता स्पृहा यस्मात् तद् (बहुव्री०) ॥९४॥

सन्दिशता—सम् + √दिश् + शतृ, तृ० ए० । अपनीतम्—अप + √नी + क्त, प्र०ए० । अन्यासक्ता—अन्यस्मिन् आसक्ता (स० तत्पु०) । आसक्ता—आ + √ष्वञ्ज + क्त, प्र०ए० । अन्यासक्तः—अन्यस्याम् आसक्तः । सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवम्द्भावः । इस से 'अन्या' के स्थान मे 'अन्य' हुआ ।

कठिन शब्दार्थ—चित्तनिहिता-चित्त में स्थापित । दारान्तर—अन्यस्त्री । आहरण—ग्रहण । निस्पृह—अनिच्छुक । यागे - यज्ञ में । प्रतिकृतिः (स्त्री०)—मूर्ति ।

लक्ष्मण—देवि ! तुम मेरे हृदय में प्रतिष्ठित (मेरी) गृहदेवता हो, स्वप्न में आकर मेरे साथ सोने वाली भी तुम्हीं हो । अन्य स्त्री ग्रहण करने की इच्छा से रहित मन वाले (मुझ राम के) यज्ञ में तेरी मूर्त्ति (ही) मेरी धर्मपत्नी (होगी) ॥१४॥

यथान्यासक्तः।

जह अण्णासत्तो।

ल०—कः प्रतिसन्देशः ?

सी०—कस्य ?

कस्स ?

ल०—आर्यस्य।

सी०—एवं गतेऽपि प्रतिसन्देशः। श्वश्रूणां पुनर्मम वचनात्
एव्वं गदेवि पडिसंदेओ। अज्जूणं उण मम वअणादो
पादवन्दनं कृत्वा विज्ञापय—एवमहं नीरक्षा श्वापदसमाकीर्णे वने
पादवंदणं कदुअ विण्णवेहि—एव्वं अहं णीरक्खा सावदसमाइण्णे वणे

व्याकरण—प्रति सन्देशः—प्रतिगतः सन्देशः। पादवन्दनम्—पादयोः वन्दनम् (ष० त०) कृत्वा—√कृ+क्त्वा,। विज्ञापय—वि+√ज्ञा+आप्+णिच्, लोट्, म० ए०। नीरक्षा—निर्+रक्षा, निर्गता रक्षा यस्याः सा (बहुव्रा०)। प्रतिवसन्ती—प्रति+√वस्+शतृ, (स्त्री) प्र० ए०। अनुग्रहीतव्या—अनु+√ग्रह्+तव्यत्।

सीता—यह सन्देश भेज कर आर्य पुत्र ने परित्याग [निर्वासन] से (उत्पन्न) मेरे दुख को सर्वथा दूर कर दिया है। पर पुरुष में आसक्त (स्त्री) पति को इतना दुख नहीं देती जितना कि परस्त्री पर आसक्त (पुरुष) पत्नी को।

लक्ष्मण—उत्तर में आपका क्या संदेश है ?

सीता—किसके लिए ?

लक्ष्मण—आर्य के लिए।

सीता—ऐसी दशा हो जाने पर भी सन्देश! माताओं को मेरी ओर से चरण वन्दना करके कहना—'इस प्रकार सर्वथा

प्रतिवसन्ती च सर्वथा हृदयेनार्याभिरनुगृहीतव्येति ।
पडिवसंती अ सव्वहा हिअएण अय्याहिं अणुगहीदव्वेत्ति ।

ल०—प्रतिगृहीतेयमाज्ञा । आर्यस्य न किञ्चित् सन्दिष्टम् ।

सी०—तथानिष्ठुरो नाम सन्दिश्यत इत्यप्रतिहतवचनतैषा लक्ष्मणस्य, न सीताया धन्यत्वम् । तथा मम वचनात्तं जनं विज्ञापय—मन्दभागिनीमनुशोचन् वर्णाश्रमपरिपालनमभिघ्नन्नात्मानं न बाधय ॥
तह णिठुरो णाम संदीसीअदित्ति अप्पडिहदवअणदा एसा लक्खणस्स, ण सीदाए धण्णत्तणं । तह मम वअणादो तं जणं विण्णवेहि—मन्दभाइणीं अणुसोअंतो वण्णस्समपरिवालणं अहिग्घंतो अत्ताणं ण बाधेहि ।

व्याकरण — प्रतिगृहीता—प्रति+ग्रह्+क्त । सन्दिष्टम्— सम्+√दिश्+क्त । अप्रतिहतवचनता—प्रतिहतं वचनम् यस्य सः प्रतिहत वचनः (लक्ष्मणः) बहुव्री०) तस्य भावः तत्ता, सा न भवतीति अप्रतिहत० (नञ् तत्पु०) ॥ अनुशोचन्—अनु+√शुच्+भ्वा० शतृ, प्र० ए० । अभिघ्नन् अभि+√हन्+अदा० शतृ—प्र० ए० । बाधय—बाधस्व—√बाध्, लोट्० म० ए० ।

अरक्षित दशा में हिंसक वन्य जीवों से भरे हुए वन में रहती हुई (मुझ पर) हृदय से आप कृपा बनाए रखें ।'

लक्ष्मण—यह आदेश ग्रहण कर लिया। आर्य के लिए (आपने) कोई संदेश नहीं दिया ?

सीता—ऐसे निष्ठुर को (जो मैं) संदेश दे रही हूँ, वह केवल इसलिये कि लक्ष्मण की आज्ञा अलंघनीय है, (इसमें) सीता का सौभाग्य नहीं। तो मेरी ओर से उनको नम्र निवेदन करना, मुझ अभागिनी के विषय में शोक करने से (चारों) वर्णों तथा (चारों) आश्रमों के पालन की उपेक्षा करते हुए अपने आपको दुःखी मत बनाना (अर्थात्) मेरी चिंता मत करना । इस से वर्णाश्रम धर्म का पालन छूट जायगा तथा

सद्धर्मे स्वशरीरे सावधानो भवेति । वत्स लक्ष्मण ! किमुपालभे
सद्धंमे ससरीरे सावधाणो होहित्ति । वच्छ लक्खण ! उवालंभामि
महाराजम् ?
महाराअं ?

ल०—किमेतावत्यपि न प्रभवति देवी ?

सी०—एवमपि तं जनं विज्ञापय—न युक्तं तव निरपराधमिमं जनं
एव्वं वि तं जणं विण्णवेहि—ण जुत्तं तव णिरपराहं इमं जणं
सपदि हृदयतो निर्वासयितुं किं पुनर्विषयत इति ।
सपिदि हिअआदो णिव्वसिदुं किं उण विसआदोत्ति ।

ल०—सन्देष्टव्यमार्यया सन्दिष्टम्—

व्याकरण—सद्धर्मे—सत्+धर्मे, सन् च असौ धर्मः च तस्मिन् । उपालभे—उप+आ+√लभ् (पाना) लट्० उ० ए० । उपसर्ग वश उलाहना देना अर्थ हुआ ।

युक्तम्—√युज+क्त, प्र.ए. । निर्वासयितुम्—निर्+वस्+णिच्+तुम् । सन्देष्टव्यम्—सम्+√दिश्+तव्यत्, प्र.ए. ।

आपके मन व शरीर को कष्ट पहुंचेगा । अपने शुभ धर्म [कर्त्तव्य] तथा शरीर के पालन [रक्षण] के विषय में सावधान रहो" प्रिय लक्ष्मण ! महाराज को क्या उलाहना दूं ।

लक्ष्मण—क्या आपका इतना भी अधिकार नहीं ?

सीता—उन्हें यूं कहना, 'इस निर्दोष व्यक्ति को सहसा [एकदम] हृदय से निर्वासित करना आपके लिए उचित नहीं, देश से निकालने के विषय में तो क्या कहना' [अर्थात् वह तो और भी बुरा है ।]

लक्ष्मण—आपने युक्त संदेश दिया है ।

आर्या निर्वासिता नाम हृदयात्प्रभविष्णुना ।
कथं गृहाद् गृहं नाम कथं जनपदादपि ॥ १५ ॥

सी०—एवमपि मम वचनाद् विज्ञापयितव्यः—सा तपोवन-
एव्वं वि मम वअणादो विण्णविदव्वो—सा तपोवण-
वासिनी सर्वथा सीमन्तनिहितेनाञ्जलिना विनिवेदयति यदि अहं
वसिणी सव्वहा सीमण्टअणिहिदेन अंजलिणा विण्णवेदित्ति जइ अहं
निर्गुणा चिरपरिचितेति वा, अनाथेति वा, सीतेति वा स्मरणमात्र-
णिग्गुणा चिरपरिचिदेत्ति वा, अणाहेत्ति वा, सीदेत्ति वा, सुमरणमेत्त-
केणानुगृहीतव्येति ।
एण अणुगहिदव्वेति ।

अन्वय—प्रभविष्णुना आर्या हृदयात् निर्वासिता नाम कथं गृहात्, गृहं नाम कथं जनपदात् अपि ॥१५॥

व्याकरण—प्रभविष्णुः—प्रभवतीत्येवंशीलः, इष्णुच् प्रत्यय । जनपदः जनानां पदं स्थानम् ष० तत्पु० ।

विज्ञापयितव्यः—वि+√ज्ञा+आप्+णिच्+तव्यत् । निर्गुणा—निर्गताः गुणाः यस्याः इति (बहुव्री०) । अनाथा—अविद्यमानः नाथः यस्याः इति (बहुव्री०) ।

कठिन शब्दार्थ— प्रभविष्णुना—सामर्थ्य शील ने । जनपदात्—राज्य से ।

सामर्थ्यवान् (राम ने) आर्या को सम्भवतः हृदय से निर्वासित कर दिया है । (अन्यथा) घर को [गृहिणी ही घर है] घर से कैसे निकाल दिया, (यदि यह संभव नहीं) तो देश से भी (कैसे निकाल दिया ? ॥१५॥

भावार्थ—राम सामर्थ्यवान थे, सो उन्होंने सीता को अपने

ल०— *इमं सन्देशमाकर्ण्य क्षते क्षारमिवाहितम् ।*
दशामसह्यां शोकस्य व्यक्तमार्यो गमिष्यति ॥ १६ ॥

सी०—अतिमहिते ऽपि स्वमण्डले कथं ते सन्ति, स्त्रियो दुःख-
अदिमहिदे वि सअमंडले कहं तुमं सोंत्ति, इत्तिआ दुक्ख-

अन्वय—क्षते आहितं क्षारम् इव इमं संदेशम् आकर्ण्य आर्यः व्यक्तम् असह्यां दशां गमिष्यति ॥१६॥

व्याकरण—क्षते —√क्षण् (हिंसा करना)+क्त, स० ए० । आहितम् —आ+√धा+क्त । असह्याम्—न+√सह्+यत्+टाप्, द्वि० एक० ॥१६॥

कठिन शब्दार्थ—क्षते (नपुं०)—घाव पर । आहितम्—डाले हुए । क्षारम्—नमक । व्यक्तम्—क्रियावि० स्पष्ट, निश्चय ही ।

हृदय से निकाल दिया । इसमें उनका सामर्थ्य सफल हुआ । पर लक्ष्मण आश्चर्य करता है—सामर्थ्य होते हुए भी सीता (जो गृहिणी होने से घर रूप ही है) उसे घर से कैसे निकाल दिया । यदि यह संभव नहीं तो देश निकाला कैसे संभव हुआ ?

सीता—मेरी ओर से यह भी कहना, 'वह तपोवनवासिनी सीमंत [मांग–सिर] पर अंजलि रखकर कहती है कि यद्यपि गुणहीन हूं तथापि चिरकाल से (आपकी) परिचित हूँ इस कारण, अथवा अनाथ हूं इस विचार से, अथवा सीता हूं केवल इस नाते स्मरण करने की कृपा करना ।

लक्ष्मण—घाव पर छिड़के हुए नमक तुल्य (असह्य) इस संदेश को सुन कर आर्य निश्चय ही शोक की असह्य अवस्था को प्राप्त होंगे ॥१६॥

सीता—अत्यन्त समृद्ध भी अपने राज्य में (पत्नियों के बिना)

सहायाः । साम्प्रतं मया विना त्वयैकेनैष चिन्तयितव्यः । त्वं भ्रातुः
सहाया । संवदं मए विणा तए एक्कक्ण एसो चिंतिदव्वो । तुमं बादु
शरीरे सावधानो भवेति ।
स्सरीरे सावाह्णो होहित्ति ।

ल०—अनुरूपमेतन्महानुभावतायाः ।

सी०—वत्स लक्ष्मण ! प्रणन्तव्या त्वया मम वचनात् राघव-
वच्छ लक्खण ! पणमिदव्वा तुए मम बअणादो राहव
कुलराजधानी भगवत्ययोध्या । शुश्रूषितव्यः प्रतिमागतो महाराजः
उलराअधाणी भअवदी अयाज्जा । सुस्सूसिदव्वो पडिमागदो महाराओ

व्याकरण—अतिमहिते—अति+√मह (पूजा करना)+क्त, स० ए० । दुःखसहाया;—दु;ख सहायाः, सहायाः—सह अयन्ते गच्छन्ति इति सहायाः । चिन्तयितव्यः—√चिन्त् (सोचना)+णिच्+तव्यत्, प्र० ए० ।

प्रणन्तव्या—प्र+√नम्(झुकना)+तव्यत् । शुश्रूषितव्या—√श्रु+सन्+तव्यत् । साधयितव्या—√सिध्+णिच्+तव्यत् । प्रियंवदाः—प्रिय+मुम् (म्)+खच् । स्मर्त्तव्या—√स्मृ+तव्यत् ।

वे राजा लोग कैसे रहते हैं । स्त्रियां दुःख की साथिन होती हैं । (अतः) अब मेरे पीछे तूने ही उन की [राम की] चिन्ता करनी होगी । भाई के शरीर [स्वास्थ्य] के विषय में सावधान रहना ।

लक्ष्मण—यह आप के महान् उदार स्वभाव के सदृश ही है ।

सीता—प्रिय लक्ष्मण ! मेरी ओर से रघुवंश की राजधानी भगवती अयोध्या को मेरा प्रणाम करना, मूर्ति रूप में विराजमान महाराज (दशरथ) की सेवा [पूजा] करना, माताओं की आज्ञा

साधयितव्या श्वश्रूणामाज्ञप्तिः । समाश्वासयितव्याः प्रियंवदा मम
साहिदव्वा अज्जूणं अणत्ति । समस्सासिदव्वा पिअंवदा मम
प्रियसख्यः । स्मर्तव्या सर्वकालं मन्दभागिनी ।
पिअसहीओ । सुमरिदव्वा सव्वकालं मंदभाइणी ।

(इति रोदिति)

ल०—(*सोद्वेगम्*)

आर्यां स्वहस्तेन वने विमोक्तु
श्रोतुञ्च तस्याः परिदेवितानि ।
सुखेन लङ्कासमरे हतं मा—
मजीवयन्मारुतिरात्तवैरः ॥ १७ ॥

अन्वय—लङ्का-समरे सुखेन हतं मां आत्तवैरः मारुतिः आर्यां स्वहस्तेन वने विमोक्तुं तस्याः परिदेवितानि च श्रोतुम् अजीवयत् ॥ १७ ॥

व्याकरण—हतम्—√हन्+क्त, ० ए० । आत्तवैरः—आत्तं वैरं येन सः (बहुव्री०) आत्त—आ+√दा+क्त ।

मारुतिः—मरुतः अपत्यं पुमान्, मरुत् (अपत्यार्थे)+इञ् । विमोक्तुम्—वि+√मुच्+तुमुन् । परिदेवितानि—परि+√दिव्+(चुरा०) णिच्+क्त, प्र० ब० । श्रोतुम्—√श्रु+तुमुन् । अजीवयत्—√जी+णिच्, लङ्-प्र० ए० ॥१७॥

कठिन शब्दार्थ—आत्तवैरः—वैर लिए हुए (वैरी) । मारुतिः—पवन पुत्र=हनुमान् । परिदेवितानि—विलाप वचन, विलाप—क्रन्दन । अजीवयत्—जिलाया ॥१७॥

मानना, मेरी मधुर-भाषिणी सखियों को सान्त्वना देना । इस अभागिन को सदा स्मरण रखना ।

(रोती है)

लक्ष्मण—(खेद के साथ) लङ्का के युद्ध में सुख पूर्वक [शान्ति

(*विलोक्य*)

एते रुदन्ति हरिणा हरितं विमुच्य
हंसाश्च शोकविधुराः करुणं रुदन्ति ।
नृत्तं त्यजन्ति शिखिनोऽपि विलोक्य देवीं
तिर्यग्गता वरममी न परं मनुष्याः ॥ १८ ॥

अन्वय—देवीं विलोक्य एते हरिणाः हरितं विमुच्य रुदन्ति । शोक विधुराः हंसाः च करुणं रुदन्ति । शिखिनः अपि नृत्तं त्यजन्ति । अमी तिर्यक्-गताः वरम् परं मनुष्याः न ॥१८॥

व्याकरण—विलोक्य—वि+√लोक् (भ्वा० आ०)+ल्यप् । विमुच्य—वि+√मुञ्च् (छोड़ना)+ल्यप् । रुदन्ति—√रुद्, (अदा०), लट्०,प्र० ब० । शोकविधुराः—शोकेन विधुराः (सुप्सुपा) । विधुराः—विगता धः येषां ते । शिखिनः—शिखिन्, प्र० ब०, शिखा—इन् (मत्वर्थीय तद्धित) । नृत्तम्—√नृत +क्त प्र० ए० । तिर्यग्गताः—तिर्यक् गतं येषां ते ॥१८ ॥

कठिन शब्दार्थ—हरितम्—घास । विमुच्य—छोड़ कर । विधुराः—व्याकुल । शिखिनः—मयूर । तिर्यक्गताः—पशु पक्षी ॥१८॥

से] मरे हुए मुझको, वैरी हनुमान् ने पूज्या (भाभी) को अपने हाथों वन में छोड़ने तथा उसके विलासपूर्ण वचन सुनने के लिए जिलाया था ॥ १८ ॥

(देख कर)

देवी को देख कर हरिण घास (खाना) छोड़ कर रो रहे हैं, शोक से विकल हंस करुणा पूर्वक रुदन कर रहे हैं, (तथा) मोरों ने नाचना छोड़ दिया है । यह (सीता) के साथ सहानुभूति प्रकट करने वाले पशु-पक्षी (ही) अच्छे हैं, मनुष्य नहीं ॥१८॥

सी०—वत्स लक्ष्मण ! आसन्नास्तमयः सूर्यः । दूरे चेतो मानुष-
वच्छ लक्खण ! आसण्णात्थमयो सुरो । दूरे अ इदो माणुस-
सम्पातः । उड्डीनाः पक्षिणः । सञ्चरन्ति श्वापदाः । गच्छ न युक्तं
संपादो । उड्डीणा पक्खिणो । संचरंति सापदा. । गच्छ ण जुत्तं
परिलम्बितुम् ।
परिलंबिदुम् ।
ल०—(*अञ्जलिं बध्वा*) सर्वपश्चिमोऽयं लक्ष्मणस्य प्रणामाञ्जलिः
तत्सावधानं परिगृह्यताम् ।
सी०—नित्यावहिता खल्वहम् ।
णिच्चावहिदा खु अहं ।

व्याकरण—आसन्न—आ+√सद्+क्त । चेतः—च+इतः । सम्पातः—सन्+√पत् । उड्डीनाः—उद्+√डी (भ्वा० दिवा०)+क्त, प्र० ब० । संचरन्ति—सम्+√चर्, लट्०, प्र० ब० । युक्तम्—√युज् (रुधादि०, उ०)+क्त प्र० ए० । परिलम्बितुम्—परि+√लम्ब्+(भ्वा०, आ०)+तुमुन् ।

बद्ध्वा—√बन्ध्, (क्रयादि०)+क्त्वा । सर्व पश्चिमः—सर्वेषां पश्चिमः (ष० त०), पश्चाद्भवः—पश्चिमः । परिगृह्यताम्—परि+√ग्रह (क्रयादि०) कर्मवाच्य, लोट्, प्र० ए० ।

सीता—वत्स लक्ष्मण ! सूर्य अस्त होने को है और जन-वास [जन संचार] यहां से दूर है । पक्षी (अपने घोंसलों) की ओर उड़ रहे हैं । हिंसक जीव (भी) घूम रहे हैं । (अतः) जाओ, विलम्ब करना उचित नहीं ।
लक्ष्मण—(हाथ जोड़ कर) लक्ष्मण का यह अन्तिम प्रणाम है, अतः सावधानी से स्वीकार कीजिए ।
सीता—मैं सदा सावधान हूँ ।

ल०—विज्ञापयामि देवीम्—

आर्यं मित्रं बान्धवान् वा स्मरन्त्या
शोकादात्मा मृत्यवे नोपनेयः ।
इक्ष्वाकूणां सन्ततिर्गर्भसंस्था
सेयं देव्या यत्नतो रक्षणीया ॥ १६ ॥

सी०—अप्रतिहतवचनः खलु सौमित्रिः ।

अप्पडिहदवअणो खु सोमित्ती ।

ल०— इयमपरा विज्ञापना ।

सी०—कान्या ?

का अण्णा ?

अन्वय—आर्यं, मित्रं, बान्धवान् वा स्मरन्त्या (त्वया) आत्मा शोकात् मृत्यवे न उपनेयः । इक्ष्वाकूणां सन्ततिः गर्भे संस्था, सा इयं देव्याः यत्नतः रक्षणीया ॥१६॥

व्याकरण—बान्धवान्—बन्धुः एव बान्धवः । बन्धु+अण् (स्वार्थे), द्वि० ब० । स्मरन्त्या—√स्मृ—शतृ, स्त्री, तृ० ए० । उपनेयः—उप+√नी +यत्, प्र० ए० । रक्षणीया—√रक्ष्+अनीयर्, प्र० ए० ॥१९॥

लक्ष्मण—आप से निवेदन है (कि)—

आर्य पुत्र (राम), सखियों तथा बन्धुओं को स्मरण रखते हुए शोक-वश (कहीं) आत्महत्या न कर लेना । इक्ष्वाकुवंश की सन्तान आपके गर्भ में (स्थित) है, उसे देवी ने यत्न पूर्वक (सुरक्षित) रखना ॥१६॥

सीता—सुमित्रासुत लक्ष्मण के वचन का उल्लंघन नहीं किया जा सकता ।

लक्ष्मण— एक और प्रार्थना है ।

ल०—*ज्येष्ठस्य भ्रातुरादेशादानीय विजने वने ।*
परित्यक्तासि देवि त्वं दोषमेकं क्षमस्व मे ॥ २० ॥

सी०—(*ससम्भ्रमम्*) ज्येष्ठवचनानुवर्ती त्वमिति परितोषकाले को
जेठ्ठवअणाणुवत्ति तुमेत्ति परितोसकाले को
दोष आशङ्क्यते ?
दोसो आसंकीअदि ?

(*लक्ष्मणः सप्रदक्षिणं प्रणम्य परिक्रामति*)
(*सीता रोदिति*)

ल०—(*दिशोऽवलोक्य*) भो भो लोकपालाः ! शृण्वन्तु भवन्तः—
एषा वधूर्दशरथस्य महारथस्य

अन्वय—देवि ! ज्येष्ठस्य भ्रातुः आदेशात् विजने वने आनीय परित्यक्ता असि । मे (इमम्) एकं दोषं क्षमस्व ॥२०॥

व्याकरण—विजने—विगतः जनः, जनसंचारो यस्मात् तद्, तस्मिन् । आनीय— आ+√नी+ल्यप् । क्षमस्व—√क्षम् (भ्वा०, आत्मने०), लोट्, म० ए० ॥२०॥

सीता—और क्या ?

लक्ष्मण—पूज्ये ! (मैंने) बड़े भाई की आज्ञा से आपको निर्जन वन में लाकर छोड़ दिया है। मेरे इस एक अपराध को क्षमा करना ॥२०॥

सीता—(उद्वेग के साथ) तुम बड़ों के आदेश का पालन करने वाले हो, इससे प्रसन्नता के समय (तुम में) कौन से अपराध की शङ्का हो सकती है।

(लक्ष्मण प्रदक्षिणा लेकर सीता को प्रणाम करता है)
(सीता रोती है)

लक्ष्मण—(चारों ओर देख कर) हे लोकपालो ! कृपया सुनिए—

सी०—अतिश्लाघनीयान्यक्षराणि श्रूयन्ते ।

अदि सिलाहणिज्जाइं अक्खराइं सुणीअंदि ।

ल०—*रामाह्वयस्य गृहिणी मधुसूदनस्य ।*

सी०—कुतो मे तादृशो भागधेयः ?

कुदो मे तादिसो बाहधेओ ?

ल०—*निर्वासिता पतिगृहात्—*

सी०—(*कर्णौ पिदधाति*)

ल०—*विजने वनेऽस्मिन्*

एकाकिनी वसति रक्षत रक्षतैनाम् ॥ २१ ॥

अन्वय—एषा महारथस्य दशरथस्य वधूः, रामाह्वयस्य मधुसूदनस्य गृहिणी पतिगृहात् निर्वासिता, अस्मिन् विजने वने एकाकिनी प्रतिवसति, एनां रक्षत रक्षत ॥२१॥

व्याकरण—श्लाघनीयानि—√श्लाघ्+(भ्वा० आ०) अनीयर्, नपुं०, प्र० ब० । मधुसूदनस्य— मधुनामकं दैत्यं सूदयतीति मधुसूदनः, तस्य (द्वि० तत्पु०) । श्रूयन्ते √श्रु, कर्मवाच्य, लट्, प्र० ब० । गृहिणी—गृह+इन् । निर्वासिता निर्+√वस्+क्त, प्र० ए० । रक्षत—√रक्ष्, लोट्, म० ब० । भागधेय—भाग्य । इस अर्थ में यह शब्द नपुंसक ही होता है, हां बलि अर्थ में पुं० होता है ।

यह महाराज दशरथ की पुत्र वधू,

सीता—अति प्रशंसनीय शब्द सुन रही हूँ ।

लक्ष्मण—राम नामधारी मधुसूदन (विष्णु) की धर्मपत्नी,

सीता - मेरा ऐसा भाग्य कहां ?

लक्ष्मण—पतिगृह से निकाली हुई

सीता—(कान बन्द कर लेती हैं)

लक्ष्मण—इस निर्जन वन में अकेली रह रही है, इसकी रक्षा

(गर्भं दर्शयति)

ल०—एनामपि भगवतीम् आर्याया कृते विज्ञापयामि—

जातश्रमां कमलगन्धकृताधिवासैः
काले त्वमप्यनुगृहाण तरङ्गवातैः।
देवी यदा च सवनाय विगाहते त्वां
भागीरथि ! प्रशमय क्षणमम्बुवेगम् ॥ २२ ॥

अन्वय—भागीरथि ! जातश्रमां (आर्यां सीताम्) कमल-गन्ध-कृत-अधिवासैः तरंगवातैः काले त्वम् अपि अनुगृहाण। यदा च देवी सवनाय त्वां विगाहते (तदा) क्षणम् अम्बुवेगं प्रशमय ॥२२॥

व्याकरण—जातश्रमाम्—जातः श्रमः यस्याः ताम् (बहुव्री०)। कमलगन्धकृताभिवासैः—कमलानां गन्धेन कृतः अधिवासः यैः तैः (बहुव्रीं०)। अनुगृहाण—अनु+$\sqrt{}$ग्रह्, लोट्, म० ए०। विगाहते—वि+$\sqrt{}$गाह्, लट्, प्र० ए०। अम्बुवेगम्—अम्बुनः वेगम् (ष०तत्पु०)। प्रशमय—प्र+$\sqrt{}$शम्, +णिच्, लोट्, म० ए० ॥२२॥

कठिन शब्दार्थ—जातश्रमाम्—थकी हुई। सवनाय—स्नान करने के लिए। अम्बुवेगम्—जल प्रवाह ॥२२॥

करें, रक्षा करें ॥२१॥

(सीता गर्भ की ओर संकेत करती है)

लक्ष्मण—इस भगवती (गंगा) से भी आर्या के लिए निवेदन करता हूं—

हे गंगे ! परिश्रान्त (आर्या सीता को) कमल-गन्ध से सुवासित, तरंगों की पवनों (अर्थात् तरंगों का स्पर्श करके उठती हुई पवनों) से समय समय पर तूने भी अनुगृहीत करना तथा जब देवी स्नान करने के लिए तुम्हारा अवगाहन करें (तो) क्षण भर के लिए जल-प्रवाह का वेग शांत [मंद] कर देना ॥२२॥

ये केचिदत्र मुनयो निवसन्त्यरण्ये
विज्ञापयामि शिरसा प्रणिपत्य तेभ्यः
स्त्रीत्युज्झितेत्यशरणेति कुलागतेति
देवी सदा भगवतीत्यनुकम्पनीया ॥ २३ ॥
एषोऽञ्जलिर्विरचितो वनदेवतानां
विज्ञापनां क्षणमिमामवधारयन्तु ।

अन्वय—ये केचिद् मुनयः अत्र अरण्ये वसन्ति तेभ्यः शिरसा प्रणिपत्य विज्ञापयामि भगवती देवी, स्त्री इति, उज्झिता इति, अशरणा इति, कुलागता इति, सदा अनुकम्पनीया ॥२३॥

व्याकरण—प्रणिपत्य—प्र+नि+√पत्+ल्यप् । उज्झिता—उद्+√उज्झ् (तुदा० प०—त्याग करना)+क्त । कुलागता—कुलात् आगता (पं० तत्पु०) अनुकम्पनीया—अनु+√कम्प्+अनीयर् ॥२३॥

अन्वय—वनदेवतानाम् एषः अञ्जलिः विरचितः, इमां विज्ञापनां क्षणम् अवधारयन्तु । भगवतीभिः सुप्ता, प्रमादवशगा, विषमस्थिता वा इयम् आर्या यत्नात् अवेक्षणीया ॥२४॥

व्याकरण—देवता—देवः एव देवता, तल् स्वार्थे । विज्ञापना—वि+√ज्ञा+युच् (अन) । विरचितः—वि+√रच्+णिच्+क्त, प्र० ए० । अवधारयन्तु–अव+√धृ (धारण करना) चुरा०, लोट्०, म० ब० । सुप्ता—√स्वप+क्त, प्र० ए० । प्रमादवशगा—प्रमादस्य वशं गता (बहुव्री०) । विषमस्थिता—विषमे सङ्कटे स्थिता (स० तत्पु०) । अवेक्षणीया–अव+ईक्ष्+अनीयर्, प्र० ए० ॥२४॥

जो कोई मुनि इस वन में रहते हैं उन को मैं सिर झुका कर [प्रणाम करके] निवेदन करता हूँ कि (आप) पूज्या देवी (सीता) 'स्त्री है', 'परित्यक्ता है', 'निराश्रिता है', 'कुलीना है' इस विचार से सदा (इस पर) दया करें ॥२३॥

सुप्ता प्रमादवशगा विषमस्थिता वा
यत्नादियं भगवतीभिरवेक्षणीया ॥ २४ ॥
भो भो हिंस्रा भूमिरेषा भवद्भिः
वर्ज्या देशो न प्रवेश्यः परेषाम् ।
मृग्यो मृग्यो विप्रवासे सखीनां
यूयं सख्यो मा क्षणं मुञ्चतैनाम् ॥२५ ॥

कठिन शब्दार्थ—विज्ञापनाम्—प्रार्थना को । क्षणम्—द्वितीया (अत्यन्त संयोगे) ज़रा, कृपया । अवधारयन्तु—सुनें, ध्यान दें । विषमस्थिताम्—विपत्तिग्रस्त । अवेक्षणीया—देखभाल करें, रक्षा करें ।।२४।।

अन्वय—भो भो हिंस्राः ! एषा भूमिः भवद्भिः वर्ज्या, परेषां देशः न प्रवेश्यः । मृग्यः, मृग्यः , सखीनां विप्रवासे यूयं सख्यः एनां क्षणम् अपि न मुञ्चत ।२५।

व्याकरण—वर्ज्या—√वर्ज् + ण्यत् । परेषाम्—पर (सर्वनाम), ष० ब० । प्रवेश्यः—प्र + √विश् + ण्यत् । मृग्यः—मृगी, सम्बोधन, बहु० । मुञ्चत—√मुच्, लोट्, म० ब० ।।२५।।

वनदेवताओं को यह (मेरा) दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम है, कृपया इस निवेदन को सुनें । सम्माननीय आप सुप्तावस्था में, प्रमाद की दशा में तथा विपत्ति के समय इस पूजनीया की यत्नपूर्वक रक्षा करें ।।२४।।

हे हिंसक प्राणियो ! यह (सीता द्वारा अधिष्ठित) प्रदेश आप छोड़ दें [इस भूमि से आप दूर रहें], दूसरों के देश स्थान में न आना चाहिए । हे हरिणियों ! सखियों की अनुपस्थिति में तुम्हीं (सीता की) सखियां हो, इसे क्षणभर भी (अकेली) न छोड़ना ।।२५।।

सख्यो नद्यः स्वामिनो लोकपालाः
मातर्गङ्गे भ्रातरः शैलराजाः ।
भूयो भूयो याचते लक्ष्मणोऽयं
यत्नाद्रक्ष्या राजपुत्री गतोऽहम् ॥ २६ ॥

(*प्रणम्य निष्क्रान्तः*)

सी० – कथं सत्यमेव मामेकाकिनीं परित्यज्य गतो लक्ष्मणः । (*विलोक्य*)
कहं सच्चं एव मं एआइणीं परिच्चइअ गदो लक्खणो ।

अन्वय—सख्यः नद्यः ! स्वामिनः लोकपालाः ! मातः गङ्गे ! भ्रातरः शैलराजाः ! अयं लक्ष्मणः भूयः भूयः याचते, राजपुत्री यत्नात् रक्ष्या, अहं गतः ॥२६॥

व्याकरण—शैलराजा—शैलानां राजानः (ष० त०), तत्पुरुष समास के अन्त में राजन्, अहन्, सखि शब्दों को क्रमशः राज, अह, सख का आदेश होता है । रक्ष्या—√रक्ष्+ण्यत् । याचते—√याच् (भ्वा० आ०) लट्, प्र० ए० ॥२६॥

णम्य—प्र+√नम्+ल्यप् । अस्तमितः—अस्तम्इतः । इतः—√इ (अदा० प०)+क्त, प्र०ए० । दृश्यते—√दृशिर् (भ्वा०) कर्मवाच्य, लट्, प्र० ए० । आच्छाद्यते—आ+√छद् (ढकना)+णिच् कर्मवाच्य्, लट्, प्र० ए० । निर्मानुषम्—निर्गता मानुषाः यस्मात् तत् (बहु ब्रीहि) । अनुभाविता —अनु+√भू+णिच् ।

ऐ सखी नदियो ! स्वामी लोक पालो ! माता गङ्गे ! भाई पर्वतो ! यह लक्ष्मण बारम्बार प्रार्थना करता है (कि) राजकुमारी की यत्न पूर्वक रक्षा करना । मैं जा रहा हूँ ॥२६॥

(प्रणाम करके चला जाता है)

सीता—क्या सचमुच ही मुझे अकेली छोड़ कर लक्ष्मण चला

हा धिक् !हा धिक् !अस्तमितः सूर्यः,स्वरेणापि लक्ष्मणो न दृश्यते
हद्धी हद्धी ! अत्थमिदो सूरो, सरेण वि लक्खणो ण दीसई
हरिणा अपि स्वकमावासमायान्ति, उड्डीनाः पक्षिणः, सञ्च-
हरिणा वि सअं आवासं आअन्ति, उड्डीणा पक्खिणो, संच-
रन्ति श्वापदाः, आच्छाद्यतेऽन्धकारेण दृष्टिः, निर्मानुष महा-
रंति सापदा, आच्छादीअदि अंधआरेण दिट्टी, णिमाणुसं महा-
रण्यम्, किं करोमि मन्दभाग्या, कीदृशमरण्ये प्रव्रजाम्येका-
रण्णं, किं करेमि मंदभाआ, कीस अरण्णाहिं पव्वजमि इआ-
किनी,...........................किन्नु खलु मया पापं कृतम्
इणी अदेस असलाका ति गां मि मि (?) किंणुखु मए पापं किदं
यस्येदानीमेव विरहं सर्वथाऽनुभवितास्मि। कथं........ कथं
जस्स दाणिं एव विरहं सव्वहा अणुभाबिदोह्मि, कहं देहवितोनलि (?) कहं
तावल्लक्ष्मणानियुक्ता वनदेवता..... ...कथं ते राघवकुलक्रमागता
दाव लक्खणाणिउत्ता वणदेवता...........कहं दे राहवकुलक्कमागदा
वसिष्ठवाल्मीकिप्रमुखा महाप्रभावा महर्षयस्त इदानीं मां
वसिष्ठवंमीइप्पमुहा महाप्पहावा महेसिणो ते दाणिं मं
परित्यज्य
परित्ता अ अभिदेहित्ति (?)

गया है। (देख कर) हाय ! सूर्य अस्त हो गया है, लक्ष्मण स्वरमात्र से भी दिखाई नहीं दे रहा [अर्थात् लक्ष्मण का स्वर भी सुनाई नहीं दे रहा], हरिण भी अपने वास स्थानों [घरों] को लौट रहे हैं, पक्षी (घोंसलों की ओर) उड़ गए हैं, हिंसक पशु घूम रहे हैं, दृष्टि अन्धकार के कारण मन्द हो रही है। यह महावन निर्जन है, (मैं) अभागिन क्या करूँ, वन में अकेली कैसे घूमूँगी (रहूँगी), मैंने क्या पाप किया है जिस के कारण यह विरह-(दुख) भोग रही हूँ। क्या......क्या यह लक्ष्मण

(इति मोहं गच्छति)

(ततः प्रविशति वाल्मीकिः)

वा०—(ससम्भ्रमम्)

आकर्ण्य जह्नुतनयां समुपागतेभ्यः
सन्ध्याभिषेकविधये मुनिदारकेभ्यः ।
एकाकिनीमशरणां रुदतीमरण्ये
गर्भातुरां स्त्रियमतित्वरयागतोऽस्मि ॥ २७ ॥

अन्वय—सन्ध्या-अभिषेक-विधये जह्नु-तनयां समुपागतेभ्यः मुनि-दारकेभ्यः अरण्ये एकाकिनीं अशरणां रुदतीं गर्भ-आतुरां स्त्रियम् आकर्ण्य अतित्वरया आगतः अस्मि ।।२७।।

व्याकरण—सन्ध्याभिषेकविधये — सन्ध्यायाम्— अभिषेकस्य विधये (=विधानाय) तत्पु०) । अभिषेक—पु.० अभि+√सिच्+घञ् । जह्नुतनयाम्—जह्नोः तनयाम् (ष० तत्पु०) । समुपागतेभ्यः—सम्+उप+आगतेभ्यः । मुनिदारकेभ्यः—मुनीनां दारकेभ्यः (ष० तत्पु०), मन्यते इति मुनिः । रुदतीम—√रुद्+शतृ, द्वि० ए० । गर्भातुराम्—गर्भेण आतुराम् (सुप्सुपा) । आगतः – आ √गम्+क्त प्र० ए० । अस्मि—√अस् (अदादि०), लट्, उ० ए० ।।२७।।

कठिन शब्दार्थ—सन्ध्याभिषेक-सायंकालीन स्नान । जह्नुतनया—गंगा । अतित्वरया-अतिशीघ्रता से ।

द्वारा नियोजित (प्रेरित) वन देवियां ....? क्या कई पीढ़ियों से रघु कुल से सम्बन्धित वसिष्ठ, वाल्मीकि आदि प्रभावशाली महर्षि अब मुझे छोड़ कर...............?

(मूर्च्छित हो जाता है)
(वाल्मीकि प्रवेश करता है)

वाल्मीकि—(खेद के साथ) सायंकालिक स्नान करने के लिये गंगा पर आये हुए मुनि-कुमारों से वन में (किसी) अकेली, असहाया,

तद्यावत्तामेवान्वेषयामि ।

(*अन्वेषं नाटयति*)

सी०—(*प्रत्यागम्य*) क एष मां वीक्षते । (*विचिन्त्य*) न *कोऽपि,*
को एस मं विज्जई । ण कोवि,

आज्ञप्तिकरलक्ष्मणविज्ञप्त्या अनुचरन्ती भगवती भागीरथी
आणत्तिकरलक्खणविण्णत्तिआ अणिच्चरित्ति भअवई भाईरई
तरङ्गैर्मामनुगृह्णाति ।
तरंगाए मामणुगह्णादि ।

व्याकरण— तद्यावत्तामेवान्वेषयामि—तद्+यावत्+ताम्+एव+अन्वेषयामि । प्रत्यागम्य—प्रति+आ+√गम्+ल्यप् । वीक्षते—वि+√ईक्ष्, लट्, प्र० ए० । विचिन्त्य—वि+√चिन्त्+णिच् ल्यप् । आज्ञप्तिकर—आज्ञप्तिं करोति इति आज्ञप्तिकरः (दासः) आज्ञप्तिकरस्य लक्ष्मणस्य विज्ञप्त्या अनुचरन्ती—अनु+√चर्+शतृ, प्र०ए०। अनगृह्णाति–अनु+√ग्रह,लट्, प्र० ए० । अन्धकारसंरुद्धतया—अन्धकारेण संरुद्ध इति अन्धकारसंरुद्धः, तस्य भावः तत्ता, तया ।

रोती हुई॥ (तथा) गर्भ (भार की वेदना) से पीडित स्त्री के विषय में सुन कर अतिशीघ्रता से आया हूँ ॥२७॥
तो उसे ही ढूँढता हूँ ।

(ढूँढने का अभिनय करता है)

सीता—(सचेत होकर) यह कौन मेरी ओर देख रहा है । (सोच कर) कोई भी तो नहीं, आज्ञाकारी लक्ष्मण की प्रार्थना स्वीकार करती हुई पवित्र गंगा मुझे अनुगृहीत कर रही है ।

वा०—अयमन्धकारसंरुद्धतया दृष्टिसञ्चारस्य न दृश्यते, अतः शब्दापयिष्ये । अयमहं भोः ।

सी०—(*सहर्षम्*) वत्स लक्ष्मण ! प्रतिनिवृत्तोऽसि ?

वच्छ लक्खण ! पडिणिउत्तोसि ?

वा०—नाहं लक्ष्मणः ।

सी०—(*अवकुण्ठं नाटयति*) अत्याहितम् ! अन्य एष को वा परपुरुषः ।

अच्चाहिदं, अण्णो एसो को वा परपुरुसो,

कथमिदानीं वारयिष्यामि महाहितम् ? (*विचिन्त्य*) एवम्

कहं दाणिं वारइस्सं महादिदं । एव्वम

स्त्री अहमेकाकिनी च ।

इत्थिआहं एआइणी अ ।

वा०—एष स्थितोऽस्मि । वत्से, तवाप्यलं परपुरुषशङ्कया, दिवसावसानसवनाय भागीरथीं समुपास्य प्रतिनिवृत्तेभ्यो मुनिदारकेभ्य-

---

व्याकरण—संरुद्ध—सम्+रुध्+क्त शब्दापयिष्ये—√शब्द्+आप् णिच्, लृट्, उ० ए० । प्रतिनिवृत्तः—प्रति+नि+√वृत्+क्त, प्र० ए० । असि—√अस्, लट् म० ए० ।

वाल्मीकि—अन्धकार के कारण दृष्टि के अवरुद्ध होने से (वह स्त्री) दिखलाई नहीं दे रही, अतः (उसे) पुकारता हूँ । ओओ ! मैं हूँ (यहां) ।

सीता—(सहर्ष) वत्स लक्ष्मण ! लौट आए हो ।

वाल्मीकि—मैं लक्ष्मण नहीं ।

सीता—(घूंघट निकालती है) बड़ी भारी विपत्ति है । यह अपरिचित व्यक्ति कौन है ? इस महा-आपद को कैसे दूर करूँ ? (सोचकर) ऐसे सही । मैं स्त्री हूं, अकेली हूं ।

वाल्मीकि—लो मैं यहीं रुक जाता हूँ । पुत्रि ! तुम्हें अपरिचित व्यक्ति-

स्त्वद्वृत्तान्तमुपलभ्य तपोधनोऽहं त्वामेवाभ्युपपत्तुमुपागतः। पृच्छामि चात्रभवतीम्—

धर्मेण जितसङ्ग्रामे रामे शासति मेदिनीम्।
कथ्यतां कथ्यतां वत्से विपदेषा कुतस्तव ॥ २८ ॥

सी०—तत एव पूर्णचन्द्रान्मेऽशनिपातः।

तदो एव्व पुण्णचंदादो मे असणिपादो।

वा०—कामं रामादेव हि विपत्तिमुपागता ?

व्याकरण—परपुरुषशङ्कया—परः च असौ पुरुषः च परपुरुषः (कर्मधारय), परपुरुषस्य शङ्कातया (ष० तत्पु०)। समुपास्य—सम्+उप्+√आस् (अदा० आ०) ल्यप्। उपलभ्य—उप+√लभ् (भ्वा०आ०)+ल्यप्। अभ्युपपत्तुम्—अभि+उप+√पद्+तुमुन्।

अन्वय—जितसंग्रामे रामे धर्मेण मेदिनीं शासति (सति) वत्से ! कथ्यतां कथ्यतां एषा तव विपद् कुतः ॥ २८ ॥

व्याकरण—जितसंग्रामे—जितः संग्रामः येन तस्मिन् (बहुव्री०)। शासति—√शास् (अदा०प०)+शतृ, स० ए०। कथ्यताम्—√कथ् (चुरा०) णिच्, कर्मवाच्य लोट्, प्र० ए० ॥ २८ ॥

कठिन शब्दार्थ—मेदिनीम्—पृथ्वी पर। शासति—शासन करने पर। विपद्—(स्त्री०) विपत्ति ॥२८॥

की आशंका मत हो। सायंकाल को स्नान के लिए भगवती गंगा का सेवन करके लौटे हुए मुनिकुमारों से तुम्हारा समाचार पाकर मैं तपस्वी तुम्हारी ही सहायता के लिए आया हूं तथा देवी से पूछता हूं—

युद्ध-विजेता राम के धर्मानुसार पृथ्वी पर शासन करते हुए, हे पुत्रि ! कहो कहो तुम पर यह विपत्ति कैसे (कहां से) आई ॥२८॥

सी०—अथ किम् ।

अह इं ।

वा०—यदि त्वं वर्णाश्रमव्यवस्थाभूतेन महाराजेन निर्वासितासि तत् स्वस्ति भवत्यै, गच्छाम्यहम् । (*परिक्रामति*)

सी०—अथ विज्ञापयामि ।

अह विण्णवेमि ।

वा०—कथय ।

सी०—यदि रघुवरेण निर्वासितेति भवता नानुकम्पनीया, एषा पुनर्गर्भ-
जइ रहुवरेण निव्वासिदेत्ति भअदा णाणुकंपणीआ, एसाउण गब्भ-
गता रघुसगरदिलीपदशरथप्रभृतीनां तादृशानां सन्ततिरिती-
गदा रहुसअरदिलीपदसरहपहुदीणं ताइसीणं संतदित्ति
दानीं प्रतिपालनीया ।
दाणिं पडिपालणीया ।

व्याकरण—अशनि पातः—अशनेः पातः (ष० तत्पु०) ।

स्वास्ति भवत्यै—'स्वस्ति' के योग्य मे 'भवत्' शब्द में चतुर्थी विभक्ति ।

अनुकम्पनीया अनु+√कम्प्+अनीयर् प्र०ए० । गर्भगता—गर्भं गता (द्वि० तत्पु०) । प्रतिपालनीया—प्रति+√पाल् (पा+ल्, णिच्)+अनीयर् ।

सीता—उसी पूर्ण चन्द्र से मुझ पर वज्रपात हुआ है ।

वाल्मीकि—क्या सचमुच राम के कारण ही (तुम पर यह) विपत्ति आई है ।

सीता—और क्या ।

वाल्मीकि–यदि तुम्हें (चारों) वर्णों तथा चारों आश्रमों के व्यवस्थापक महाराज (राम) ने निर्वासित किया है तो तेरा भला हो, मैं चलता हूँ ।

(कुछ पग चलता है)

बा०—(*प्रतिनिवृत्य*) कथमिक्ष्वाकुवंशमुदाहरति, तदनुयोक्ष्ये । वत्से, किञ्च दशरथस्य वधू : ?

सी०—यद् भवान् आज्ञापयति ।

जं भअवं आणवेदि ।

बा०—किञ्च विदेहाधिपतेर्जनकस्य दुहिता ?

व्याकरण—उदाहरति— उद+आ+√हृ, लट, प्र० ए० (नाम लेती है । अनुयोक्ष्ये—अनु+√युज्,लृट, उ० ए० । अवतारः—अव+√तृ+घञ् । योग चक्षुषा—योग एव चक्षुः (मयुरव्यंसकादि०) तेन । चक्षुषा—चक्षुष्, तृ० ए० । निरपराधा—निर्गतः अपराधः यस्यः सा (बहुव्री०) । अपरित्याज्या—अ (न) + परि + √त्यज् + ण्यत् । एहि—√इ, लोट म० ए० ।

सीता—मैं प्रार्थना करती हूँ—

वाल्मीकि—कहो ।

सीता--यदि रघुकुल भूषण (राम) द्वारा निर्वासित होने के कारण आप मुझ पर दया नहीं कर सकते तो (मेरे) गर्भ में प्रसिद्ध रघु, सगर, दिलीप, दशरथ आदि (वीरों) को संतान स्थित है, इसी कारण मेरी रक्षा कीजिए ।

वाल्मीकि—(लौटकर) अरे, (यह तो) इक्ष्वाकु (राजाओं की) वंशावलि बोल रही है, तो (इसे) पूछता हूँ । पुत्रि ! क्या तुम दशरथ की पुत्रवधू हो ?

सीता—हां, जैसा आप कहते हैं ।

वाल्मीकि—क्या विदेह-राज जनक की बेटी हो ?

सी०—अथ किम् ।
　　अह इं ।

वा०—किञ्च सीता ?

सी०—नहि सीता, भगवन् मन्दभागिनी ।
　　णहि सीदा, भअवं मंदभाइणी ।

वा०—हा हतोऽस्मि मन्दभाग्यः । किंकृतोऽयमत्रभवत्याः प्रासाद-तलादधोऽवतारः ?

(*सीता लज्जां नाटयति*)

वा०—कथं लज्जते ! भवतु, योगचक्षुषाहमवलोकयमि । (*ध्यानमभिनीय*) वत्से ! जनापवादभीरुणा रामेण केवलं परित्यक्ता, न तु हृदयेन । निरपराधा त्वमस्माभिरपरित्याज्यैव । एह्याश्रमपदं गच्छावः ।

सी०—को नु त्वम् ?
　　को णु तुमं ?

सीता—हां ।

वाल्मीकि—क्या सीता हो ?

सीता—सीता नहीं, श्रीमन् ! अभागिन हूं ।

वाल्मीकि—हा ! मैं अभागा मारा गया । देवी का प्रासाद तल से यहां अधःपतन किस कारण हुआ ?

(सीता लज्जा का अभिनय करती है)

वाल्मीकि—लज्जित क्यों हो रही है ? अच्छा, मैं योग दृष्टि से देखता हूँ—(ध्यान करने का अभिनय करके) पुत्रि ! राम ने केवल लोकापवाद के भय से तेरा त्याग किया है, हृदय से नहीं । निर्दोष होने के कारण हम तुम्हें नहीं छोड़ सकते । आओ, आश्रम को चलें ।

सीता—आप कौन हैं ?

वा०—श्रूयताम्—

सोऽहं चिरन्तनसखा जनकस्य राज्ञ—

स्तातस्य ते दशरथस्य च बालमित्रम् ।

वाल्मीकिरस्मि विसृजान्यजनाभिशङ्कां

नान्यस्तवायमबले श्वशुरः पिता च ॥ २६ ॥

सी०—भगवन् वन्दे ।

भअवं वंदामि

वा०—वीरप्रसवा भव, भर्तुश्च पुनर्दर्शनमाप्नुहि ।

अन्वय—अबले ! सः अहं ते तातस्य जनकस्य चिरन्तन-सखा, राज्ञः दशरथस्य च बालमित्रं वाल्मीकिः अस्मि । (अतः) अन्य जन-अभिशङ्कां विसृज । अयं तव श्वशुरः पिता च वर्तते ॥२६॥

व्याकरण—चिरन्तनसखा—चिरन्तनश्च असौ सखा च (कर्मधारय०) व्याकरण के अनुसार 'चिरन्तनसखः' चाहिये था । चिरं भवः=चिरन्तनः । अन्यजनाभिशङ्काम्—अन्यजनस्य अभिशङ्कः ताम् (ष० तत्पु०) विसृज—वि+√सृज, लोट, म० ए० । वाल्मीकिः—वल्मीक भवः वाल्मीकिः । अपत्यार्थ में इञ् प्रत्यय ॥२९॥

कठिन शब्दार्थ—चिरन्तन सखा-पुरातन (प्राचीन) मित्र । अन्य-जनाभिशङ्काम्-पराए (अपरिचित) पुरुष की आशङ्का को । विसृज-छोड़ दो । वाल्मीकि—सुनो ।

अबले ! मैं तुम्हारे पिता जनक का पुराना मित्र तथा राजा दशरथ का बालमित्र वाल्मीकि हूँ (अतः) पराए पुरुष की आशंका छोड़ दो । यह (व्यक्ति) कोई पराया नहीं, तुम्हारा श्वशुर तथा पिता है ॥२६॥

सीता— भगवन् ! नमस्कार ।

वाल्मीकि—वीर जननी बनो तथा पति के दर्शन (पुनः-शीघ्र) प्राप्त करो ।

सी०—त्वं लोकस्य वाल्मीकिः, मम पुनस्तात एव, तद्गच्छ स्वमाश्रम-
तुमं लोअस्स वम्मीई, मम उण तादो एव्व, ता गच्छ सयंअस्सम-
पदम्। (*गङ्गामवलोक्याञ्जलिं बध्वा*) भगवति भागीरथि !
पअ। भअवइ भाईरह !
यद्यहं सुखेन गर्भमभिनिर्वर्तयामि तदा तव दिने दिने
जइ अहं सोत्थिणा गब्भं अभिणिउत्तोमि तदा तब दिणे दिणे
सुष्ठु ग्रथितया कुन्दमालयोपहारं करिष्यामि।
सुष्ठु उच्छाए कुंदमालाए उवहारं करइस्साम्।

वा०—अत्यन्तदुःखसञ्चारोऽयं मार्गः, विशेषतस्त्वां प्रतिः तद्यथा यथा मार्गमादेशयामि तथा तथा समागन्तव्यम्।

एतस्मिन् कुशकण्टके लघुतरं पादौ निधत्स्वाग्रतः
शाखेयं विनता नमस्व शनकैर्गर्त्तो महान् वामतः।
हस्तेनामृश तेन दक्षिणगतं स्थाणुं समं साम्प्रतं

व्याकरण—वीरप्रसवा — वीरः प्रसवः यस्याः सा (बहुव्री०)। भर्तुः—भर्तृ, ष० ए०। आप्नुहि—√आप् (स्वा०) लोट्, म० ए०।

(समागन्तव्यम—सम+आ+√गम+तव्यत्।

सीता—लोगों के लिए आप वाल्मीकि [अन्य पुरुष] हो, मेरे तो पिता ही हो। अपने आश्रम की ओर चलो। (गंगा की ओर देख कर-तथा हाथ जोड़ कर) भगवती गङ्गे। यदि प्रसव कुशल पूर्वक हो जावेगा तो मैं प्रतिदिन सुन्दर रूप से गुथी हुई कुन्द पुष्पों की माला तुझे भेंट किया करुंगी।

वाल्मीकि—इस मार्ग पर चलना अति कठिन है, विशेष कर तुम्हारे लिए, तो जैसे जैसे मैं मार्ग बताता हूँ वैसे वैसे आओ।

पुण्येऽस्मिन् कमलाकरे चरणयोर्निर्वर्त्यतां क्षालनम् ॥ ३० ॥

(सीता यथोक्तं परिक्रामति)

वा०—(*निर्दिश्य*)

इक्ष्वाकूणाञ्च सर्वेषां क्रियाः पुंसवनादयः ।
अस्माभिरेव पच्यन्ते मा शुचो गर्भमात्मनः ॥ ३१ ॥

अन्वय—एतस्मिन् कुशकण्टके पादौ अग्रतः लघुतरं निधत्स्व। इयम् शाखा विनता (विद्यते, अतः) शनकैः नमस्व । वामतः महान् गर्तः (वर्तते) तेन हस्तेन दक्षिणगतं स्थाणुं आ-मृश। साम्प्रतं समम्, अस्मिन् पुण्ये कमलाकरे चरणयोः क्षालनम् निर्वर्त्यताम् ॥३०॥

व्याकरण—कुशकण्टके—कुशा; च कण्टकाः च कुशकण्टकम, तस्मिन (समाहार द्वन्द्व)। निधत्स्व—नि+√धा, (जुहो० उ०) लोट् म० ए०। नमस्व—√नम्, लोट् म० ए०, कर्मकर्तरि प्रयोगः। आमृश —आ+√मृश् (तुदा०) लोट, म० ए० । निर्वर्त्यताम्—निर्+ √वृत्+णिच् (कर्मवाच्य), लोट्, प्र० ए० ॥३०॥

कठिन शब्दार्थ—लघुतरम्—धीरे से। निधत्स्व—रखो। विनता—झुकी हुई । गर्तः—गढ़ा । आमृश—पकड़ो । समम्—समतल । क्षालनम्—धोना ॥३०॥

इस कुश कंटकमय (मार्ग) पर पांव पंजे के बल हल्के से रखो, यह शाखा झुकी हुई (है, अतः) धीरे से (ज़रा नीचे) झुक जाओ, बाईं ओर बड़ा गढ़ा (है) अतः हाथ से दाईं ओर स्थित ठूंठ को पकड़ लो, अब (आगे) समतल भूमि है । कमलों के इस पवित्र सरोवर में (दोनों) पैर धो लो ॥३०॥

(सीता निर्देशानुसार चलती है)

वाल्मीकि— (निर्देश करके)

कौसल्यापादशुश्रूषासौख्यं वृद्धासु लप्स्यसे ।
पश्य सख्यो भगिन्यश्च तवैता मुनिकन्यकाः ॥ ३२ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति प्रथमोऽङ्कः

अन्वय—सर्वेषां इक्ष्वाकूणां पुंसवनादयः क्रियाः अस्माभिः एव पच्यन्ते । आत्मनः गर्भं मा शुचः ॥३१॥

व्याकरण—पुंसवनम् आदिः यासां ताः पुंसवनादयः । पच्यन्ते—√पच् (कर्मवाच्य), लट्, प्र० ब० । आत्मनः—आत्मन्, ष० ए० । मा शुचः—शुच् (शोके) धातु का लङ् म० पु० ए० अशोचीः बनता है, माङ् पूर्वक मा शोचीः होना चाहिए, पर निरंकुशाः कवयः ॥३१॥

कठिन शब्दार्थ— पुंसवन — गर्भाधान उत्तरवर्ती संस्कार । पच्यंते - सम्पादित किए जाते हैं । मा शुचः—चिन्ता मत करो ।

अन्वय— कौसल्या-पाद-शुश्रूषा-सौख्यं वृद्धासु लप्स्यसे । एताः मुनिकन्यकाः तव सख्यः भगिन्यः च (इति) पश्य ॥३२॥

व्याकरण— कौसल्यापादशुश्रूषासौख्यम् कौसल्यायाः पादयोः शुश्रूषया सौख्यम् (तत्पु०), सुखम् एव सौख्यम्, स्वार्थे ष्यञ् । लप्स्यसे —√लभ्, (भ्वा० आ०,) लृट्, म० ए० । मुनिकन्यकाः—मुनीनां कन्यकाः (ष० तत्पु०), कन्या एव कन्यकाः (स्वार्थे कन्) । भगिन्यः—भगिनी, प्र० ब० ॥३२॥

वाल्मीकि—सभी इक्ष्वाकु वंशियों के पुंसवन आदि संस्कार हम ही करते हैं (अतः) अपने गर्भ (में स्थित संतान) की चिंता मत करो ॥३१॥

कौसल्या (माता) के चरणों की सेवा का सुख (तुझे यहां) वृद्धा स्त्रियों (की सेवा) में मिलेगा । (संकेत करके) देखो ये मुनियों की कन्यायें तुम्हारी सखियां तथा बहनें हैं ॥३२॥

(सब निकल जाते है)

प्रथमअङ्क समाप्त

अथ द्वितीयोऽङ्कः

प्रवेशकः

(ततः प्रविशतो द्वे मुनिकन्यके)

प्रथमा—हला वेदवती ! दिष्टया वर्द्धसे, सीतायास्तव प्रियसख्या
हला वेददि ! दिट्ठआ वड्ढसि, सीदाए तव पिअसहीए
रामश्यामौ द्वौ पुत्रकौ जातौ ।
रामच्चामा दुवे पुत्तआ जाआ ।

वेदवती—प्रियं मे प्रियं । किन्नामधेयौ ?
पिअं मे पिअं । किंणामहेआ ?

व्याकरण—वर्धसे—√वृध् (बढ़ना), लट्, म० ए० ।

रामश्यामौ—राम इव श्यामौ (कर्म—धारय) । जातौ—√जन् (पैदा-होना)+क्त, प्र० द्वि० ।

कठिन शब्दार्थ—दिष्टया वर्धसे—हर्ष पूर्वक बधाई हो । पुत्रकौ—दो बालक । किन्नामधेयौ—किस नाम वाले । शब्दापितः—बुलाया है, नाम रखा है । परिभ्रमितुम्—चलने के लिये । भण्यते—कहा जाता है ।

द्वितीय-अङ्क

प्रवेशक

(दो मुनिकन्याओं का प्रवेश)

प्रथमा—सखी वेदवती ! बधाई हो, तुम्हारी प्रिय सखी सीता के राम के समान श्याम वर्ण के दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं ।

वेदवती—(यह तो) मेरे लिये अति प्रिय (समाचार) है । क्या नाम है उनका ?

प्र०—ज्येष्ठ इदानीं भगवता कुश इति शब्दापितो द्वितीयो लव इति ।
जट्ठो दाणिं भअवदा कुसेत्ति सद्दाविदो दुदिओ लवेत्ति ।

वे०—किं समर्थौ पथि परिभ्रमितुम्
किं समत्ता पहि परिब्भमिदुम् ?

प्र०—किं समर्थाविति भण्यते—
किं समत्थत्ति भणिअदि—

धावता हरिणकैर्यथा प्रतिमल्लो किशोरसिंहानाम्
धावंति हरिणएंहि जह पडिमल्ला किसोरसीहाणं ।

व्याकरण—किन्नामधेयौ—किं नामधेयं ययौः तौ (बहुव्री०) । नाम एव नामधेयम्, स्वार्थ में धेय प्रत्यय । भगवता—भगवत्, तृ० एक० । भगोऽस्य अस्ति इति भगवान् । शब्दापितः—√शब्द्+आप्+णिच्+क्त, प्र० ए० ।

पथि—पथिन्, स० ए० । परिभ्रमितुम्—परि+√भ्रम् (घूमना) +तुमुन् ।

समर्थाविति—समर्थौ + इति । भण्यते—√भण् (कहना, भ्वा०) कर्मवाच्य, लट्, प्र० ए० ।

अन्वय—किशोर सिंहानां प्रतिमल्लौ प्रिय-दर्शनौ युगलौ हरिणकैः यथा धावतः तथा च तपस्विनीहृदयं हरतः ? ॥१॥

व्याकरण—किशोर सिंहानाम् किशोराः च ते सिंहाः च तेषाम् (कर्मधारय) । प्रियदर्शनं—प्रिय दर्शनं ययोः तौ (बहुव्री०) । अल्पा हरिणाः =हरिणकाः । हरिणकैः—हरिण+क, तृ० ब० । धावतः—√धाव्, (भ्वा०

प्रथमा—अभी (अभी) भगवान् (वाल्मीकि) ने बड़े का नाम कुश रखा है, छोटे का लव ।

वेदवती—क्या (वे) चलने फिरने में समर्थ हैं ?

प्रथमा—क्या कहा, समर्थ हैं ?——

तथा च तपस्विनीहृदयं हरतः प्रियदर्शनौ युगलौ ॥ १ ॥

तह अ तपस्सिणिहिअअं हरंति पिअंदसणा जुअला ॥

मुनिजनस्याङ्कादङ्कादतिसञ्चरतः । साम्प्रतं वाल्मीकिविरचितं

मुनिजणस्स अंकादो अंकादो अदि संचरंति । संपदं वंमीइविरइदं

रामायणं पठतः ।

रामाअणं पडति ।

(दौड़ना) लट्, प्र० ए० । तपस्विनी हृदयम्—तपस्विनीनां हृदयम् (ष० तत्पु०) तपस्विनी - तपस्+विन्+ङीप् (ई) । हरतः—√हृ (हरना-लेजाना), भ्वा० प्र० ए० ॥ १ ॥

नोट :—पहले श्लोक में मूल प्राकृत पाठ में धावंति, हरंति, बहुवचनान्त क्रिया पदों के होने से संस्कृत छाया में द्विवचनान्त ही उचित है। एकवचन कदापि नहीं। युगलौ का अर्थ यहां यमलौ (यमजौ) है।

व्याकरण—अतिसञ्चरतः— अति + सम√चर् (चलना), भ्वा० लट्, प्र० द्वि० । वाल्मीकिविरचितम्—वाल्मीकिना विरचितम् (तृ० तत्पु०) । विरचितम्—वि+√रच् (बनाना) चुरा०+क्त, प्र०ए० । पठतः—√पठ् (पढ़ना), भ्वा० लट्, प्र० द्वि० ।

सिंहशावकों [शेर के बच्चों] से होड करने वाले मनोरम जुड़वें बालक मृगशावकों के साथ जब दौड़ते हैं तो तपस्विनियों के हृदय को हरते हैं ॥१॥

एक से दूसरे मुनि की गोदी में ही घूमते फिरते हैं, अब वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण पढ़ रहे हैं।

वे०—इमं वृत्तान्तं श्रुत्वा एतदर्थं सीता कृतपुण्येति तर्कयामि।...
इमं इत्तंतं सुणिअ एदावत्थं सीदा किदपुण्णेत्ति तक्केमि। अहं
......................स्निग्धमन्योन्यम्।
इंहवहंति सीदासोवोअणिवत्थं आओ सिणिद्ध अणोण्णं (?)

प्र०—सम्भरणीयं खल्वेतत्। को नैमिशवृत्तान्तः?
संभरणीअं खु एदं। को णेमिसउत्ततो?

वे०—सम्भृत एव यज्ञसम्भारो महाराजस्य, निमन्त्रितः सान्त-
संभरिदो एव्व जण्णसंभारो महाराअस्स, णिमंतिदो सांतरवासि-

व्याकरण—इमम्—इदम् (पुं०, द्वि० ए०। श्रुत्वा—√श्रु (सुनना, स्वा०)+क्त्वा। कृतपुण्या—कृतं पुण्यं यया सा (बहुव्रीं०)। स्निग्धम्—√स्निह् (स्नेह करना) दिवा० + क्त, प्र० ए०। सम्भरणीयम्—सम्+√भृ (भरना, सम्पूर्ण करना, पोषण करना) भ्वा० जुहा०+अनीयर्, प्र० ए०। खल्वेतत्—खलु+एतत्। नैमिशवृत्तान्तः—नैमिशस्य वृतान्त (ष० तत्पु०)।

कठिन शब्दार्थ—अङ्क — गोदी। साम्प्रतम्—(अव्यय) अब। तर्कयामि—समझती हूँ, अनुमान करती हूँ। सम्भरणीयम्—भरने योग्य, पूर्ण होने योग्य। नैमिश—वन का नाम, जहां राम ने अश्वमेध करना है।

वेदवती—यह समाचार सुन कर मैं समझती हूँ कि सीता ने इतने भर (फल) के लिये ही पुण्य किये थे [उसे अपने किये सब पुण्यों का फल मिल गया है।]

प्रथमा—(नहीं) यह अभी अधूरा है। नैमिशारण्य का क्या समाचार है?

वेदवती—महाराज ने यज्ञ की सामग्री एकत्र करली है (तथा)

नीकस्तपोधनानां सम्पातः ।

णीओ तपोधणाणं संपादो ।

प्र०— किं निमन्त्रितो भगवान् वाल्मीकिः ?

किं णिमंतिदो भअवं वंमीई ?

वे०—श्रुतं वाल्मीकितपोवनमभ्यागतो रामदूत इति । कुत्रेदानीं

सुदं वंमीइतपोवण वि आअदो रामदूदोत्ति । कहिं दाणिं

सीता प्रेक्षितव्या ?

सीदा पेक्खिदव्वा ?

व्याकरण—सम्भृतः—सम्+भृ+क्त √ प्र० ए० । यज्ञसम्भारः—यज्ञस्य सम्भारः (ष० तत्पु०) । सम्भारः—सम्+√भृ+घञ् । निमन्त्रितः—नि+√मन्त्र् (मन्त्रणा करना), चुरा० आ०+णिच्+क्त, प्र० ए० । सान्तर्वासिनीक :— अन्तर्वासिनीभिः सह वर्तमान; (बहुव्री०) । श्रुतम् -√श्रु (सुनना)+क्त, प्र० ए० । आगतः—आ+ √गम् (जाना)+क्त, प्र० ए० । रामदूतः—रामस्य दूतः (ष० तत्पु०) प्रेक्षितव्या—प्र√ईक्ष् (देखना)+तव्यत् प्र० ए० ।

कठिन शब्दार्थ—**सम्भृतः**—एकत्र करली है। **सम्भारः**—सामग्री। **अन्तर्वासिनी**—अन्तः पुर में रहने वाली अर्थात् पत्नी । **सान्तर्वासिनीकः**—पत्नियों सहित । **सम्पातः**—समूह । **प्रेक्षितव्या**—देखूँ, ढूँढूँ । **अतिवाहयामि**—बिताऊँ ।

तपस्वियों को स्त्रियों सहित निमन्त्रित किया है ।

प्रथमा—क्या भगवान् वाल्मीकि को निमन्त्रित किया गया है ?

वेदवती—सुना है कि राम का दूत वाल्मीकि के तपोवन में भी आया है । सीता को इस समय कहां ढूँढा जाय ?

प्र०—अत्रैव सालपादपच्छायायामुपविशति, कथमतिवाहयामीति ?
एत्थ एव्व सालपाअवच्छाआए उपविसदि, कहं अदिवाहेमित्ति ?

(इति निष्क्रान्ते)

इति प्रवेशकः

(ततः प्रविशति चिन्तां नाटयन्ती भूम्यासनोपविष्टा सीता)

सी०—(*निःश्वस्य*) अहो अविश्वसनीयता प्रकृतिनिष्ठुरभावानां पुरुष
अहो अविस्ससणीअदा पइदिणिट्ठुरभावाणं पुरुस-
हृदयाणाम् । यत्स्तम्भप्रलिखितव्यस्नेहानां दम्पतीनां प्रसंगे उमा-
हिअआणं । जं तंभप्पलिहिदव्वणेआणं दंपदीणं पसंगे उमा-

व्याकरण— सालपादपच्छायायाम् - साल-पादपस्य छायायाम् (ष० तत्पु०) उपविशति—उप+√विश् , (प्रवेश करना), तुदा० लट् उ०ए० । अतिवाहयामि—अति+√वह् (ले जाना) भ्वा०+णिच्, लट्, उ० ए० । नाटयन्ती – √नट् (चुरादि०)+ शतृ , स्त्री०, प्र० ए० । प्रकृतिनिष्ठुरभावानाम् —प्रकृत्या निष्ठुरः भावः

प्रथमा—(समय) कैसे बिताऊँ यही सोचती हुई (वह) यहीं (आश्रम में) साल वृक्ष की छाया में बैठी है ।

(दोनों बाहर चली जाती हैं)

प्रवेशक समाप्त

(चिंता का प्रदर्शन करती हुई, भूमि पर बैठी हुई सीता का प्रवेश)

सीता—(दीर्घ श्वास लेकर) अहो ! स्वभाव से ही कठोर पुरुषों के हृदय (कितने) अविश्वसनीय होते हैं । क्योंकि, स्तम्भों पर लिखे जाने योग्य पति-पत्नियों के प्रेम के वर्णन के समय, स्वर्ग में

महेश्वराविति स्वर्गे पृथिव्यां सीतारामाविति अतिप्रसिद्धमा-
महेस्सारोत्ति सग्गे पुडवीए सीदारामोत्ति अदिप्पसिद्धिं आरो
रोप्य निरपराधा एतां गतिमत्यन्तमनुभावितास्मि । अथ कीदृ-
विअ णिरवराधा एदं गईं अत्तंतमणुभाविदोम्हि । अथ कीस
गहमार्यपुत्रं निन्दामि । एवं पुरार्यपुत्रेण......................
अहं अअउत्तं णिंदामि । एव्वं पुरा अंअउत्तेण एस्स वअणीअगा-

यषां तेषां (बहुव्री०) । पुरुषहृदयानाम्—पुरुषाणां हृदया-नाम् (ष० तत्पु०) स्तम्भप्रलिखितव्यस्नेहानाम्—स्तम्भेषु प्रलिखितव्यः स्नेहः येषां तेषाम् (वहुव्रीं०) ।

नोट :—√लिख्को गुण प्राप्त है, सो 'प्रलेखितव्य' ऐसा शुद्ध पाठ होगा ।

दम्पतीनाम्—जाया च पतिः च दम्पती (द्वन्द्व); 'पति' के साथ समास में 'जाया' को 'जम्' तथा 'दम्' आदेश होते हैं । उमामहेश्वरौ—उमा च महेश्वरः च तौ (द्वन्द्व०) । आरोप्य—आ+√रुह् (चढ़ना) णिच्+ल्यप् । निरपराधां—निर्गतः अपराधः यस्याः सा (बहुव्री०) ।

कठिन शब्दार्थ— दम्पतीनाम्—पति-पत्नियों के । अलीकम्—असत्य । अनुपयुक्त—अनुचित । स्वामिवल्लभतया—पति के प्रेम के कारण । साम्प्रतम्—अब । दारकौ—दो पुत्र । संवर्धितौ - पाले (बड़े किए) हैं । अतिवाहयितुम्—बिताना । मरणव्यवसायस्य— मरने के निश्चय का । प्रतिबंध—प्रतिरोध ।

शिव तथा पार्वती का कीर्तन है और पृथ्वी पर सीता तथा राम का इस प्रकार खूब प्रसिद्धि प्राप्त करवा करके (मुझ) निरपराध को इस दुर्दशा तक पूरी तरह पहुंचा दिया गया है। मैं आर्य पुत्र की निंदा करूं तो कैसे ? आर्य पुत्र ने पहले......................अब

..................................साम्प्रतमनेकयोजनान्तरिते
धाधणं सुअमेत्तएण अदरीमण्णुत्ति संपदं अणेअजोअणांतरिदे
निर्वासनं (?) अकारणं......पूर्णदुःखकारिणी जाता। तेन सह
......सणं आकरणं भरिसि पुण्णदुक्ककारिणी जाता । तेण सह
दृष्टश्चन्द्रोदयः, तेन सह श्रुतः कोकिलकलप्रलापः, तेन सहानु-
दिठ्ठो चंदोदओ, तेण सह सुदो कोकिलकलप्पलाओ, तेण सह अणु-
भूतो मलयमारुतस्पर्शः, साम्प्रतं मयैकाकिन्या दृष्टश्च श्रुतश्चा-
भूदो मलयमारुदप्परिसो, संपदं मए एआइणीए दिठ्ठो अ सुदोअ
नुभूतश्च। प्राणान् परित्यजामीति सर्वथा अलीकं मादृशीभिः
अणुभूदोअ । पाणं परिच्चआमित्ति सव्वहा अलिअं मारिसीहिं

व्याकरण—अनुभाविता—अनु + √भू (होना) + णिच् + क्त, प्र० ए० । अनेकयोजनान्तरिते—अनेकैः योजनैः अन्तरिते (तृ० तत्पु०) । जाता—√जन् (पैदा होना) + क्त, प्र० ए० ।दृष्टः—√दृश् (देखना) + क्त, प्र० ए० । चन्द्रोदय चन्द्रस्य उदयः (ष०तत्पु०) कोकिलाकलप्रलापः—कोकिलानां कलप्रलापः (ष० तत्पु०) ; कलः च असौ प्रलापः च (कर्मधारय) । अनुभूतः—अनु + √भू (होता) + क्त, प्र०ए० । मलयमारुतस्पर्शः—मलयमारुतस्य स्पर्शः (ष० तत्पु०) । स्वाभिवल्लभतया—स्वामिनः वल्लभतया (ष० तत्पु०) वल्लभस्य भाव—वल्लभता। सकल मिथि-

---

अनेक योजन दूर (स्थान में) बिना कारण (निर्वासन)......मैं पूर्ण दुःख दायिनी बन गई हूँ। उस के साथ चंद्रोदय देखा करती थी, उसके साथ कोयल की मधुर तान सुना करती थी, उस के साथ मलय समीर के स्पर्श (का आनन्द) लिया करती थी; अब मैं अकेली (ही यह सब) देखती, सुनती तथा अनुभव करती हूं, 'प्राण त्याग दूं' यह (विचार) मुझ जैसी स्त्रियां के लिये (सर्वथा) मिथ्या [असंभव] है। (इससे) पूर्व सभी मिथिलावासी पति की अति प्रिया होने के

स्त्रीभिः । पुराहं स्वामिवल्लभतया सकलमिथिलाजनप्रार्थनीया
इत्थिआहिं । पुरा अहं सामिवल्लहदाए सअलमिहिलाजणपत्थणिअं
भूत्वा (?) अद्य पुनरेतदवस्थं शोचनीया संवृत्तेति परित्याग-
भमिअ अज्ज उण एदावत्थं शोअणीआ संवुत्तेति परिच्चाय-
दुःखतो लज्जैव मामधिकतरं बाधते । साम्प्रतं पुनर्जातौ दारकौ
दुक्कादो लज्जा एव मं अहिअदरं बाहेदि । संपदं उण जादा दारा
संवर्धितौ च । सादर इदानीं भगवान् वाल्मीकिः । न युक्तं
संवड्ढिआ अ । सादरो दाणिं भअवं बंमीई । ण जुत्तं
ममैतेन तपोवनवासविरुद्धेन दीर्घनिश्वासेन कालमतिवाह-
मम एदिणा तपोवनवासविरुद्धेण दीहणिस्सासेण कालं अदिवा-

लाजनप्रार्थनीया—सकलस्य मिथिला जनस्य प्रार्थनीया। शोचनीया—√शुच् (सोचना)+अनीयर, प्र० ए०। संवृत्ता—सम्+√वृत् भ्वा० आ० (होना) +क्त, प्र० ए०। परित्यागदुःखतः—परित्यागस्य दुःखं (ष० तत्पु०) ततः। लज्जैव—लज्जा+एव। बाधते—√बाध् (कष्ट देना), भ्वा० आ० लट्, प्र० ए०। संवर्धितौ—सम्+√वृध् (बढ़ना)+णिच्+क्त, प्र० द्वि०। युक्तम् —√युज्+क्त, प्र० ए०। अतिवाहयितुम्—अति+√वह् (उठाना-ले जाना) +णिच्+तुमुन्। सन्दिष्टा—सम्+दिश् (कहना) तुदा०+क्त, प्र० ए०। उपनिमन्त्रिता—उप+नि+√मन्त्र+णिच्+क्त, प्र० ए०।

कारण (मेरे पास आकर) प्रार्थना किया करते थे और अब तो यहां तक शोचनीय बन गई हूं कि परित्याग के दुःख की अपेक्षा लज्जा ही मुझे अत्यधिक कष्ट दे रही है। अब तो दो पुत्र उत्पन्न हो गये हैं तथा बड़े हो गये हैं। भगवान् वाल्मीकि (भी मेरे प्रति) आदर रखते हैं, आहें भर कर समय गंवाना मेरे लिए उचित नहीं (क्योंकि) यह तपोवन निवास के (आचार के) विरुद्ध है। यही मेरे मरण के

यितुम् । एतदेव मरणव्यवसायस्य प्रतिबंधो यन्मया प्रिय-
हिदुं । एत्त एव्व मरणव्ववसाअस्स पडिबँधो जं मए पिअ-
सखी वेदवती न सन्दिष्टा नाप्युपनिमन्त्रिता च ।
सही वेदवदी ण संदिठ्ठा णवि उपणिमंतिदाअ ।

(*ततः प्रविशति वेदवती*)

वे०—कृत एव तपोधनानां वन्दनोपचारः अतिथिजनसमुचितः
किदो एव्व तपोधणाणं वंदणुव्वआरो अदिहिजणसमुइदो
समुदाचारश्च । तदित एव सालपादपं गत्वा प्रियसखीं सम्भा-
समुदाआरो अ । ता इदो एव्व सालपादपं गदुअ पिअसहिं संभाव
वयिष्यामि । (*परिक्रम्य विलोक्य* च) एषा विदेहराजतनया निदाघ-
इस्सं । (एसा विदेहराअतणआ णिदाह-

व्याकरण—वन्दनोपचारः—वन्दना एव उपचारः (मयूर व्यं-सकादि) । अतिथिजनसमुचितः—अतिथि जनस्य समुचितः (ष० तत्पु०)। सालपादपम्—सालः च असौ पादपः च, तम् (कर्मधारय) परिक्षामपाण्डुरया—परिक्षामा च असौ पाण्डुरा च तया (अवस्थया) (कर्मधा०) । आक्षिपन्ती—आ√क्षिप् (फेंकना) तुदा० +शतृ, स्त्री० प्र० ए० । चिन्ता परवशा—चिन्तया परवशा (सुप्सुपा) । अधोमुखी—अधः मुखं

निश्चय में बाधक है कि मैंने न तो प्रियसखी वेदवती को संदेश भेजा है ना ही (उसे) बुला भेजा है ।

(वेदवती वेश करती है)

वेदवती—तपस्वियों की वंदना तथा (उनका) अतिथि—योग्य शिष्टाचार का पालन कर ही दिया है। तो यहीं से (सीधे) साल वृक्ष की ओर जा कर प्रिय-सखी से मिलती हूँ। (घूम कर तथा देख कर) यह जनक-पुत्री ग्रीष्मकाल की लता के समान अपनी दुर्बलता

मासलतेव परिक्षामपाण्डुरयावस्थया हृदयमाक्षिपन्ती साल-
मासलआ विअ परिक्खामपांडराए अवत्थाए हिअअ अक्खिपंती साल-
मूलमलङ्करोति। तदुपसर्पामि । (*उपसृत्य*) एषा चिन्तापरवशे-
मूलमलंकरेदि । ता उवसप्पिस्सं । एसा चिंतापरवसा
वाधोमुखी लम्बालकाच्छादितनयना दीनप्रेक्षिता । शब्दाप-
विअ अहोमुही लंबालआच्छाइअणअणा दीणपेक्खिदा । सद्दाव-
यिष्यामि । सखि वैदेहि ! (*इति शब्दापयति*)
इस्सं । सहि वैदेहि !

सी०—(*ससम्भ्रमं विलोक्य*) प्रियं मे प्रियं मे । सम्प्राप्ताप्रिय सखि वेद-
पिअं मे पिअं मे । संपत्ता पिअसही वेद

यस्याः सा (बहुव्री०) । लम्बालकाच्छादितनयना—लम्बालकैः आच्छादिते नयने यस्याः सा (बहुव्री०) । आच्छादित—आ+√छद्, चुरा०, (छिपाना) +णिच्+क्त । दीनप्रेक्षिता—दीनं प्रेक्षितं यस्याः सा (बहुव्री०) । दीन—√दी (दिवादिगण) आत्मनेपदी, क्षय होना,+क्त । प्रेक्षित—प्र+√ईक्ष् (देखना)+क्त । शब्दापयिष्यामि—√शब्द् आप्+णिच् लृट्, उ० ए० ।

कठिन शब्दार्थ—उपचारः—शिष्टाचार । सम्भावयिष्यामि—मिलती हूँ, सत्कार करती हूँ । निदाघ—ग्रीष्म ऋतु । परिक्षामा—क्षीण, दुर्बल । पाण्डुरा—पीली । शब्दापयिष्यामि—बुलाती हूँ ।

तथा पीलेपन से हृदय को पीड़ित करती हुई साल वृक्ष के नीचे बैठी है । तो (इसके) पास जाती हूँ । (समीप जाकर) दीनता भरी आंखों वाली तथा लम्बी लटों से दबे हुए नेत्रों वाली यह (सीता) चिंता में डूबी होने के कारण मुख नीचे किए (बैठी है) । आवाज़ देती हूँ । (बुलाती है) सखि सीते !

सीता—(चौंक कर देखती हुई) मैं अति प्रसन्न हूँ, मेरी प्रिय

वती। स्वागतं प्रियसख्याः। (*परिष्वज्योपवेशयति*)
वदी। साअदं पिअसहीए।

वे०—अपि कुशलं कुशलवयोः ?
अवि कुसलं कुसलवाणं ?

सी०—यथा वनवासिनाम्।
जह वणवासिणं।

वे०—कीदृशो युष्माकं वृत्तान्तः ?
कीदिसो तुम्हाणं वुत्तंतो ?

सी—(*वेणीं निर्दिश्य*) कीदृशोऽसौ ?
कीदिसो सो ?

वे०—(*आत्मगतम्*) अतिमात्रं सन्तपति एषा वराकी। रामसदेशस्य (?)
अदिमत्तं संतवइ एसा वराई। रामसदेशस्स
सङ्कीर्तनेन विनिधारायिष्यामि। (*प्रकाशम्*) अयि अपण्डिते ! तथा
सकित्तणेण विणिधारइस्सं। अयि अपंडिदे तह

व्याकरण—सन्तपति—सम्+√तप् (तपना), भ्वा० लट्, प्र० ए०। विनिधारयिष्यामि—वि+नि+√धृ (धारण करना)+णिच्+लृट्, उ० ए०।

सखी वेदवती आ गई। प्रिय सखी का स्वागत हो।
(गले मिल कर बिठलाती है)

वेदवती—कुश तथा लव सकुशल हैं ना ?
सीता—वनवासियों की भांति।
वेदवती—तुम्हारा क्या हाल है ?
सीता—(वेणी की ओर संकेत करती हुई) यह कैसी हैं ? [यह शुष्क-वेणी ही मेरी दशा की परिचायिका है]।
वेदवती—(अपने आप में) यह बेचारी अत्यधिक सन्तप्त है।

निरपेक्षस्य निरनुक्रोशस्य कृते कीदृक् त्वमसितपक्षचन्द्रलेखेव
निरपेक्खस्स निरणुक्कोसस्स किदे कीस तुमं असिदपक्खचंदलेहा विअ
दिने दिने परिहीयसे ।
दिणे दिणे परिहीअसि ।

सी०—कथं सो निरनुक्रोशः ?
कहं सो णिरणुक्कोसो ?

वे०—येन परित्यक्तासि ?
जेण वरिच्चत्तासि ।

सी०—किमहं परित्यक्ता ?
किमहं परिच्चत्ता ?

वे०—(*विहस्य वेणीं परिमार्जयति*) एवं लोको भणति सत्यं परित्यक्ता ।
एव्वं लोओ भणादि सच्चं परिच्चत्ता ।

व्याकरण— निरपेक्षस्य—निर्गता अपेक्षा यस्मात् तस्य (बहुव्री०) । निरनुकोशस्य—निर्गतः अनुकोशः यस्मात् तस्य (बहुव्री०) । परिहीयसे—परि+√हा छोड़ना) जुहो०, कर्म वाच्य, लट्, म० ए० । परित्यक्ता—परि+√त्यज् (छोड़ना) क्त, प्र० ए० । असि—√अस् (होना), लट्, म० ए० ।

रामवृत्तान्त (?) कह कर इसे सान्त्वना देती हूं । (प्रकट) अरी बेसमझ ! उस निरपेक्ष (तथा निर्दय के लिए तू कृष्ण पक्ष की चन्द्र कला के समान दिन प्रति दिन क्षीण क्यों हुई जा रही है ?

सीता—वह निर्दय कैसे ?

वेदवती—क्योंकि उसने तुझे छोड़ दिया है ।

सीता—क्या मैं छोड़ दी गई ?

वेदवती—(मुसकरा कर वेणी का स्पर्श करती है) लोग ऐसा ही कहते हैं । सचमुच तुम परित्यक्ता हो ।

सी॥०—अथ सरीरेण न पुनर्हृदयेन ।

अह सरीरेण ण उण हिअएण ।

वे—कथं परकीयं हृदयं जानासि ?

कहं परकेरअं हिअअं जाणासि ?

सी—कथं तस्य हृदयं सीतायाः परकीयं भविष्यति ?

कहं तस्स हिअअं सीदाए परएरअं भविस्सदि ?

वे०—अहो अपरित्यक्तानुरागता !

अहो अपरिच्चताणुराअना !

सी०—कथं स ममोपरि त्यक्तानुरागः येनातिप्रसिद्ध एव मामन्धया-

कहं सो मम उवरि परिच्चत्ताणराओ जेण अदिप्पसित्तो एव्व मं अधण्णं

मुद्दिश्यार्यपुत्रेणानुभूतः सेतुबन्धादिपरिश्रमः ?

उंदिसिअ अंअउत्तण अणुभूदो सेदुबंधादिपरिस्समो ?

व्याकरण—ममोपरि—मम+उपरि । त्यक्तानुरागः—त्यक्तःअनुरागः यैन सः (बहुव्री०) अनुभूतः—अनु+√भू+क्त प्र० ए० । आत्मश्लाधिनि—आत्मानं श्लाघते या तत्संबुद्धौ (उपपदतत्पुरुष)। उपर्यनुरागः—उपरि+अनुरागः ।

सीता—पर शरीर से ही हृदय से नहीं ।

वेदवती—दूसरे का हृदय कैसे जानती हो ?

सीता—उसका हृदय सीता के लिए पराया कैसे ?

वेदवती—अहो ! कैसा अचल प्रेम है ।

सीता—जिस आर्य पुत्र ने मुझ अभागिन के लिए (समुद्र पर) पुल बांधने आदि का सर्वजनविदित परिश्रम किया वह मुझ से प्रेम कैसे छोड़ सकता है ?

वे०—आत्मश्लाघिनि ! क्षत्रियाणां समुचित एष रावणस्योपरि रोषो
अत्तसिलाहिणि ! खत्तिआणं समुइदो एसो रावणस्स उवरि रोसो
न सीताया उपर्यनुरागः ।
ण सीदाए उवरि अणुराओ ।

सी०—एतदपरं न प्रेक्षसे ?
एदं अवरं ण पेक्खसि ?

वे०—किमेतदपरम् ?
किं एदंदअवरं ?

सी०—एतत् ।
एदं ।

व्याकरण—सपत्नीजन विश्वासानुपविद्धे—सपत्नीजनस्य निश्वासैः अनुपविद्धे (तृ० तत्पु०) । अनुपविद्धे—न उपविद्धे, (नञ् तत्पु०) । उप+√व्यध् (बींधना) दिवा०+क्त, स० ए० । सम्भाविता—सम्+√भ+णिच्+क्त, प्र० ए० ।

वेदवती—अरी अपनी प्रशंसा आप करने वाली ! क्षत्रियों के अनुरूप (राम का) रावण पर यह क्रोध था न कि सीता में प्रेम ।

सीता—यह दूसरी बात नहीं देखती हो ।

वेदवती—यह दूसरी कौनसी ?

सीता—यह ।

वेदवती—यह क्या ।

सीता—(लज्जा पूर्वक) कि सपत्नियों के (निश्वासों) से अस्पृष्ट राम के वक्षस्थल पर चिरकाल से सम्मान पाती आ रही हूँ । [अर्थात् राम के हृदय पर सीता का ही एकाधिकार रहा है ।]

वेदवती—सखि ! उतावली मत हो (भाव—तेरी धारणा अभी

वे०—किमेतत् ?

किं एदं ?

सी०—(*सलज्जम्*) यत् सपत्नीजननिःश्वासानुपविद्धे रामवक्षःस्थले

जं सवत्तजणणीसासाणुवविद्धे रामबच्छत्थले

अतिचिरं सम्भाविताऽस्मि ।

अदिचिरं संभाविदम्हि ।

वे०—सखि ! मा उत्ताम्य, समासन्नो रामस्य यज्ञदीक्षासमयः ।

सहि ! मा उत्तम्म, समासण्णो रामस्स जण्णदिक्खासमओ ।

सी०—ततः किम् ?

तदो किं ?

वे०—ननु तत्राश्वस्य सहधर्मचारिण्या पाणिग्रहो निर्वर्त्तयितव्यः ।

णं तहिं अस्ससस्स सहधंमआरिणीए पाणिग्गहो णिव्वत्तिदव्वो ।

व्याकरण— उत्ताम्य—उद्+ताम्य, √तम् (दिवादि०), लोट्, म० ए० । समासन्नः—सम्+आ+√सद्+क्त, प्र० ए० । यज्ञदीक्षायाः समयः (ष० तत्पु०) । तत्राश्वस्य—तत्र+आशु+अस्य । निर्वर्त्तयितव्यः—निर्+√वृत्+णिच्+तव्यत्, प्र० ए० । प्रभवामि—प्र+√भू, लट्, उ० ए० ।

मिथ्या सिद्ध हुई जाती है ।) राम का यज्ञ में दीक्षित होने का समय निकट ही है ।

सीता—फिर क्या ?

वेदवती—वहाँ (यज्ञ से) शीघ्र ही उसे धर्म-कार्यों में साथ देने वाली (किसी स्त्री) का हाथ पकड़ना होगा [विवाह करना होगा] ।

सीता—मेरा आर्य पुत्र के हृदय पर अधिकार है, न कि हाथ पर ।

सी०—आर्यपुत्रस्य हृदये प्रभवामि न पुनर्हस्ते ।
अंअउत्तस्स हिअए पहवामि ण उण हत्ते ।

वे०—(*आत्मगतम्*) अहो अस्या दृढानुरागता ! (*प्रकाशम्*) सखि !
अहो से दिढाणुराअदा । सहि !

पुत्रमुखदर्शनेनापि ते प्रवासशोको नापनीतः ?
पुत्तमुहदंसणेण वि दे पवाससोओ णावणीदो ?

सी०—शोकपरिहारेणापि शोको वर्धते ।
सोअपडिआरेण पि सोओ वड्ढिअदि ।

वे०—कथमिव ।
कहं विअ ।

व्याकरण—पुत्रमुखदर्शनेन—पुत्रयोः मुखे इति पुत्रमुखे, तयोः दर्शनेन (ष० तत्पु०) । प्रवासशोकः—प्रवासस्य शोकः (ष० तत्पु०) । अपनीतः—अप+√नी (ले जाना) भ्वा०+क्त, प्र० ए० । शोकपरिहारेण—शोकस्य परिहारेण (ष० तत्पु०) । ईषत्समुद्भिन्नदशनाङ्कुर कोमलेन—ईषत् समुद्भिन्नैः दशनाङ्कुरैः कोमलेन (तृ० तत्पु०) । शब्दापयतः—√शब्द्+आप् णिच्, लट्, प्र० द्वि० । निमज्जामि—नि+√मस्ज् (मग्न होना), तुदा० लट्, उ० ए० । परिणतौ—परि+√नम् (झुकना)+क्त, प्र० द्वि० । परित्यक्तबालभावौ—परित्यक्तः बालभावः याभ्यां तौ । बालतनया—बालौ, तनयौ यस्याः सा (बहुव्री०) ।

वेदवती—अपने आप) अहो, कितना दृढ़ प्रेम है ! प्रकट) सखी ! क्या पुत्रों के मुख को देख कर भी तुम्हारा निर्वासन दुःख शान्त नहीं हुआ ?

सीता—शोक शांत करने वाले साधन के द्वारा भी शोक बढ़ ही रहा है ।

वेदवती—सो कैसे ?

सी०—यथा यथा द्वौ दारकावीषत्समुद्भिन्नदशनाङ्कुरकोमलेन वदनेन
जह जहा दे दारआ ईससमुभिण्णदसणंकुरकोमलेण वदणेण
मम मुखमालोकयन्तौ प्रहसतः, अत्यन्तकोमलेनालापेन तादृशं
मम मुहं आलोअंता पहसंति, अच्चंतकोमलेण वदणेण
शब्दापयतः, तथा जानामि तस्य मौग्ध्ये निमज्जामीति । साम्प्रतं
सद्दावेअंति, तह जाणामि तस्स मुद्दे णिमज्जामित्ति । संपदं
पुनः कालवशेन परिणतौ परित्यक्तबालभावावबालौ संवृत्ता-
उण कालवसेण परिणदा परिच्चत्तबालभावा अबाला संवुत्ते-
विति मामधिकतरं बाधते ।
ति मं अहिअतरं बाधेयदि ।

वे०—अहो किमति तस्य महार्घं नृशंसत्वं यत्सीता नाम बालतनये
अहो किंति तस्स महग्घं णिसंसत्तणं जं सीदा णाम बालतणअ
ईदृशीमवस्थामनुभवतीति ।
ईरिसं अवत्थं अणुभवदित्ति ।

सीता—जिस समय दोनों बालक दांतो के अंकुरों के कुछ कुछ फूट आने से मृदु [सुन्दर] मुख से मेरी ओर देखते हुये मुस्कराते हैं (तथा) अत्यन्त कोमल वाणी से उस प्रकार बुलाते हैं तब अपने आप को उस [राम] के (बाल सुलभ) भोलेपन में खोया हुआ अनुभव करती हूँ। अब समय बीतने के साथ बचपन छोड़ कर वह बड़े हो गये हैं, इस कारण अत्यधिक चिन्तित हूँ ।

वेदवती—कैसी महान् क्रूरता [अत्याचार] है उस [राम] की कि सीता छोटे २ बच्चों के साथ इस दशा को भोग रही है ।

सी०—सखि वेदवति ! अपि नाम—

सहि वेदवदि ! अवि णाम—

वे०—किं लज्जितेन, भण आर्यपुत्रं प्रेक्ष इति ।

कीस लज्जिदेण, भणाहि अंअउत्तं पेक्खामत्ति ।

सी०—किं लज्जावेशेन, एवं भणामि (*प्रकाशम्*) अपि कुशलवयो-

किं लज्जावेसेण, एव्वं भणामि । अवि कुसलवाणं

स्तातस्य दर्शनेन जन्मामोघं भवेदिति ।

तादस्स दंसणेण जम्मं अमोहं भवेदित्ति ।

वे०—ननु समासन्नमेव युष्माकं राजदर्शनम् ।

णं समासण्णं एव्व तुम्हाणं राअदंसणं ।

सी०—कथमिव ?

कहं विअ ?

(*नेपथ्ये ऋषिः*)

भो भो आश्रमवासिनो जनाः ! शृण्वन्तु भवन्तः—

व्याकरण—यज्ञोपकरणानि—यज्ञस्य उपकरणानि (ष० तु०) । सन्नि-पतिताः—सम्+नि+√पत् (गिरना)+क्त, प्र० ब० । उदीक्षमाणः—उद्+

सीता—सखि वेदवती ! क्या—

वेदवती—लज्जित क्यों होती हो, कहो "क्या आर्य पुत्र के दर्शन कर सकूँगी ?"

सीता—(अपने आप) लज्जा से क्या काम, यूँ कहे देती हूं । (प्रकट) क्या कुश-लव के लिए पिता के दर्शनों से मेरा जन्म सफल हो सकेगा ?

वेदवती—निकट में ही तुम्हें महाराज के दर्शन होंगे ।

सीता—कैसे ?

इतो नातिदूरे, महाक्रतुरश्वमेधः प्रवर्तते, सम्भृतानि यज्ञोपकरणानि, सन्निपतिताश्च नानादेशाश्रमवासिनो वसिष्ठात्रेयप्रभृतयो महामुनयः केवलं भगवतो वाल्मीकेरागमनमुदीक्षमाणो नाद्यापि यज्ञदीक्षां प्रविशति महाराजः। आगतश्च वाल्मीकितपोवनवासिनामुपनिमन्त्रणार्थं रामदूतः। तस्मान्नैव परिलम्बितव्यम्।

तीर्थोदकानि समिधः परिपूर्णरूपा
दर्भाङ्कुरानविहतान् परिगृह्य सद्यः।

√ईक्ष् (देखना+शानच् प्र० ए०। तस्मान्नैव—तस्मात्+न+एव। परिलम्बितव्य परि+√लम्ब् (लटकना) भ्वा० आ०+तव्यत् प्र० ए०।

अन्वय—मुनयः तीर्थोदकानि, परिपूर्ण रूपाः समिधः, अविहतान् दर्भाकुरान् परिगृह्य सद्यः अग्रे भवन्तु। मुनिकन्यकाः च उटजाङ्गणेषु मङ्गलबलीन् कुर्वन्तु॥ २॥

व्याकरण—तीर्थोदकानि,— तीर्थानाम् उदकानि (ष० तत्पु०)। समिधः—समिध्, द्वि० ब०। अविहतानि—न+वि+√हन् (मारना+क्त, द्वि० ब०। परिपूर्णरूपाः—परिपूर्णं रूपम् यासां ताः। परिगृह्य—परि

(नेपथ्य में ऋषि)

हे आश्रमवासी लोगो! सुनिये—

यहां से निकट ही महायज्ञ अश्वमेध हो रहा है, यज्ञ की सामग्री इकट्ठी हो चुकी है, विभिन्न देशों के आश्रमों में रहने वाले वसिष्ठ, आत्रेय आदि महामुनि इकट्ठे हो गए हैं। केवल भगवान् वाल्मीकि के आगमन की प्रतीक्षा में महाराज (राम) ने अभी तक यज्ञ की दीक्षा नहीं ली। वाल्मीकि-आश्रमवासियों को भी निमन्त्रित करने श्री राम का दूत आया है। अतः विलम्ब न कीजिए।

अग्रे भवन्तु मुनयो मुनिकन्यकाश्च
कुर्वन्तु मंगलबलीनुटजाङ्गणेषु ॥२॥

सी०—त्वरामि त्वरामि, एष आर्यकाश्यपः प्रस्थानघोषणासम-
तुवरेमि तुवरेमि, एस अंअकस्सवो पत्ताणघोसणासम-
नन्तरं गृहीतयज्ञोपकरणोऽग्रतः प्रस्थितः। अहमपि कुशलवयोः
णन्तरं गहिदण्णोवकरणो अग्गदो पत्थिदो। अहं वि कुसलवाणं
प्रस्थानमङ्गलमनुष्ठास्यामि।
पत्थाणमंगलं अणुणट्ठिसं।

(इति निष्कान्ताः सर्वे)

इति द्वितीयोऽङ्कः

+√ग्रह् +ल्यप्। उटज—पुं०, नपुं० उटेभ्हः जायते, उट=पत्यां ॥२॥

त्वरे—√त्वर (शीघ्रता करना), भ्वा० आ० लट्, उ० ए०। प्रस्थितः—प्र+√स्था (ठहरना)+क्त प्र० ए०। प्रस्थानमङ्गलम् प्रस्थानस्य मङ्गलम् (ष० तत्पु)। प्रस्थाने—प्रस्थान समये मङ्गलम् इति वा अनुष्ठास्यामि—अनु+√स्था, भ्वा० लृट्, उ० ए०।

मुनिलोग शीघ्र ही, तीर्थों के जल यथोचित पूर्णाकार समिधाएं, (तथा) अखण्डित कुशाओं के अङ्कुरों को ले कर आगे चलें। तथा मुनियों की कन्याएं पर्णकुटियों के आङ्गन में मङ्गल बलियां देवें ॥ २ ॥

सीता—मैं जल्दी करूं। आर्यकाश्यप प्रस्थान की घोषणा के पश्चात् यज्ञ की सामग्री लिए हुए आगे आगे चल पड़े हैं मैं भी (जाकर) कुश–लव के प्रस्थान का मङ्गलाचरण करती हूं।

(सब निकल जाते हैं)

द्वितीय अंक समाप्त

अथ तृतीयोऽङ्कः

प्रवेशकः

(*ततः प्रविशति मार्गपरिश्रान्तो गृहीतभारस्तापसः*)

तापसः—(*श्रममभिनीय*) भोः सुष्ठु परिश्रान्तोऽस्मि एतेन सन्ताप-
भो सुट्ठु परिस्संतोम्हि एदिणा संदाप-
दीर्घेण ग्रीष्मसमयेन। न प्रभवामि परिश्रमगतयोर्जङ्घयोर्विक्षेपनिक्षेपौ
दाहेण गिम्मसमएण। ण प्पहवामि परिस्समगआणं जंघाणं विक्केवणिक्केवं
कर्तुम्। पादतलञ्च मे सम्पक्वं पिटकसंस्फोटकैः संवृत्तम्। अन्यच्च,
कादुं। पाददलं अ मे संपक्कं पिअअसंपडोएहिं संवुत्तं। अण्णच्च,

व्याकरण—मार्गपरिश्रान्तः — मार्गेण परिश्रान्तः (तृ० तत्पु०)। परिश्रान्तः—परि+√श्रम्+दिवा० क्त, प्र० ए०। गृहीतभारः—गृहीतः भारः येन सः (बहुव्री०)। अभिनीय—अभि+√नी(लेजाना)+ल्यप्। सन्तापदीर्घेण—संतापेन दीर्घेण (सुप्सुपा)। विक्षेपनिक्षेपौ—विक्षेपः च निक्षेपः च तौ(द्वन्द्व०) कर्तुम्—√कृ+तुमुन्। संपक्वम्—सम्+√पच् (पकाना)+क्त। तापस-

कठिन शब्दार्थ—सुष्ठु—अव्यय) अच्छा, अत्यधिक। परिश्रांत—थका हुआ। जंघयोर्विक्षेपनिक्षेपौ—जांघों का उठाना तथा रखना। संपक्वम्—पके हुए। पिटक-संस्फोटक — फुन्सियां और छाले।

तृतीय अङ्क

प्रवेशक

(यात्रा से थके हुए तथा भार उठाए हुए तपस्वी का प्रवेश)

तपस्वी—(थकावट का अभिनय करके) ओह, इस प्रचंड धूप

तथा सुकुमारा देवी सीता तथा कोमलौ च कुशलवौ तापससार्द्धेन
तह सुउमाला देवी सींदा तह कोमला अ कुसलवा तापससद्धेण
सहानस्तमिते सूर्ये नैमिशं प्राप्ताः। अहमद्यापि नासादयामि अटवी-
सह अणत्थमिदे सूरे णेमिशं पत्ता । अहं अज्ज वि णासादेमि अडवि-
दिशामुखे। (*विचिन्त्य*) क इदानीं मे नैमिशमार्गमाख्यास्यति? (*विलोक्य*)
दिसामुहे । को दाणिं मे णेमिसमग्गं अचिक्खिस्सदि ?
नूनमेष लक्ष्मणसहायो रामो नैमिशं सम्प्राप्तः। तदहमपि तयोर्गति-
णणं एसो लक्खणसहाओ रामो णेमिसं संपत्तो । ता अहं वि दाणं गइं
मनुसराम । (*निष्क्रान्तः*)
अणुसरेमि ।

इति प्रवेशकः

सार्थेन—तापसानां सार्थेन (ष० तत्पु०)। सरतीति सार्थः (चलते हुए लोगों का समुदाय)। अस्तम्—अव्यय। अनस्तमिते—न+अस्तम्+इते। प्राप्ताः—प्र+√आप् स्वा०+क्त, प्र० ब०। आसादयामि—सद्, चुरा०, आ+लट्। आख्यास्यति—आ+√चक्ष् अदा० आ० लृट्, प्र० ए०। √चक्ष् को ख्या आदेश हुआ है।

कठिन शब्दार्थ—अनस्तमिते - अस्त होने से पूर्व। अटवी—वन। आसादयामि —पहुंचता हूं। नैमिश— वन का नाम।

से दीर्घ हुई गर्मी की रुत में खूब थक गया हूं। थकी हुई टांगें उठाने तथा रखने में असमर्थ हूं। पादतल फुंसियों और छालों से पक गए हैं। कोमलांगी सीता तथा कोमल शरीर वाले कुश और लव तपस्वियों के साथ सूर्य अस्त होने से पूर्व नैमिश वन में पहुंच गए। मैं अभी (उस) वन की सीमा पर भी नहीं पहुंचा। (सोचकर) अब मुझे नैमिश वन का मार्ग कौन बतलाएगा ? (देखकर) निश्चय ही यह लक्ष्मण के साथ राम नैमिश वन को जा रहे हैं। तो मैं भी इनके पीछे २ चलता हूं।

(ततः प्रविशति शोकसन्तप्तो रामो लक्ष्मणश्चाग्रतः)

ल०—आर्य इत इतः। (परिक्रम्य)

प्रथममनपराधां तां समुत्कृष्य देवी—
मगममहमगाधे कानने त्यक्तुकामः।
पुनरपि कुलशेषं राममादाय देवं
स्वजनविपदि दक्षः क्वाप्यधन्यः प्रयामि ॥१॥

अन्वय—प्रथमम् अहम् अनपराधाम् तां देवीं समुत्कृष्य अगाधे कानने त्यक्तुकामः अगमम्, स्वजनविपदि दक्षः अधन्यः पुनरपि कुलशेषं देवं रामम् आदाय क्वापि प्रयामि ॥१॥

व्याकरण—अनपराधाम्—अविद्यमानः अपराधः यस्याः ताम् (बहुव्री०)। समुत्कृष्य—सम्+उद्+√कृष्+ल्यप्। त्यक्तुकामः—त्यक्तुं कामः यस्य सः (बहुव्री०)। अगमम्—√गम्, लुङ्, उ० ए०। कुलशेषम्—कुलस्य शेषम् (ष० तत्पु०) आदाय—आ+√दा+ल्यप्। धन्यः—धनं लब्धा, स न भवति। प्रयामि—प्र+√या (जाना), लट्, उ० ए० ॥१॥

कठिन शब्दार्थ—समुत्कृष्य—बल पूर्वक लाकर। यहां बलात्कार लक्ष्मण के हृदय की अपनी भावना है, यथार्थ में नहीं। अगाध—गहन ॥१॥

(निकल जाता है)

प्रवेशक समाप्त

(शोक से संतप्त राम तथा उसके आगे जाते हुए लक्ष्मण का प्रवेश)

लक्ष्मण—आर्य! इधर, इधर। (कुछ पग चल कर) पहले मैं उस निरपराधिनी देवी को (बहाने से) ला कर गहन वन में छोड़ने की इच्छा से आया था, अपने बन्धुओं पर विपत्ति में लाने में चतुर (मैं) अभागा अब (इस) कुल (राम के) एकमात्र शेष महाराज श्री राम को लेकर (न जाने) कहाँ जा रहा हूँ ॥१॥

हा ! सुष्ठु खल्विदमुच्यते—

प्रमादः सम्पदं हन्ति प्रश्रयं हन्ति वि मयः ।
व्यसनं हन्ति विनयं हन्ति शोकश्च धीरताम् ॥२॥

तथाहि—एष मंदरमहीधरसमानधैर्यो भगवतो वाल्मीकेराग-मनमुपलभ्य तद्दर्शनार्थं गोमतीतीराश्रमपदमुच्चलितः । संप्रति तामेव दिशं परित्यज्य शोकावेगसमाक्षिप्तहृदयो महावनाभिमुखं प्रस्थितः । ततः किमेनं सम्यग् ज्ञापयामि ? अथ वा तत् किमनेन प्रतिहारेण धावितं मार्गमादेशयामि, यथायमचेतयन्नेव वाल्मीकेरा-श्रममनुप्राप्नोति । इत इत आर्यः ।

अन्वय—प्रमादः सम्पदं हन्ति, विस्मयः प्रश्रयं हन्ति, व्यसनं विनयं हन्ति, शोकः च धीरतां हन्ति ॥२॥

व्याकरण—मन्दरमहीधरसमानधैर्यः— मन्दर महीधरेण समानं धैर्यं यस्य सः (बहुव्री०) । भगवतः—भगवत्, ष० ए० । उपलभ्य—उप+√लभ्+ल्यप् । उच्चलितः—उद्+चल्+क्त, प्र० ए० । परित्यज्य—परि+√त्यज्+ल्यप् । शोकावेगसमाक्षिप्तहृदयः—शोकस्य आवेगेन समाक्षिप्तं ॥२॥

कठिन शब्दार्थ—प्रमादः — उपेक्षा, लापरवाही । संपदम्—सम्पत्ति को, ऐश्वर्य को । विस्मयः—गर्व । प्रश्रयम्—आदर को । व्यसनम्—बुरी आदतें । विनयः—सुशीलता ।

आह ! यह ठीक ही कहा गया है, कि—

प्रमाद ऐश्वर्य को, गर्व आदर को, बुरी आदतें विनय अथवा शालीनता को, तथा शोक धैर्य को नष्ट कर देता है ॥२॥

जैसे कि—मंदराचल के समान (दृढ़) धैर्य वाला यह राम भगवान् वाल्मीकि के आगमन का समाचार पा कर उनके दर्शन के लिये गोमती नदी के तट पर स्थित आश्रम की ओर उठ चला

रा०— (निश्वस्य)

नीतस्तावन्मकरवसतौ वंध्यतां शैलसेतु-
र्देवो वह्निर्न च विगणितः शुद्धिसाद्ये नियुक्तः।
इक्ष्वाकूणां भुवनमहिता संततिर्नेक्षिता मे
किं किं मोहादहमकरवं मैथिलीं तां निरस्य ॥३॥

(परिक्रम्य)

भो! भोः! कष्टम्! अतिनिरालम्बस्तपस्विन्याः प्रवासः।

हृदयं यस्य स (बहुव्री०) समाक्षिप्त—सम्+आ√क्षिप्+क्त, प्र० ए०। ज्ञापयामि—√ज्ञा+णिच् लट्, उ० ए०। प्रस्थितः—प्र√स्था+क्त, प्र० ए०। अचेतयन्—√चित्+चुरा० णिच् शतृ, नञ् के साथ समास होकर 'अचेतयन्' यह रूप हुआ। अनुप्राप्नोति—अनु+प्र+√आप्, लट्, प्र० ए०।

अन्वय—मकरवसतौ शैल सेतुः तावत् वन्ध्यतां नीतः, शुद्धि-साद्ये नियुक्तः देवः वह्निः च न विगणितः। भुवनमहिता इक्ष्वाकूणां संततिः मे न ईक्षिता, मोहात् तां मैथिलीं निरस्य अहं किं किं अकरवम् ॥३॥

व्याकरण—मकरवसतौ मकराणां वसतिः तस्याम् (ष० तत्पु०)। शुद्धिसाक्ष्ये—शुद्धौ साक्ष्यं तत्र (स० तत्पु०)। नियुक्तः—नि+√युज्+क्त, प्र० ए०। ईक्षिता—√ईक्ष्+क्त+टाप्। निरस्य—निर्+√अस् (फेंकना) ॥३॥

कठिन शब्दार्थ—मकरवसतौ—मगर मच्छों के निवास स्थान पर, समुद्र पर। शैलसेतुः — पत्थरों का बना पुल। वंध्यताम्—व्यर्थता,

---

था (परंतु) शोक के आवेग से व्याकुल चित्त हो अब वह उस दिशा को छोड़ कर महावन की ओर चल पड़ा है। तो क्या इसे सही (मार्ग) बतलाऊं? अथवा रहने दो, इस प्रतिहार [द्वारपाल]

पातयति सा क दृष्टिं कस्मिन्नासाद्य चित्तमाश्वसिति ।
जीवति कथं निराशा श्वापदभवने वने सीता ॥४॥

निष्फलता । वह्निः—अग्नि । न विगणितः—परवाह न की । भुवनमहिता—लोक-पूजित । निरस्य—फेंक कर, निकाल कर । निर् + अस् (दिवा०) + ल्यप् । भुवनमहिता—भुवनस्य महिता । यहां समास नहीं होना चाहिए था । अकरवम्—√कृ, लङ्, उ० ए० ॥३॥

अन्वय—श्वापदभवने वने सा क दृष्टिं पातयति, कस्मिन् चित्तम् आसाद्य आश्वसिति, निराशा सीता (तत्र) कथं जीवति ॥४॥

व्याकरण—श्वापदभवने—श्वापदानां भवने (ष० तत्पु०) । शुनः

से अनुसरण किये गये मार्ग का संकेत करता हूं ताकि यह बिना जाने (कि मैं मार्ग भूल गया हूँ) वाल्मीकि के आश्रम में पहुंच जावे आर्य इधर आईये, इधर आईये ।

राम—(दीर्घ श्वास ले कर)

मकरालय [समुद्र] पर बांधे हुए पत्थरों के पुल को व्यर्थ कर दिया, शुद्धि (काल) में साक्षी रूप से नियुक्त अग्निदेवता की भी परवाह न की तथा इक्ष्वाकुओं की लोक-पूजित [जगद्विख्यात] सन्तान का भी विचार न किया । मोह-वश सीता को निकाल कर मैंने क्या क्या (अनर्थ) नहीं किया ॥ ३ ॥

(कुछ पग चल कर)

हाय हाय ! बेचारी का निर्वासन (काल) में कोई भी सहारा नहीं ।

हिंस्र जन्तुओं के निवास-स्थान (भयंकर) वन में वह (सहायता के लिए) किधर देखती होगी, किस में चित्त को धर आश्वासन पाती होगी । निराश सीता (वहां) कैसे जीती होगी ? ॥४॥

ल०- (आत्मगतम्) आर्याया विप्रवासं तनयवैशसं च समनुचिन्त्य सुतरामयं सन्तप्यते, ततः प्रस्तावान्तरेण देवीवृत्तांतमपसारयामि। (प्रकाशम्) इतस्तावदवलोकयत्वार्यः —

मरकतहरितानामम्भसामेकयोनि—
र्मदकलकलहंसीगीतरम्योपकण्ठा।

पदाः श्वपादाः यस्य स श्वापदः। पातयति √पत्+णिच् लट्, प्र० ए०। आसाद्य—आ+√सद्+णिच+ल्यप। आश्वसिति—√श्वस् अदादि लट्, प्र० ए० ॥ ४ ॥

वैशसम्—विशसस्य कर्म। विशसतीति विशसः=घातुकः। समनुचिन्त्य — सम् + अनु + √चिन्त् + ल्यप्। सन्तप्यते — सम् +√तप्+यक्, (कर्म कर्ता में लट्) आत्मनेपद, प्र० ए०। अपसारयामि— अप+√सृ+णिच्, लट् उ० ए०। इतस्तावदवलोकयत्वार्यः—इतः+तावत्+अवलोकयतु+आर्यः।

अन्वय—नरवर! मरकत-हरितानां अम्भसां एकयोनिः, मद-कलकल-हंसी-गीत-रम्य-उपकण्ठा, दिक्-अन्तान् नलिनी-वन-विकासैः वासयन्ती इयं गोमती ते पुरतः दृश्यते ॥ ५ ॥

व्याकरण— मरकत-हरितानां—मरकतानीव हरितानि, तेषाम्

लक्ष्मण—(अपने आप) आर्या के वनवास तथा सन्तान के विनाश को सोचकर यह (राम) अत्यधिक सन्तप्त हो रहा है, तो अन्य प्रसंग छोड़ कर देवी (रानी सीता) संबन्धिनी कथा को परे हटाता हूँ। (प्रकट) आर्य, जरा इधर देखिए—

हे नर श्रेष्ठ! मरकत मणियों (के समान) हरे रंग के जलों का एक मात्र उद्गम-स्थल, मद से मधुर ध्वनि वाली हंसियों के गीतों से सुन्दर किनारों वाली (तथा) दिशा प्रान्तों को कमलों

नलिनीवनविकासैर्वासयन्ती दिगन्तान्
नरवर पुरतस्ते दृश्यते गोमतीयम् ॥५॥

रा०—(*स्पर्शमभिनीय*)

मुक्ताहारा मलयमरुतश्चन्दनं चन्द्रपादाः
सीतात्यागात्प्रभृति नितरां तापमेवावहन्ति ।

(कर्मधा०) । अम्भसाम्—अम्भस्, नपुं० ष० ब० । मदकल०—मदेन कलैः कल-हंसीनां गीतैः रम्यः उपकण्ठः यस्याः सा गोमती । दिगन्तान्—दिशाम् अन्तान् (ष० तत्पु०) नलिनीवनविकासैः—नलिनीवनानां विकासैः (ष० तत्पु०) । वासयन्ती—√वास्, चु०(चुराना)+शब्द, स्त्री०, प्र० ए० ॥५॥

कठिन शब्दार्थ—**मरकत**—(नपुं०) हीरा । **अम्भसाम्**—जलों का **योनि**—उत्पत्तिस्थान । **उपकण्ठ**—(पुं०) । किनारा । **वासयन्ती**—सुगन्धित करती हुई ॥५॥

अन्वय—सीता-त्यागात् प्रभृति मुक्ता-हाराः, मलय-मरुतः, चन्दनम् चन्द्रपादाः नितरां तापम् एव आवहन्ति । अद्य गोमती-तीर वायुः अकस्मात् मनः रमयति, प्रोषिता वराकी सा (सीता) तस्यां दिशि निवसति नूनम् ॥ ६ ॥

कठिन शब्दार्थ—**मुक्ताहाराः**—मोतियों के हार । **चन्द्रपादाः**—चन्द्रमा की किरणें । **आवहन्ति**—उत्पन्न करती हैं । 'पाद' नित्य पुं० है । **रमयति**—आनन्दित कर रहा है । **प्रोषिता**—प्रवासिनी ॥६॥

के विकास से सुगन्धित करती हुई यह गोमती नदी तुम्हारे सामने दिखाई दे रही है ॥ ५ ॥

राम—(स्पर्श करने का अभिनय कर के)

सीता-त्याग से लेकर मोतियों की मालाएं, मलय-समीर, चन्दन तथा चन्द्रमा की (शीतल) किरणें सन्ताप ही देती है । आज गोमती

अथाकस्माद्रमयति मनो गोमतीतीरवायु-

नूनं तस्यां दिशि निवसति प्रोषिता सा वराकी ॥ ६ ॥

ल०—अतिविषमोऽयं निम्नगावतारः, तदप्रमत्तमवतीर्यताम् ।

(उभाववतरणमभिनीय) [निर्वर्ण्य]

यथैतान्यविरलपदन्यासलाञ्छितानि सैकतानि, वृन्तमात्रावशेषतया संसूच्यमानकुसुमापचया रोधोलताः, तदालूनकिसलयतया विरल-

---

व्याकरण—मुक्ताहारा;—मुक्तानां हारा; (ष० तत्पु०) 'हार' संस्कृत में मोतियों के हार को ही कहते हैं, तो भी मोतियों की प्रचुरता दिखाने के लिए 'मुक्ता, पद रखा है। मलयमरुतः—मलयस्य मरुतः (ष० तत्पु०) । आवहन्ति —आ+√वह्, लट् प्र० ब०। आवहन्ति=जनयन्ति। वहति और आवहति के अर्थों में बड़ा भेद है। रमयति—√रम्+णिच्, लट, प्र० ए०। प्रोषिता—प्र+√वस्+क्त, प्र० ए० ॥ ६ ॥

निम्नगा—निम्नं यथा स्यात् तथा गच्छति इति। अवतीर्यताम्—अव+√तृ, लोट् (कर्मवाच्य), प्र० ए० । निर्वर्ण्य—निर्+√वर्ण, (वर्णन करना), (चुरा०)+णिच्+ल्यप् । अविरलपदन्यासलाञ्छितानि—पदयोः चरणयोः न्यासाः=पदन्यासाः (पादचिह्नानि), अविरलाः च ते पदन्यासाः तैः

नदी के किनारे की वायु अकस्मात् मेरे मन को आनन्दित कर रही है, मेरा अनुमान है वह बेचारी प्रवासिनी उसी ओर रहतीहै ॥ ६ ॥

लक्ष्मण—नदी में उतरने का यह मार्ग अति विषम है। अतः सावधानी से उतरिए।

(दोनों उतरने का अभिनय करते हैं)

(देख कर)

यह रेतीले किनारे पैरों के घने चिह्नों से अंकित हैं, तट पर उगी हुई लताएँ केवल टहनियों के बचे रहने से फूलों के तोड़े जाने की सूचना दे रही हैं, तथा पत्ते तोड़े जाने के कारण वृक्षों की

च्छाया वनस्पतयः, तथा जानामि प्रत्यासन्नवर्तिना मनुष्याधिवासेन भवितव्यम् । तथाहि—

अभिनवरचितानि देवतानां जलकुसुमैर्बलिमन्ति सैकतानि ।
इयमपि कुरुते तरङ्गमध्ये भुजगवधूललितानि कुन्दमाला ॥७॥

अविरल पदन्यासैः लाञ्छितानि (तृ० तत्पु०) । लाञ्छितानि —√लाञ्छ्+क्त प्र० ब० । सैकतानि = सिकतामयानि, सिकता+अण् वृन्तमात्रम् = वृन्तमेव । रोधोलताः = रोधसि तीरे लताः । संसूच्यमान—सम्+√सूच् (सूचनादेना) चुरा० णिच्+शानच् । संसच्यमानकुसुमापचयाः—संसूच्यमानः कुसुमानां अपचयः (अपचयः) यासां ताः (बहुव्री०) । आलून —आ+√लू (काटना)+क्त । आलून किसलयतया—आलूनानि किसलयानि येषां ते, तेषां भावः, तत्ता, तया (बहुव्री०)। विरलच्छाया—विरला छाया येषां ते । बहुव्री०) आसन्न—आ +√सद्+क्त । भवितव्यम् —√भू+तव्यत् ।

अन्वय—अभिनवरचितानि सैकतानि देवतानां जलकुसुमैः बलिमन्ति (सन्ति) । इयं कुन्दमाला च अपि तरङ्ग मध्ये भुजगवधूललितानि करोति ॥७॥

व्याकरण— जलकुसुमैः—जलसहितैः कुसुमैः (मध्यमपदलोपी-समास) । बलिमन्ति—बलिमत् (नपुं०), प्र० ब० । अभिनवरचितानि—

कठिन शब्दार्थ—बलिमन्ति—पूजा के उपहारों से युक्त । सैकतानि—रेतीले किनारे । भुजगवधू सर्पिणी ॥७॥

छाया घनी नहीं, इस से (मैं) समझता हूं कि मनुष्यों की बस्ती [कहीं] निकट ही होनी चाहिए । और इस लिए (भी)—

अभी २ बने हुये रेतीले किनारे देवताओं के दिये गये जल और पुष्पों की बलियों से युक्त हैं और यह कुन्द पुष्पों की बनी माला भी तरङ्गों के बीच सर्पिणी के समान ललित चेष्टाएँ कर रही है ॥७॥

रा०—न केवलं प्रत्यासन्नवर्तिना प्रतिस्रोतोपगतेनापि मनुष्याधिवासेन भवितव्यम् ।

ल०—आश्चर्यमाश्चर्यम् ! एषा हि कुन्दमाला चरणसपर्यामिव कर्तुकामया समुद्रगामिन्या तरङ्गपरम्परया क्रमेण देवस्य

अभिनवं यथा स्यात्तया रचितानि । रचितानि—√रच् बचाना) चुरा०+णिच्+क्त प्र० ब० । तरङ्गमध्ये—तरङ्गाणां मध्ये (ष० त०) ललितानि—√लड् (विलास करना)+क्त, (नपुंसको भावे) प्र० ब० । प्रतिस्त्रोतोपगतेन—प्रतिगतं स्रोतः इति प्रतिस्रोतः, तद् उपगतेन [यहां की गई सन्धि नियम-बिरुद्ध है, शुद्ध पाठ "प्रतिस्रोत उपगतेन" चाहिए] । मनुष्याधिवासेन—मनुष्याणाम् अधिवासः तेन (ष० तत्पु०) । भवितव्यम्—√भू+तव्यत् । चरणसपर्याम्—चरणयोः सपर्याम् (ष० तत्पु०) । कर्तुकामया—कर्तुकामः यस्याः तया (बहुव्री०) । तरङ्गपरम्परया—तरङ्गाणां परम्परया (ष० तत्पु०) । पादान्तिकं—पादयोः अन्तिकम् (ष० तत्पु०) । उपहृता—उप+√हृ (ले जाना)+क्त, स्त्री०, प्र० ए० । अवहितम्—अव+√धा+क्त । प्रेक्षणीया—प्र+√ईक्ष्+अनीयर्, स्त्री० प्र० ए० । तदवलोकयत्वार्यः—तद्+अवलोकयतु+आर्यः ।

कठिन शब्दार्थ—प्रतिस्रोत—प्रवाह की विरुद्ध दिशा । मनुष्याधिवास—जनवास । सपर्या—पूजा । अन्तकिम्—समीप । अवस्थानम्—स्थिति ।

राम—मनुष्यों की बस्ती केवल समीप ही नहीं (नदी के) प्रवाह की प्रतिकूल दिशा में होनी चाहिये ।

लक्ष्मण—अत्याश्चर्य है ! समुद्र की ओर जाती हुई तरङ्गों की पंक्ति ने, मानों आपके चरणों की सेवा करने की इच्छा से, यह

पादान्तिकमुपहृता । अवहितं प्रेक्षणीया विरचना, तदवलोकयत्वार्यः । (*गृहीत्वोपनयति*)

रा०—(*निर्वर्ण्य रोमाञ्चमभिनीय*) वत्स, दृष्टपूर्वमिदं कुसुमरचनाविन्यासकौशलम् ।

ल०—क्व दृष्टम् ?

रा०—क्व वान्यत्रेदृशस्यावस्थानम् ?

ल०—किं देव्याम् ?

रा०—अथ किम् ?

ल०—को जानाति दुर्विदग्धः प्रजापतिः कथं कथं क्रीडतीति ।

व्याकरण—दृष्ट पूर्वम् —पूर्वं दृष्टम् (सुप्सुपा) । कुसुमरचनाविन्यासकौशलम् —कुसुमानां रचनया क्रमविशेषेण न्यासः तत्र कौशलम् । दुर्विदग्धः—दुर्+वि+√दह् (जलाना)+क्त, प्र० ए० । गच्छत्वार्यः—गच्छतु+आर्यः । अनुसाव:—अनु × √सृ, भ्वा० लट्, उ० द्वि० ।

कुंदमाला धीरे २ आप के चरणों में भेंट कर दी है । (इसमें) पुष्पों को गूँथने का ढंग सावधानी से देखने योग्य है, आर्य ज़रा देखें ।

(उठा कर समीप ले जाता है)

राम—(देख कर रोमांच का प्रदर्शन करते हुए) इस में क्रम विशेष में पुष्प गूँथने की चतुराई मेरी पहले देखी हुई है ।

लक्ष्मण—कहां देखी है ?

राम—ऐसा (नपुण्य) और कहां हो सकता है ?

लक्ष्मण—क्या देवी में ?

राम—और क्या ?

गच्छत्वार्यः इदमेव गोमतीतीरं प्रतिस्रोतोऽनुसरावो यावदस्याः कुन्दमालायाः प्रभवमासादयावः ।

रा०—सुलभसादृश्यो लोकसन्निवेशः । न चैतावदस्माकं भागधेयम् । इतश्चात्यन्तविप्रकृष्टे देशे परित्यक्तायाः सीताया आगमनं न सम्भाव्यते । तथाप्यादेशय मार्गं येनेदं सलिलान्तरममुञ्चन्तौ वसतिमासादयावः ।

ल०—एषा नदीभूमिः कण्टकितशर्कराशुक्तिपुटदुःखसञ्चारा, तद्यथा यथामार्गमादेशयामि तथा तथा शनैरागन्तव्यमार्येण ।

व्याकरण—सन्निवेशः—सम्+नि+विश्+घञ्, रचना । सुलभ-सादृश्यः सुलभं सादृश्यं यत्र सः । विप्रकृष्टे—वि+प्र√कृष्+क्त, स० ए० (दूर देश में) । सम्भाव्यते—सम्+√भू+णिच्, कर्मवाच्य । अमुञ्चन्तौ—न+√मुञ्च् (छोड़ना)+शतृ, प्र० द्वि० नञ् के साथश त्रन्त का समास । आसादयावः—आ+√सद् (चरा०), लट्, उ० द्वि० ।

कठिन शब्दार्थ—दुर्विदग्धः—वृथाभिमानी, अविवेकी । प्रभवम्-उद्गम स्थान । भागधेयम्—भाग्य । विप्रकृष्ट—दूर । वसतिः—जनवास । शुक्ति—सीपी । शर्करा (स्त्री०)—कंकड़ । कण्टकित—नुकीले । संचार—चलना फिरना । पुट—आधे आधे भाग ।

लक्ष्मण—कौन जानता है कि वृथा-अभिमानी प्रजापति क्या क्या खेल खेलता है । आर्य चलें, हम गोमती के इसी किनारे २ प्रवाह के प्रतिकूल (तब तक) चलते जाते हैं, जब तक कुन्दमाला के आगमन-स्थान तक नहीं पहुंच जाते ।

राम—लोक में कुसुम विन्यास की समानता सुलभ है । हमारे इतने भाग्य भी कहाँ, तथा इधर इतने भाग्य भी कहाँ, तथा इधर इतने दूर-देश में परित्यक्ता सीता के आने की सम्भावना नहीं ।

रा०—एवं क्रियताम् । यद्यपीयमभिमता कुन्दमाला तथापि देवतोपहारशङ्कया नोपभोगमुपनीयते । (*इति विमुञ्चति*)

ल०—*एतां वेत्रलतां विलङ्घ्य पदं मा स्मिन् कृथाः शुक्तयो*
मूर्धानं व्यवधाय नामय पुरो दूरावनम्रस्तरुः ।

व्याकरण—कण्टकितशर्कराशुक्तिपुटदुःखसञ्चारः—कण्टकित-शर्कराभिः शुक्ति पुटैश्च दुखः सञ्चारः यत्र सा । आदेशयामि—आ+√दिश्+णिच्, लट् उ० ए० । आगन्तव्यम्—आ+√गम्+तव्यत् । क्रियताम्—√कृ, लोट् (कर्मवाच्य), प्र० ए० । देवतोपहारशङ्कया—देवतायै उपहारः तस्य शङ्कया (ष० तत्पु०) । उपनीयते—उप+√नी, कर्मवाच्य, लट्; प्र० ए० ।

अन्वय—एतां वेत्रलतां विलङ्घ्य, अस्मिन् (स्थाने) पदं मा कृथाः (इह) शुक्तयः सन्ति), पुरः तरुः दूरावनम्रः (अतः) मूर्धानं व्यवधाय नामय । पुरतः इमां तिरश्चीं शाखां चापाग्रेण विकृष्य मुञ्च । शरारुदीयताः पुरा उत्त्रस्यन्ति, धीरं परिक्रम्यताम् ॥८॥

व्याकरण—विलङ्घ्य—वि+√लङ्घ्+णिच्, लोट्, म० ए० । कृथाः—√कृ, लुङ्, म० ए०, 'मा' के योग में 'कृथा' में 'आ' के आगम का लोप हुआ है । व्यवधाय—वि+अव+√धा+ल्यप् । नावय—√नम् (झुकना)

फिर भी रास्ता दिखलाओ, जिस से जल से परे न हटते हुए बस्ती में पहुंच जावें ।

लक्ष्मण—नुकीले कंकड़ों तथा सीपियों के टुकड़ों (से भरा होने) के कारण इस नदी-प्रदेश पर चलना कठिन है, अतः जैसे जैसे मार्ग बतलाता हूँ वैसे वैसे धीरे २ आप आईए ।

राम—ऐसा ही करो । यद्यपि यह कुन्दमाला (मुझे) बहुत पसन्द है । फिर भी '(यह किसी) देवता की भेंट है' इस भय से [इस का] उपभोग नहीं कर सकता । (कुन्दमाला छोड़ देता है)

चापाग्रेण विकृष्य मुञ्च पुरतः शाखां तिरश्चीमिमा-
मुत्त्रस्यन्ति पुरा शरारुदयिताः धीरं परिक्रम्यताम् ॥ ८ ॥

रा०—(*यथोक्तं परिक्रम्य*) वत्स किमेतस्मिन् देशे भगवतो वाल्मीके-राश्रमसन्निवेशः ?

ल०—किं दृष्टमार्येण ?

रा०—असौ *तनुत्वादवधानदृश्या दिशः समाक्रामति धूमलेखा ।*

+णिच्, लोट्, म० ए० । तिरश्चीम्—तिर्यच् (स्त्री०), द्वि० ए० । विकृष्य—वि+√कृष्+ल्यप्। उत्त्रस्यन्ति—उद्+√त्रस् (उतरना), लट्, प्र० ब० । शरारुदयिताः—शरारूणां दयिताः (ष०तत्पु०) । परिक्रम्यताम्—परि+√क्रम् ॥८॥

अन्वय—तनुत्वात् अवधान-दृश्या असौ धूमलेखा दिशः समाक्रामति । मृदुना अनिलेन आकृष्यमाणः साम-नादः श्रोत्रेषु सम्मूर्च्छति ॥ ९ ॥

व्याकरण—अवधानदृश्या अवधानेन दृश्या (तृ० तत्पु०) । दृश्या—√दृश्+यत्, प्र० ए० । समाक्रामति – सम्+आ√क्रम्, लट्, ० ए० । आकृष्यमाणः—आ+√कृष् (कर्मवाच्य +शानच् प्र० एक० । सामनादः—

लक्ष्मण—इस बेंत की लता को लाँघ जाओ, इस (स्थान) पर पैर न रखो—यहाँ सीपियाँ (हैं), सामने वृक्ष दूर तक झुका हुआ है (अतः) सिर ढाँप कर झुकाओ। सामने वाली इस तिरछी शाखा को धनुष की नोक से हटाकर (एक ओर करके) छोड़ दो, हिंसक जीवों की स्त्रियां (आप को देखकर) डर जावेंगी (अतः) धीरे २ चलो ॥ ८ ॥

राम—(निर्देशानुसार चल कर) वत्स ! क्या भगवान् वाल्मीकि का आश्रम इसी प्रदेश में स्थित है ?

लक्ष्मण—आर्य आप ने कौनसी चीज़ देखी (जो आप का ऐसा विचार हो रहा) ?

आकृष्यमाणो मृदुना नलेन श्रोत्रेषु सम्मूर्च्छति सामनादः ॥ ६ ॥

ल०—सम्यगुपलक्षितमार्येण । अहमप्यग्रतो गत्वा निरूपयामि । (*परिक्रामंस्तरुस्तम्भमभिनीय*) कथमेतस्मिन् पदोद्धारे ससाध्वसमिव मे हृदयम् ; स्तम्भितावूरू, उत्क्षिप्यमाणौ चरणौ नाग्रतो भूमिं गन्तुमुत्सहेते । तन् किमिदम् । (*विचिन्त्य*) सुव्यक्तं गुरुजनसमाक्रान्तेन प्रदेशेन भवितव्यम् । अथ पदानीव लक्ष्यन्ते । (*भूमिं निर्वर्णयति*)

साम्नां नाद; (ष०तत्पु०) सम्मूर्च्छति—सम्+√मूर्छ्, लट् ,प्र० ए० ॥ ९ ॥

कठिन शब्दार्थ—तनुत्वात्—सूक्ष्म (पतली, होने के कारण । अवधानदृश्या—ध्यान से दीखने योग्य । समाक्रामति—व्याप्त कर रही है । श्रोत्रेषु—कानों में । सम्मूर्च्छति—पड़ रही है ॥६॥

व्याकरण—उपलक्षितम्—उप√लक्ष्(चुरा०)+क्त। गत्वा—√गम्+त्वा । निरूपयामि—नि+रूप णिच् लट्, उ०ए० । ससाध्वसम्—साध्वसेन सह वर्तमानं यथा स्यात् तथा बहुव्रीही । स्तम्भितौ—√स्तम्भ्+णिच्+क्त, प्र० द्वि० । उत्क्षिप्यमाणौ—उद्+√क्षिप् (कर्म वाच्य)+शानच्, प्र० द्वि० । समाक्रान्तेन—सम्+आ+√क्रम्+क्त, तृ० ए० । लक्ष्यन्ते—√लक्ष् (कर्म-वाच्य),प्र० ब० ।

राम—सूक्ष्म होने के कारण ध्यान से दिखाई देने वाली यह यह (यज्ञ की) धूम-रेखा (चहुं) ओर फैल रही है (तथा) मन्द-समीर द्वारा प्रसारित की जाती हुई साम मन्त्रों (के गायन) की ध्वनि कानों में पड़ रही है ॥ ६ ॥

लक्ष्मण—आप ने ठीक पहचाना है। मैं भी आगे चल कर देखता हूँ (चलते हुए वृक्ष का सहारा लेने का अभिनय करके यह पैर उठाते हुए मेरा हृदय कांप क्यों रहा है, जंघाएं सन्न सी हो गई हैं,

रा०—किंकृतोऽयं वत्सस्य भूमिनिरूपणायामादरः ?

ल०—एतानि नितान्तमनोहरतया सङ्क्रान्तचरणतलसौकुमार्याणि ललितनिभृतविन्यासतया विज्ञायमानस्त्रीपदभावानि पुलिन-तलसन्निवेशपदानि दृश्यन्ते । पश्यत्वार्यः—

विलासयोगेन परिश्रमेण वा
स्वभावतो वा निभृतानि मन्थरम् ।

व्याकरण—सङ्क्रान्त—सम्+√क्रम्+क्त । सङ्क्रान्तचरणसलसौ-कुमार्याणि—सङ्क्रान्तं चरणतलयोः सौकुमार्यं येषु तानि (बहुव्रीही) ललितनिभृत-विन्यासतया—ललितः निभृतः विन्यासः येषां तानि, तेषां भावः तत्ता, तया (बहुव्री०। विज्ञायमान—वि+√ज्ञा+शानच् । पुलिनतलसन्निवेशपदानि—पुलिनतले सन्निवेशः येषां तानि पदानि । दृश्यन्ते —√दृश् (कर्मवाच्य) प्र० ब० ।

अन्वय—सैकते विलास योगेन (वा) परिश्रमेण वा स्वभावतः वा मन्थरं निभृतानि कस्याश्चिद् इमानि कलहंसविभ्रमैः तुल्यं प्रयान्ति ॥१०॥

व्याकरण— विलासयोगेन—विलासस्य योगेन (ष० तत्पु०) । निभृतानि—नि√भृ+क्त, प्र० ब० । कस्याश्चिद्-कस्याः+चित् । कलहंसवि-

उठाने पर (भी) पैर भूमि पर आगे बढ़ने का उद्यम नहीं करते । यह (बात) है ? (सोच कर) निश्चय ही यह स्थान गुरुजनों द्वारा अधिष्ठित होगा और कुछ पद-चिह्न से दिखाई देते हैं । (पृथ्वी पर ध्यान से-देखता है)

राम – वत्स, तेरा पृथ्वी देखने में इतना ध्यान क्यों ?

लक्ष्मण—अत्यधिक सौन्दर्य के कारण, चरणतलों की सुकुमारता को लिये हुए (तथा) विलासपूर्वक मृदु गति के होने से रेतीले तट पर अंकित ये चरण चिह्न (किसी) स्त्री के प्रतीत होते हुए दीखते हैं । आर्य देखें—

पदानि कस्याश्चिदिमानि सैकते
प्रयाति तुल्यं कलहंसविभ्रमैः ॥१०॥

रा०—(*निर्वर्ण्य सहर्षम्*) वत्स, किमुच्यते कस्याश्चिदिति । ननु वक्तव्यं सीतायाः पदानीति । पश्य ।

समानं संस्थानं निभृतललिता सैव रचना

भ्रमैः कलहंसानां विभ्रमैः (ष० तत्पु०) मन्थरम् —क्रिया वि० । प्रयान्ति—प्र+√या, लट्, प्र० ब० ॥१०॥

कठिन शब्दार्थ—विलास योगेन—नजाकत से। निभृत—भरे हुए, अंकित । मन्थरम्—धीरे धीरे ॥१०॥

व्याकरण— निर्वर्ण्य—निर्+√वर्ण+णिच् + ल्यप् । उच्यते —√वच् (कर्मवाच्य) लट्, प्र० ए० । वक्तव्यम्—√ब्रू+तव्यत् । पश्य—√दृश्, लोट्, म० ए० ।

अन्वय—(पादयोः चिह्नानां) संस्थानं समानं, निभृत—ललिता रचना सा एव, एतद् रेखा-कमल-रचितं चारु तिलकं तद् एव। यथा च इयं पद-पङ्क्तिः दृष्टा (सती) शोक-विधुरं (मम) हृदयं हरति तथा देव्या अस्मिन् (स्थाने) सपदि विनिहिता ॥११॥

व्याकरण—निभृतललिता—निभृता च असौ ललिता च । रेखा-कमलरचितम् —रेखाभिर्निर्मितेन कमलेन रचितम् । पदपंक्ति—पदानां पंक्तिः

रेतीले तट पर विलास के कारण अथवा थकावट के कारण या स्वभाव से (ही) धीरे २ रखे हुए किसी के ये चरण-चिह्न कलहंसों की विलासपूर्ण गति के समान (आगे) जा रहे हैं ॥१०॥

राम—(देख कर, प्रसन्नता से) वत्स, क्या कहा 'किसी (स्त्री) के' अरे कहो, सीता के चरणचिह्न हैं । देखो—

तदेवतद्रेखाकमलरचितं चारु तिलकम् ।
यथा चेयं दृष्टा हरति हृदयं शोकविधुरं
तथा ह्यस्मिन् देव्या सपदि पदपंक्तिर्विनिहिता ॥११॥

ल०—(सहर्षम्) यावदेतामेव पदपङ्क्तिमनुसरन्तौ वाल्मीकेराश्रमपदमनुसरावः । यथा चेयं प्रत्यग्रनिहिता पदपङ्क्तिस्तथा जानामि प्रत्यासन्नवर्तिन्या देव्या भवितव्यमिति ।

(ष० तत्पु०) । दृष्टा—√दृश्+क्त, स्त्री० प्र० ए० । शोकविधुरम्—शोकेन विधुरम् (सुप्सुप।) । विनिहिता—वि+नि+√धा+क्त, स्त्री० ० ए० ।

कठिन शब्दार्थ—संस्थानम्—आकृति । चारु—सुन्दर । शोकविधुरम्—शोक से व्याकुल । हरति—आकर्षित करती है । सपदि—शीघ्र तत्काल । विनिहिता—स्थापित, अंकित ।

व्याकरण—अनुसरन्तौ – अनु+√सृ+शतृ, प्र० द्वि० । प्रत्यासन्न—प्रति+आ+√सद्+क्त । भवितव्यम्—√भू+तव्यत् ।

पैरों के चिह्नों की आकृति (सीता के पैरों के) समान है, कोमल (तथा) सुन्दर बनावट (भी) वही है, रेखाओं से बने कमल का सुन्दर विशेषक (अलंकार) (भी) वही है । क्योंकि—

यह चरण [चिह्न] पंक्ति, देखने पर शोक से व्याकुल (मेरे) मन को आकर्षित कर रही अतः (अवश्यमेव) देवी द्वारा इस (स्थान) पर अभी अभी अङ्कित की गई है ॥११॥

(सहर्ष) तो इसी चरण (चिह्नों की) पंक्ति के साथ साथ [पीछे पीछे] चलते हुए वाल्मीकि के आश्रम को चलते हैं । चूँकि यह पद पंक्ति अभी अभी अंकित हुई है अतः मेरा अनुमान है (कि) देवी समीप ही विद्यमान होगी ।

(ततः प्रविशति सीता)

सी०—निर्वर्तितं सवनम्, उपासिता संध्या, हुतो हुतवहः, अवगाहिता
णिव्वत्तिदं सवणं, उवासिदा संझा, हुदो हुदवहो, ओगाहिदा
भगवती भागीरथी, भगवतीं भागीरथीमुद्दिश्य......स्वहस्तग्रथित
भगवई भाईरही, भगवईं भाईरहीं उद्दिसिअ महपदिण्णा सहत्थगद्धा
कुन्दमाला समर्पिता। इदानीमहमुन्नतगम्भीरशीतलं लताजालं
कुन्दमाला समप्पिदा। दाणिं अहं उण्णदगंभीरसीदलं लदाजालं
प्रविश्यातिथिजनोपस्थानयोग्यानि कुसुमान्यवचिनोमि।
पविसिअ अदिहिजणोपत्थाणजोग्गाइं कुसुमाइं ओचिणोमि।

व्याकरण— निर्वर्तितम् - निर् + √वृत् भ्वा० आ० + णिच् + क्त। उपासिता—उप + √आस् अदा० आ० + क्त, प्र० ए०। हुतः—√हु जुहो० + क्त, प्र० ए०। स्वहस्तग्रथिता स्वहस्ताभ्यां ग्रथिता (तृ० तत्पु०)। प्रविश्य—प्र + √विश् + ल्यप्। अतिथिजनोपस्थानयोग्यानिअ–तिथि जनस्य उपस्थानयोग्यनि (ष० तत्पु०)। अवचिनोमि—अव + √चि, स्वा० आ० लट् उ० ए०।

कठिन शब्दार्थ—प्रत्यग्र—अभिनव, ताज़ा। प्रत्यासन्नवर्तिनी—समीपस्थित [विद्यमान]। निर्वर्तितम्—समाप्त कर लिया है। सवनम्—स्नान। हुतवहः—अग्नि। अवगाहिता—अवगाहन कर लिया है, डुबकी लगा ली है। उपस्थान—सत्कार, पूजा।

(सीता का प्रवेश)

सीता—स्नान कर लिया है संध्या वन्दन (भी) कर लिया है, अग्निहोत्र भी कर लिया है भगवती भागीरथी में भी) डुबकी लगा चुकी हूँ। (तथा) भगवती भागीरथी के निमित्त अपने हाथों से गुथी हुई कुन्दमाला (भी) अर्पित कर दी है। अब मैं (इस) ऊँचे, गहन तथा शीतल लताकुञ्ज में जाकर अतिथियों के सत्कार योग्य फूल चुनती हूँ।

(प्रविष्टकेनापचयं नाटयति)

ल०—एषा पदपङ्क्तिः क्रमेण मार्गवशात् पुलिनतलं परित्यज्य स्थलमारूढा, प्रणष्टा च। तदिदमेव पुरस्तात्संदृश्यमानलतागुल्म प्रच्छायमतिरमणीयमध्यास्य गतश्रमौ भगवन्तं प्राचेतसमुपसर्पावः।

रा०—यदभिरुचितं भवते।

व्याकरण—परित्यज्य—परि+√त्यज्+ल्यप्। आरूढा—आ+√रूह्, भ्वा०+क्त, प्र० ए०। 'प्रणष्टा' व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है। संदृश्यमान— सम्+√दृश्—(कर्मणि) शानच्। अध्यास्य—अधि+√आस् (बैठना)+ल्यप्, अधि पूर्वक आस् सकर्मक है। उपसर्पावः—उप+√सृप्(जाना), भ्वा० लट्०, उ० द्वि०। अभिरुचितम्—अभि+√रुच् भ्वा० आ०+क्त।

कठिन शब्दार्थ—गुल्म—समूह, झाड़ी, मंडप। प्रच्छायम्—छायादार। अध्यास्य—बैठ कर। प्राचेतसम्—वाल्मीकि को।

(प्रवेश करके पुष्प तोड़ने का अभिनय करती है)

लक्ष्मण—यह पद (चिह्न) पंक्ति धीरे २ मार्ग का अनुसरण करती हुई पत्नी से बाहर निकले हुए तट को छोड़ कर स्थल [शुष्क भूमि] पर पहुंच गई है तथा लुप्त हो गई है। तो इसी सामने दीख रहे लता समूह से घनी छाया वाले अति सुन्दर इस स्थान में बैठ कर थकावट दूर कर के भगवान् वाल्मीकि के आश्रम में जावेंगे।

राम—जो तुम्हें रुचिकर हो।

(परिक्रम्योपविशतः)

रा०—(निःश्वस्य सवाष्पम्) वत्स वत्स—

सी०— (कर्णन्दत्त्वा) को नु खल्वेष सजलजलदस्तनितगम्भीरेण
को णु खु एसो सअलजलहरद्धणिदगंभीरेण
स्वरविशेषेणात्यन्तदुःखभाजनमपि मे शरीरं रोमांचयति।
सरविसेसेण अच्चंददुःखबाअणं वि मे सरीरं रोमांचेदि।
निरूपयामि तावत् क एष इति। अथ वा न युक्तं ममाज्ञात्वा
णिरूवेमि दाव को एसोत्ति। अहवा ण जुत्तं मम अजाणिअ
परमार्थमस्थाने दृष्टिं विसर्जयितुम्। किमत्र ज्ञातव्यम्?
परमत्थं अत्थाणे दिट्ठिं विसज्जइदुं। किं एत्थ जाणिदव्वं?

व्याकरण—सजलजलदस्तनितगम्भीरेण—सजलो यो जलदः, तस्य स्तनितमिव गम्भीरः (स्वरः) तेन (कर्म०); जलं ददातीति जलदः। रोमांचयति—रोमाञ्च+णिच्, लट्, प्र० ए०। यहां रोमाञ्च रोमाञ्चित के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। निरूपयामि—नि+रूप, णिच्, लट्, उ० ए०। युक्तम्—√युज्+क्त। अज्ञात्वा—न+√ज्ञा क्र्यादि०+क्त्वा। विसर्जयितुम्—वि+√सृज्+णिच्+तुमुन्। ज्ञातव्यम्—√ज्ञा+तव्यत्।

कठिन शब्दार्थ—जलद—मेघ। स्तनित—गर्जना। परमार्थः (परमार्थम्—द्वितीया एक०)—तत्त्व, वास्तविकता, सत्यता। विसर्जयितुम्—छोड़ना, फेंकना। अवनाहयति—बन्ध युक्त करता है। यहां रोमाञ्च को बन्धन का रूप दिया गया है। सुव्यक्तम्—स्पष्ट ही, देखती हूँ।

(चल कर बैठ जाती है)

सीता—(कान लगा कर) यह कौन सजल मेघ की गर्जना के समान गम्भीर स्वर-विशेष से मुझ दुखिनी के शरीर को रोमांचित कर रहा है? देखती हूँ, यह कौन है। अथवा ठीक—

नावनाहयति मे शरीरं परपुरुषशब्दो रोमाञ्चग्रहणेन । सुव्यक्तं
णावणाहयदि मे सरीरं परपुरससद्दो रोमंचग्गहणेण । सुव्वत्तं
सोऽत्र निरनुक्रोशः सम्प्राप्तः । तन्निर्वर्णयामि । अथवा तथा
सो एत्थ णिरणुकोसो संपत्तो । त णिव्वण्णइस्सं । अहवा तह
पराङ्मुखे जने एवमभिमुखीभवामीति यत्सत्यमात्मनोऽप्यहं
परंमुहे जणे एव्व अहिमुही होमित्ति जं सच्चं अत्ताणोवि अहं
लज्जितास्मि । तन्न प्रेक्षिष्ये । (*पराङ्मुखी भूत्वा*) कथं न
लज्जिदम्हि । ता ण पेक्खिस्सं । कहं ण
प्रभवाम्यात्मनः, आवर्ज्यते मे बलात्कारेण तत्रैव दृष्टिः ।
प्पहवामि अत्ताणअस्स, आवंजिअदि मे बलक्कारेण तहिं एव्व दिट्ठी ।
किमपरं करोमि आत्मनो राजपराधीनताया नियोगः ।
किं अवरं करेमि अत्ताणअस्स राअपराहीणदाए णिओओ
(*निर्वर्णयति*) अहो दृष्ट इति परितोषः, चिरप्रवास इति मन्युः
अहो दिट्ठोत्ति परिदासो, चिरप्पवासोत्ति मंणू,

अवनाहयतिअव + √नह(बान्धना) + णिच्, लट्, प्र० ए० । निरनुक्रोशः-निर्गतः अनुक्रोशः यस्मात् सः (बहुव्री०) । सम्प्राप्तः—सम् + प्र + √आप् + क्त । निर्वर्णयामि—निर् + √वर्ण, लट्, उ० ए० । प्रभवाम्यात्मनः—प्रभवामि + आत्मनः, प्र + √भू के प्रयोग मे अधिकार अर्थ में आत्मन् शब्द से षष्ठी विभक्ति का प्रयोग । आवर्जयते—आ + √वृज् कर्मवाच्य, लट्, प्र० ए० । चिरप्रयास.—प्रवासः च (कर्मधारय) । चिरपरिचितः—चिरं परिचितः (सुप्सुपा) । दर्शनीयः—√दृश + अनीयर् ।

ठीक जाने बिना अनुचित स्थान [अपरिचित व्यक्ति] पर दृष्टि डालना मेरे लिए उचित नहीं । अथवा इसमें जानना ही क्या है ? पराए मनुष्य का शब्द मेरे शरीर को रोमांचित

परित्याम इत्युद्वेगः, निरनुक्रोश इत्यभिमानः, चिरपरिचित
परिक्खामोत्ति उव्वेओ, णिरणुकोसोत्ति अहिमाणो चिरपरिचिदोत्ति।
इत्यनुरागः, दर्शनीय इत्युत्कण्ठा, स्वामीति बहुमानः, कुशल-
अणुराओ दस्सणीओत्ति उक्कण्ठा, सामित्ति बहुमाणो, कुसल
वयोस्तात इति कुटुम्बिनीसद्भावः, अपराधं प्रवेशिताऽस्मीति लज्जा,
वाणं तादोत्ति कुडुंबिणीसब्भावो, अवराहं पविसिदंहित्ति लज्जा,
न जानामि आर्यपुत्रदर्शनेन कीदृशीमवस्थामनुभवामीति।
ण जाणामि अंअउत्तदंसणेण कीदिसं अवत्थं अणुभवामित्ति।

नहीं कर सकता। निश्चय ही वह निर्दयी यहाँ आया है। तो (ज़रा) देखती हूँ। अथवा (जो) मैं ऐसे विमुख व्यक्ति के प्रति इतनी झुकी हुई हूं, सो सच पूछो तो अपने आप से भी लज्जित हो रही हूँ। अतः (मैं) न उसे देखूँगी। (मुख मोड़ कर) मैं अपने आप को रोक क्यों नहीं पा रही, बल पूर्वक मेरी दृष्टि उधर ही खिंची जा रही है। तो क्या करूँ, राजा के अधीन होने से मुझे उसका आदेश मान्य है (कि उस के सामने न आऊँ)। (देखती है) (इसे) देख लिया है, सदा के लिए निकाल दी गई हूं इस कारण क्रोध है, अतिक्षीण हो गया है इस कारण व्याकुल हूं; निर्दय है, इस कारण अभि-मान है, चिर से परिचित [अपना] है इस कारण अनुराग है, दर्शनीय है इस कारण उत्सुक हूँ मेरा स्वामी है इस कारण (उसके प्रति मेरा) आदर है, कुश

ल०—किमर्थमार्यो मामकस्मादेवामन्त्र्य वाष्पायमाननयनस्तूष्णी-मधामुखः संवृत्तः ?

रा०—निःसम्पातविविक्तमिदमरण्यं तटरुहतरुच्छायासमाकीर्ण-रमणीयसैकतां प्रसन्नसलिलवाहिनीं समुद्रगामिनीञ्चावलोकयन् संस्मृत्य दण्डकावनवासमेवं वैक्लव्यमनुप्राप्तोऽस्मि ।

व्याकरण—आमन्त्र्य—आ+√मन्त्र् णिच्+ल्यप् । वाष्पायमाण—वाष्प+क्यङ् । वाष्पमुद्वमति इति वाष्पायते । अधोमुख;—अधः (स्थितं) मुखं यस्य सः (बहुव्री०) । संवृत्तः—सम्+√वृत्+क्त, प्र० ए० ।

निःसम्पातविविक्तम्—निःसम्पात च तद् विविक्तं च कर्मधारय । सञ्चारो यस्मात् तत् (बहुव्री०) विविक्तम्—वि+√विच् (पृथक् करना)+क्त, प्र० ए० । निगतः सम्पातः तटरुहतरुच्छायासमाकीर्णरमणीयसैकताम्—तटरूहाणां तरूणां छायया समाकीर्णम् रमणीयं सैकतं (तटम्) यस्याः ताम् (बहुव्री०) यहाँ 'तटरुहतरुच्छाय' 'छाया बाहुल्ये' इस सूत्र से छायान्त-तत्पुरुष के नपुंसक लिङ्ग होने पर – ऐसा व्याकरणानुसारी पाठ होना चाहिए था । समाकीर्णन्—सम्+आ+√कृ (बिखरना)+क्त, प्र० ए० । अवलोकयन्—अव+√लोक् (देखना) चुरादि०+शतृ, प्र० ए० । संस्मृत्य—सम्+√स्मृ+ल्यप् ।

तथा लव का पिता है इस कारण (मुझ में) '(पत्नी-पुत्रवती) कुटुम्बिनी [गृहिणी] हूँ' यह भाव जागृत हो उठा है, अप-राधिन बना दी गई हूं, इस कारण लज्जित हूं, न जाने आर्य-पुत्र के दर्शन करने से कैसी (विचित्र) दशा का अनुभव कर रही हूँ ।

लक्ष्मण—मुझे अकस्मात् बुला कर, नेत्रों से आँसू बहाते हुए आर्य चुपचाप (तथा) मुख नीचा किए हुए क्यों बैठे हैं ?

राम—इस (जन संचार शून्य एकान्त वन को तथा तट स्थित वृक्षों की छाया से व्याप्त एवं रमणीय रेतीले किनारों वाली

सी०—आर्यपुत्र स्मरसि वनवासं न पुनर्वनवासिनं जनम् ।

अंअउत्त सुमरसि वणवासं ण उण वणवासिणं जणं ।

ल०—किं तत्र दुःखैकवासे वनवासे स्मर्त्तव्यमिति ।

रा०—वत्स लक्ष्मण ! किमेवं ब्रवीषि—दुःखैकवासे वनवासे स्मर्त्तव्यमिति । पश्य पश्य—

किसलयसुकुमारं पाणिमालम्ब्य देव्या
विविधरतिसखीभिः सङ्कथाभिर्दिनान्ते ।
चरणगमनवेगान्मन्थरस्य स्मरामि
स्नुतपयसि तटिन्याः सैकते चङ्क्रमस्य ॥ १२ ॥

व्याकरण दुःखैकवासे—दुःखस्य एकस्य वासः(वासस्थानम्)तस्मिन् । स्मर्तव्यम् —√स्मृ+तव्यत् ।

अन्वय (अहम् दिनांते देव्याः किसलय-सुकुमारं पाणिम् आलम्ब्य विविध रतिसखीभिः सङ्कथाभिः चरणगमनवेगात् स्नुतपयसि तटिन्याः सैकते मन्थरस्य चङ्क्रमस्य स्मरामि ॥१२॥

व्याकरण— दिनान्ते—दिनस्य अन्ते (ष० तत्पु०) । किसलयसुकुमारम् - किसलयमिव सुकुमारम् (कर्मधा०) । आलम्ब्य - आ+√लम्ब् (क्त्वा०

समुद्र की ओर जाती हुई निर्मल जल वाली नदी को देखने पर दण्डकारण्य के निवास को स्मरण करके (अति) व्याकुल हूँ ।

सीता—आर्य पुत्र ! वनवास को स्मरण करते हो, वनवासी व्यक्ति को नहीं ।

लक्ष्मण - वनवास दुःखों का ही घर है, इस में स्मरण करने योग्य क्या है ?

राम—प्रिय लक्ष्मण ! ऐसे क्यों कहते हो कि 'दुःखों के घर वनवास में स्मरण करने योग्य (क्या धरा है)' । देखो, देखो—

सी०—अयि निरनुक्रोश ! किमेतेन संलापस्थानेनाशरणं दुःखितं
अइ णिरणुक्कोस ! किं एदिणा संलावट्ठाणेण असरणं दुःखिदं
जनमधिकतरं बाधसे ।
जनं अहिअदरं बाधेसि ।

ल—आर्य, अलं शोकेन ।

रा० —कथं न शोचामि मन्दभाग्यः ? पश्य पश्य—

आ० लटकना)+ल्यप् । विविधरतिसखीभिः —विविधाः ताःरतयः च, विविध-रतयः, तासाम् सखीभिः (ष० तत्पु०) स्रुतपयसि—स्रुतं पयः यस्मात् तस्मिन् (बहुव्री०) ॥ १२॥

कठिन शब्दार्थ—दिनान्ते—सायंकाल। किसलय (नपुं)—कोंपल, पल्लव। पाणिम् (पुं)—हाथ को। आलम्ब्य—पकड़ कर। रति—आनन्द, प्रेम। सङ्कथा (स्त्री०)—वार्तालाप। स्रुतपयसि—निकले हुए जल वाले। तटिन्याः—नदी के। मंथर—धीरे धीरे, मंद मंद। चङ्क्रम (पुं०)—भ्रमण, चहल कदमी ॥१२॥

(मुझे) सायंकाल में देवी का पल्लव के समान कोमल हाथ पकड़कर अनेक प्रेमसम्बंधी बातें करते हुए, पैरों की गति (के दबाव) के कारण निकलते हुए जल वाली नदी के रेतीले तट पर धीरे धीरे चहल कदमी (करने) की याद आ रही है ॥१२॥

सीता—हे निर्दय ! इस प्रकार की बातों से असहाय तथा (आगे ही) दुःखित व्यक्ति को क्यों और पीड़ित करते हो ?

लक्ष्मण—आर्य, शोक मत करो ।

राम—(मैं) अभागा शोक कैसे न करूं ? देखो,

पूर्वं वनप्रवासः पश्चाल्लङ्का ततः प्रवासोऽयम् ।
आसाद्य मामधन्यं दुःखाद् दुःखं गता सीता ॥ १३ ॥

सी०—आर्यपुत्र ! निर्वासिताया असदृशम् ।
अंअउत्त ! णिव्वासिदाए असदिसं ।

रा०—हा ! जनकराजपुत्रि !

सी०—अल्पपुण्यभागिन्या वर्जनीय :!
अप्पपुण्णभाइणीए वज्जणीअ !

रा०—हा !वनवाससहायिनि !

सी०—अप्येतन्न साम्प्रतम् ।
अवि एदं ण संपदं ।

अन्वय—पूर्वं वन-प्रवासः पश्चात् लङ्का ततः अयं प्रवासः, माम् अधंयम् आसाद्य सीता दुखात् दुःखं गता ॥१३॥

व्याकरण—वनप्रवासः - वने प्रवासः (स० तत्पु०) । आसाद्य—आ + √सद् + णिच् + ल्यप् । गता — √गम् + क्त, प्र० ए० ॥१३॥

सीता को) पहले (मेरे साथ) वनवास फिर लंका निवास और (अब) यह प्रवास (भोगना पड़ा), मुझ अधन्य (अभागे) को पाकर सीता एक के बाद दूसरे दुःख को प्राप्त होती रही ॥१३॥

सीता—आर्य पुत्र ! (स्वयं) निर्वासिता के विषय में इस प्रकार शोक प्रकट करना जचता नहीं।

राम—हा ! जानकी !

सीता—स्वल्प पुण्यशालिनी (मुझ सीता) द्वारा त्याज्य !

राम—हा ! वनवास की साथिन ।

सीता—यह (वचन) भी युक्त नहीं ।

रा०—हा ! क गतासि ?

सी०—यत्र मन्दभाग्या गच्छति ।

जहिं मदभाआ गच्छदि ।

रा०—देहि मे प्रतिवचनम् ।

सी०—असम्भावनीये जने कीदृशं प्रतिवचनम् ?

असंभावणीए जणे कीदिसं पडिबअणं ?

(रामः शोकं नाटयति)

ल०—आर्य, ननु विज्ञापयामि—अलं शोकेनेति ।

रा०—कथं न शोचामि शोचनीयां वैदेहीम् ?

सी०—आर्यपुत्र ! मैवं भण—शोचनीया वैदेहीति । न खलु स जनः

अंअउत्त, मा एवं भण—सोअणीआ वैदेहित्ति । ण खु सो जणो

शोचनीयः, य एवं वल्लभेन शोच्यते ।

सोअणिज्जो जो एव्वं वल्लहेण सोईआद ।

व्याकरण—मैवम्—मा + एवम् । शोचनीया—√शुच् + अनीयर्, प्र० ए० । शोच्यते—√शुच्, कर्मवाच्य, लट्, प्र० ए० ।

राम—हा ! कहां चली गई हो ?

सीता जहां अभागिन जाती है ।

राम—मुझे उत्तर दो ।

सीता—जिसके पास जा नहीं सकती उसे उत्तर क्या दूं ?

(राम शोक का प्रदर्शन करता है)

लक्ष्मण—आर्य ! मैं प्रार्थना करता हूँ शोक मत करो ।

राम—शोचनीय सीता के विषय में कैसे शोक न करूं ?

सीता—आर्य पुत्र ! ऐसे मत कहो (कि) सीता शोचनीय है । वह स्त्री कदाचित् शोक करने योग्य नहीं होती जिसकी प्रियतम इतनी चिता करता है ।

रा०—वत्स लक्ष्मण ! किं शक्यते ज्ञातुं क वर्तत इति ?

सी०—दिवसावसानविनिवारितसमागमेव चक्रवाकी इहैव प्रवासे

दिअसाअवसाणविणिवारिदपिअसमाअमा विअ चक्कवाई इदो एव्व पवासे

वर्तते इति ।

ल०—न शक्यते क वर्त्तत इति ज्ञातुम् ।

रा०—उत्सादितं मया चिरकालाविच्छिन्नं रघुकुलम् ।

(*इति रोदिति*)

व्याकरण—शक्यते— √शक् (कर्मवाच्य), लट्, प्र० ए० । ज्ञातुम् — √ज्ञा + तुमुन् । दिवसावसानविनिवारितसमागमा — दिवसस्य अवसाने (ष० त०) विनिवारितः समागमः यस्या सा (बहुव्री०) । इहैव—इह + एव । उत्सादितम् —उद् + √सद् + णिच् + क्त, प्र० ए० । अविच्छिन्नम्— न + वि + √छिद् + क्त, प्र० ए० ।

राम—प्रिय लक्ष्मण ! क्या यह जाना जा सकता है कि वह कहां है ?

सीता—रात्रि को (अपने प्रियतम को मिलने से प्रतिषिद्ध चकवी की तरह यहीं प्रवास (के दिन बिता रही) है ।

लक्ष्मण—नहीं जाना जा सकता (कि) कहां है ।

राम—चिरकाल से चले आ रहे [अखण्डित] रघुकुल को मैंने नष्ट कर दिया है ।

(रोता है)

टिप्पणी—चक्रवाकी कवि समयानुसार चकवी रात्रि को अपने प्रियतम (साथी) से वियुक्त हो जाती है तथा सूर्योदय से पूर्व मिलन-आनन्द नहीं ले सकती । समीप रहने पर भी दैव वशात् दोनों एक दूसरे को मिल नहीं सकते । आतुर दशा में एक दूसरे को आवाजें लगाते रहते हैं ।

सी०—(*सशोकम्*) आर्तमात्रं सन्तपत्यार्यपुत्रः, किं करोमि। साहसतः
अदिमत्तं संतवदि अंअउत्तो, किं करेमि। साहसादो
स्तिमितदर्शनं प्रमार्जयाम्यश्रुसञ्चयम् (*पदमुत्क्षिप्य*) अथवा जन
तिमिददंसणं पमज्जामि अस्सुचअं। अहवा जण
प्रवादो रक्षितव्यः। आर्यपुत्रेण यावन्न प्रेक्ष्ये तावच्छोकावेग-
प्पवादो रोक्खदव्वो। अंअउत्तेण जाव न पेक्खामि दाव सोआवेअ-
बलात्कारिता न प्रभवाम्यात्मनः। मुनिजनसम्पातसमुचितो-
वलक्कारिदा ण प्पहवामि अप्पाणअस्स मुणिजणसंपदासमुइदो
ऽयमुद्देशः, अतो यदृच्छागतः कोऽपि मां प्रेक्षिष्यते, तदेतेन
एसो उद्देसो अदो जइच्छागदो को वि मं पेक्खिस्सदि ता एदिणा
लताजालप्रच्छन्नसुखसञ्चारेण मार्गेणाश्रमं गत्वा कुशलवौ
लदाजालपच्छण्णसुहसंचारेण मग्गेण अस्समं गदुअ कुसलवा
सम्भावयामि।
संभावइस्सं।

व्याकरण—स्तिमितदर्शनम् स्तिमिते दर्शने (नेत्रे) यन तम् (बहुव्री०)। अश्रुसंचयम्—अश्रूणां संचयम्। रक्षितव्यः—√रक्ष् + तव्यत् प्र० ए०। मुनिजनसम्पातसमुचितः—मुनिजनस्य सम्पातस्य उचितः (ष० तत्पु०) प्रेक्षिष्यते—प्र√ईक्ष्, लृट्, प्र०ए०। लताजालप्रच्छन्नसुखसंचारेण—लतानां जालेन प्रच्छन्न सुखः संचारः तेन। सम्भावयामि—सम् + √भ + णिच्, लट्, उ० ए०।

सीता—(शोक प्रकट करती हुई) आर्य पुत्र अत्यधिक दुःखी हो रहे हैं, क्या करूं। साहस करके दृष्टि मंद करने वाले आंसू पोंछती हूँ (पैर उठाकर) अथवा (मुझे) लोक निंदा की परवाह करनी चाहिए। आर्यपुत्र द्वारा देखे जाने से पूर्व (यहां से मुझे चले जाना चाहिए) क्योंकि शोक के आवेग से आक्रांत होने के

(*नाट्येनावलोकयन्ती निष्क्रान्ता*)

(*ततः प्रविशति ऋषिः*)

ऋ०—आदिष्टोऽस्मि भगवता वाल्मीकिना - वत्स बादरायण ! श्रुतं मया लक्ष्मणसहायो रामभद्रस्तपोवनमिदमनुप्राप्त इति । स कदाचिन्माध्याह्निककार्यसम्पादनव्यग्रानस्मान्मन्यमानो बहिरवस्थितो भवेत् । तस्मात्त्वमेनमुपक्रम्य परिसमाप्तमाध्याह्निककार्यं दर्शनमाकाङ्क्षमाणं मामावेदय—इति । तद्यावदहमपि भगवतो वाल्मीकेरादेशाद्राममेवान्वेषयामि ।

व्याकरण— मन्यमानः— √मन् (दिवादि०-जानना) + शानच्, प्र० ए० । अवस्थितः—अव + √स्था + क्त । उपक्रम्य—उप + √क्रम भ्वा + ल्यप् । आकाङ्क्षमाणम्—आ + √काङ्क्ष् (चाहना) + शानच् । आत्मनेपद का प्रयोग प्रामादिक है । आवेदय - आ + √विद् (जानना) अन्वेष्यामि—अनु + √इष् + दिवा०णिच्, लट् उ० ए० । यावत् के प्रयोग में यहां भविष्यकाल में लट् का प्रयोग होता है । यहां स्वार्थ में णिच् हुआ है । अन्वेष्यामि=अन्विष्यति ।

कारण मैं अपने आपको सम्भाल नहीं पा रही । यह मुनियों के आने जाने का स्थान है, अतः अकस्मात् आता हुआ (कोई मुनि) मुझे देख न ले, सो इस लतासमूह से आच्छादित (होने के कारण) आने जाने के लिए सुखदायी मार्ग द्वारा आश्रम में पहुंचकर कुश तथा लव की देख भाल करती हूं ।

(देखने का अभिनय करती हुई)

(ऋषि का प्रयोग)

ऋषि—भगवान् वाल्मीकि ने (मुझे) आज्ञा दी है—"वत्स

(*परिक्रामति*)

ल०—(*विलोक्य ससम्भ्रमम्*) आर्य ! तपोधनोऽयमित एवाभिवर्त्तते ।

(*रामोऽश्रूणि प्रमृज्य कृतधैर्यः स्थितः*)

ऋ०—(*निर्वर्ण्य*) अये ! लतागुल्मप्रच्छायेऽस्मिन् पुरुषयुगलमिव । अपि नाम लक्ष्मणसहायो रामो भवेत् । (*परिचिन्त्य*) कस्तत्र सन्देह :—

मन्दं वाति समीरणो न पुरुषा भासो निदाघार्चिषो
न त्रस्यन्ति चरन्त्यशङ्कमधुना मृग्योऽपि सिंहैः सह ।

(ख) प्रमृज्य—प्र + √मृज् + अदा० + ल्यप् । कृतधैर्यः—कृतं धैर्यंयेन सः (बहुव्री०) । तपोधनः तपः एव धनं यस्य सः (बहुव्री०) परिचिन्त्य परि + √चिन्त् + णिच् ल्यप् ।

बादरायण ! मैंने सुना है कि श्री राम लक्ष्मण के साथ इस तपोवन में आए हैं । वह सम्भवतः, हमें मध्याह्नकालीन नित्य-कर्म करने में लगे हुए समझ कर बाहर ही रुके हुए हैं । अतः तुम उनके पास जाकर (उन्हें) सूचित करो कि मैं ने मध्याह्न-कालीन अनुष्ठान समाप्त कर लिया है (तथा आपके) दर्शनों का अभिलाषी हूँ । सो में भगवान् वाल्मीकि की आज्ञा अनुसार (श्री) राम को ही ढूँढता हूं ।

(घूमता है)

लक्ष्मण—(देख कर-घबराहट के साथ) यह तपस्वी इधर ही आ रहे हैं

(राम आंसू पोंछ कर धैर्य धारण कर बैठ जाता है)

ऋषी—(देख कर) अरे ! इस लता समूह के कारण घनी छाया वाले इस स्थान में दो पुरुष भासते है । शायद लक्ष्मण के साथ राम ही हों । (सोच कर) इस में सन्देह ही क्या है—

मध्याह्नेऽपि न याति गुल्मनिकटं छाया तदध्यासिता
व्यक्तं सोऽयमुपागतो वनमिदं रामाभिधानो हरिः ॥ १४ ॥

न केवलमतिक्रान्तमानुषेण प्रभावेण, आकारेणापि शक्यत एव निश्चेतुम् । (*निर्वर्ण्य*)

अन्वय—समीरणः मन्दं वाति, निदाघ-अर्चिषः भासः परुषः न, अधुना मृग्यः न त्रस्यन्ति, सिंहैः अपि सह अशङ्कं चरन्ति । तद्-अध्यासिता छाया मध्याह्ने अपि गुल्म-निकटं न याति, सुव्यक्तम् अयं सः राम-अभिधान; हरिः इदं वनम् उपागतः ॥ १४ ॥

व्याकरण—वाति—√वा अदा० (बहना-चलना), लट्, प्र० ए० । निदार्घार्चिषः—षष्ठी एक० । भासः — (सूर्य की) किरणें, भास्, स्त्री० प्र० ब० । त्रस्यन्ति —√त्रस्, दिवा० लट् प्र० ब० । तदध्यासिता—तेन अध्यासिता, अधि + √आस् + क्त + आ (स्त्रीप्रत्यय) । उपागतः—उप + आ √गम् + क्त, प्र० ब० ॥ २४ ॥

अतिक्रान्तमानुषेण — अतिक्रान्ताः मानुषाः येन सः तेन

वायु धीरे धीरे बह रही है, सूर्य की किरणें तीक्ष्ण नहीं, अब हरिणियां उतरती नहीं – सिंहों के साथ भी निश्शङ्क विचर रही हैं। उस [राम] के द्वारा सेवित छाया दोपहर में भी झुरमुट के निकट नहीं जा रही, निश्चय ही यह वह (प्रसिद्ध) राम नामक विष्णु [विष्णु का अवतार राम] इस वन में आया है ॥१४॥

केवल अतिमानुषी प्रभाव से ही नहीं, आकार से भी निश्चय किया जा सकता है। (देख कर)

व्यायामकठिनः प्रांशुः कर्णान्तायतलोचनः ।
व्यूढोरस्को महाबाहुर्व्यक्तं दशरथात्मजः ॥ १५ ॥

तदेनमुपगम्य यथावस्थितमावेदयामि । (उपागम्य) राजन् , स्वस्ति ।

रा०—अभिवादये ।

ऋ०—विजयी भव ।

रा०—किमागमनप्रयोजनमार्यस्य ?

(बहुव्री०) । शक्यते—√शक् (कर्मवाच्य), लट् प्र० ए० । निश्चेतुम्—निस्+√चि स्वा० (चुनना)+तुमुन् ।

अन्वय—व्यायामकठिनः, प्रांशु, कर्णान्तायतलोचनः, व्यूढोरस्कः, महाबाहुः (अयं) व्यक्तं दशरथ-आत्मजः (एव) ॥१५॥

व्याकरण—व्यायामकठिनः—व्यायामेन कठिनः (सुप्सुपा) । कर्णान्तायतलोचनः—कर्णान्तम् आयते लोचने यस्य सः (बहुव्री०) । व्यूढोरस्कः—व्यूढम् (विशालम्) उरः यस्य सः बहुव्री०) । महाबाहूः महान्तौ बाहू यस्य सः (बहुव्री०) । दशरथात्मजः - दशरथस्य आत्मजः (ष० तत्पु०) आत्मनो जातः इति आत्मजः । आत्मन् पुं०—शरीर ॥१५॥

व्यायाम (करने से) कठोर (शरीर वाला), लम्बे (कद का), कानों तक विस्तृत नेत्रों वाला, विशाल वक्ष स्थल वाला (तथा) दीर्घभुजाधारी (यह व्यक्ति) निश्चय ही दशरथ का पुत्र (राम) है ॥१५॥

तो इस के समीप जा कर निवेदन करता हूँ ! (समीप जाकर) राजन् ! कल्याण हो ।

राम—प्रणाम (श्रीमन्) !

ऋषि—(सदा) विजयी हो ।

राम—आपके आने का प्रयोजन ?

ऋ०—परिसमाप्तसकलकर्मा भगवान् वाल्मीकिर्महाराजस्यागमनमुद्वीक्षमाणस्तिष्ठति ।

रा०—(*विलोक्य*) अये ! अतिक्रान्तो मध्याह्नः । तथाहि—

तथाहि तरुमूलानि नीत्वा मध्यन्दिनातपम् ।
अध्वनीना इव छाया निर्गच्छन्ति शनैः शनैः ॥ १६ ॥

अपि च—

मध्याह्नार्कमयूखतापमधिकं तोयावगाहादयं
नीत्वा वारिकणार्द्रकर्णपवनैराह्लाद्यमानाननः ।

अन्वय—छायाः अध्वनीनाः इव तरुमूलानि प्रविश्य मध्यन्दिन-आतपं नीत्वा शनैः शनैः निर्गच्छन्ति ॥१६॥

व्याकरण—अध्वानम् अलंगामी इति, अध्वनीनः । अध्वनोयत्खौ । प्रविश्य—प्र + विश् + ल्यप् । मध्यन्दिनातपम्—मध्यन्दिनस्य आतपम् (ष० तत्पु०) ॥१६॥

कठिन शब्दार्थ—अध्वनीनाः—पथिक । मध्यन्दिन—दोपहर । आतप—धूप ।

अन्वय—अयं करी अधिकं मध्याह्न-अर्क-मयूख-तापं तोय-अवगाहात् नीत्वा, वारि-कण-आर्द्र- कर्ण-पवनैः आह्लाद्यमान- आननः करघातझाङ्कृति-सरित्-कल्लोल-चक्रः, वक्षः-प्रणुन्नैः जलैः आ-क्रान्तं कूलं अधुना मन्दं मन्दम् उपैति ॥ १७ ॥

ऋषि—सम्पूर्ण विधि समाप्त करके भगवान् वाल्मीकि महाराज के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

राम—(देख कर) अहो ! दोपहर बीत गई । क्योंकि—

छाया, पथिकों के समान वृक्षों की जड़ों में प्रवेश करके अर्थात् वृक्षों के नीचे विश्राम करके (तथा) दोपहर की धूप व्यतीत कर धीमे धीमे (बाहर) निकल रही है ॥१६॥

मन्दं मन्दमुपैति कूलमधुना वक्षः प्रणुन्नैर्जलै
राक्रान्तं करघातझाङ्कृतिसरित्कल्लोलचक्रः करी ॥ १७ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति तृतीयोऽङ्कः

व्याकरण—मध्याह्नार्कमयूखतापम्—मध्याह्नार्कस्य यूमखानां तापम् (ष० तत्पु०)। तोयावगाहात्—तोयस्य अवगाहात् (ष० तत्पु०)। वारिकणार्द्र-कर्णपवनैः—वारिकणैः आर्द्रैः कर्णयोः पवनैः। आह्लाद्यमान—आ+√ह्लद्+शानच्। आह्लाद्यमानानन :—आह्लाद्यमानम् आननं यस्यसः (बहुव्री०)। करघातकरस्य घातैः झाङ्कृतं सरितः कल्लोलानां चक्रे येन सः(बहुव्री०)। वक्षः प्रणुन्नैः—वक्षसा प्रवन्नैः प्रणुन्नैः—प्र+√नुद्+क्त, तृ० ब०। उपसर्गादस-मासेपिणोपदेशस्येति णत्वम्। (तृ० तत्पु०)। आक्रान्तम्—आ+√क्रम्+क्त। उपैति—उप+एति, √ए (जाना) अदा० लट,—प्र० इ० ॥ १७ ॥

कठीन शब्दार्थ—करी—हाथी। अर्क—सूर्य। मयूख किरण। कोह—तीय। आह्लाद्यमान—आह्लादित किया जाता हुआ। आनन—मुख। प्रणुन्नै:—प्रेरित, फेंके हुए। उपैति—आरहाहै ॥१७।

यह हाथी दोपहर के सूर्य की किरणों के प्रखर ताप को जल में अवगाहन करने से दूर कर, जल कणों से भीगी हुई कानों की हवासे मुख को सुख पहुंचाता हुआ (तथा सुंड के प्रहार से नदी की तरङ्गों में "झाँ झाँ" का शब्द उत्पन्न करता हुआ, छाती के (बल से) फेंके हुए जल से व्याप्त तट पर अब धीरे धीरे आ रहा है ॥ १७ ॥

तृतीय अंक समाप्त

———

अथ चतुर्थोऽङ्कः

प्रवेशकः

(*ततः प्रविशति तापसीद्वयम्*)

प्रथमा—हला यज्ञवेदि ! रामायणसङ्गीतकनिमित्तं वाल्मीकितपोवनं
हला जण्णवेदि ! रामायणसङ्गीतअणिमित्ता वंमीइतपोवणं
संप्राप्तया तिलोत्तमयाहमेवं— भणिता—अहं प्रभावनिर्मितेन
संपत्ताए तिलुत्तमाए अहं एव्वं भणिदा—अहं पिहावणिमिदेन
सीतारूपेण रामस्य दर्शनपथमवतीर्य रामः सीताया उपरि
सीदारूवेण रामस्स दंसणपहं ओअरिअ रामो सीदाए उवीर
सानुकम्पो नवेति ज्ञातु न्विच्छामि ! तत्त्वं राममन्वेषय
साणुकंपो ण वेत्ति जाणिदु णु इच्छामि ! ता पुमं रामं अण्णेसहि
—इति। तद्दर्शयतु प्रियसखी रामस्य विश्रमस्थानम् ।
त्ति। ता दंसेदु पियसही रामस्म विस्समत्थाणम् ।

व्याकरण—रामायणसङ्गीतकनिमित्तम्—रामायणसङ्गीतकम् (षष्ठी त०) तद् निमित्तं यस्मिन् तद् यथा तथा (बहुव्रीहि)। रामस्य अयनम्=रामायणम्। भणिता—√भण् भ्वा० (कहना)+क्त, प्र० ए०। प्रभावनिर्मितेन= प्रभावेण निर्मितं, तेन (तृ० तत्पु०)।

चतुर्थ अङ्क

प्रवेशक

(दो तपस्विनियों का प्रवेश)

प्रथमा—सखी यज्ञवेदि ! रामायण-संगीत के उद्देश्य से वाल्मीकि के तपोवन में आई हुई तिलोत्तमा ने मुझे यूँ कहा है— "मैं प्रभाव [दिव्यशक्ति] से निर्मित सीता के रूप में राम

यज्ञवेदिः— हला वेदवति ! तिलोत्तमया यदैष आलापः प्रवृत्तस्तदासन्न
हला वेदवदि ! तिलुत्तमाए जदा एसो आलाबो पवुत्तो तदा आसण्ण-

गुल्मलतागहनप्रच्छन्नस्थितेन रामवयस्येनार्यहसितेन
गुम्लदागहणपच्छण्णट्ठिदेण रामवयस्सेण अंअहसिएण

सर्वमाकर्णितम् ।
सव्वं आअण्णिदं ।

व्याकरण—दर्शनपथम्—दर्शनस्य पन्था तम् (ष० तत्पु०) अवतीर्य—**अव**+√तृ+ल्यप् । न्विच्छामि—नु+इच्छामि । दर्शयतु—दृश, लोट्, म०ए० । **विश्रमस्थानम्**—विश्रमस्य स्थानम् (ष० तत्पु०) । विश्राम शब्द अपाणिनीय हैं ।

यदैष—यदा+एष । प्रवृत्तः—प्र+√वृत्+क्त, प्र० एक० । आसन्न—आ+√सद्+क्त । प्रच्छन्न—प्र+√छद् चुरा०+क्त,+णिच् पक्ष में 'छादित' रूप भी होगा । 'छन्न' रूप 'वा दान्तशान्त—' इत्यादि सूत्र में निपातित किया गया है । प्रच्छन्नं यथा स्यात् तथा स्थितेन । स्थितेन—√स्था+क्त, तृ० ए० । आकर्णितम्—आ+√कर्ण् चुरादि०) णिच्+क्त ।

के सम्मुख जा कर जानना चाहती हूँ कि राम सीता पर सदय हैं कि नहीं । अतः तुम राम की खोज करो ।" सो प्रिय सखी (मुझे) राम का विश्राम स्थान बतलाओ ।

यज्ञवेदि—सखी वेदवती ! तिलोत्तमा के साथ (तुम्हारी) जो यह बात चीत हुई है वह निकटस्थ झुरमुटों तथा लताओं के घने प्रदेश में छिप कर खड़े राम के मित्र आर्य हसित ने सारी सुन ली है ।

वेदवती—अत्याहितं खल्वाचरितम् । यदि गृहीतसङ्केतस्य तस्या-
अच्छाइदं खु आअरिदं । जइ गहिदसकेअस्स तस्स
ग्रतस्तिलोत्तमा सीतायाश्चरितान्यनुवर्त्तिष्यत इति
अग्गदो तिलुत्तमा सीदाए चरिदाइं अणुवट्टिसदित्ति
ततो विपरीत उपहासो भवेत् । तदस्मात् प्रियसखीं
तदो विपरीदो उवहासो भवे । ता इमादो पिअसहिं
तिलोत्तमां निवारयामि ।
तिलुत्तमं णिवारेमि ।

य०—सखि वेदवति ! सीतेदानीं कुत्र ?
सहि वेदवदि ! सीदा दाणिं कहिं ?

वे०—शृणु, अद्य सप्तमे दिवसे संपातिताभिस्तपोवनवासिनीभिर्विज्ञा-
सुणाहि अज्ज सत्तमे दिवहे संपादिदाहि तपोवणवासिणीहि विण्ण
पितो भगवान् वाल्मीकिः—एषा नूनमाश्रमदीर्घिका पद्मापचया
विदो भअवं वंमीई — एसा णूणं अस्समदीहिआ पदुमापचया

व्याकरण—खल्वाचरितम्—खलु+आचरितम्, आ+√चर् भ्वा०+क्त, प्र० ए० । गृहीतङ्कतस्य—गृहीतः सङ्केतः येन तस्य (बहुव्री०) । अनुवर्तिष्यते—अनु+√वृत्, लट्, प्र० ए० । निवारयामि—नि+√वृ णिच्, लट्, उ० ए० ।

वेदवती—बहुत बुरा किया । यदि (तिलोत्तमा पूर्व ही) संकेत-प्राप्त उस (राम) के सम्मुख सीता का अनुकरण करेगी तो उलटे (उसी का) उपहास होगा । अतः प्रिय सखी तिलोत्तमा को रोकती हूँ ।

यज्ञवेदि—सखी वेदवती ! सीता इस समय कहाँ है ?

वेदवती—सुनो, आज से सात दिन पूर्व तपोवन निवासिनियों ने एकत्र हो कर भगवान् वाल्मीकि से निवेदन किया था (कि) इस

दिष्वात्मन उपभोगेष्विदानीं महाराजस्य सन्निधानेन पर
दिस अत्तणो उपभोएसु दाणिं महाराअस्स सण्णिहाणेण पर
पुरुषनयनपरिक्षिप्ता न शक्या स्त्रीजनेनावगाहितुम्—इति । तदा
पुरुसणअणपरिखित्ता ण सक्का इत्थिआजणेण ओगाहिदुं ति । तदा-
भगवता वाल्मीकिना निध्याननिश्चलनयनेन मुहूर्त्तं निध्याय भणि-
भअवदा वंमीइणा णिज्झाणणिच्चलणअणेण मुहुत्तं णिज्झाइअ भणि-
तम्—एतस्यां दीर्घिकायां वर्तमानःस्त्रीजनः पुरुषनयनाना-
दं—एदस्सिं दीच्चिहआए वट्टमाणो इत्थिआजणो पुरुसणअणाणं

व्याकरण—संपातिताभिः—सम्+√पत् णिच्+क्त, तृ० ब० । विज्ञा-पितः—वि+√ज्ञा+णिच् तुक्+क्त, प्र० ए० । महाराजस्य—महान् च असौ राजा तस्य (कर्मधा०)=महत्+राजस्: । कर्मधारय तथा बहुव्रीहि समास में 'महत्' के 'अत्' को 'आ' हो जाता है । तत्पुरुष समास के अन्त में 'राजन्' को 'राज' का आदेश होता है । परपुरुषनयनपरिक्षिप्ता—परे च ते पुरुषाः, तेषां पर पुरुषाणां नयनः परिक्षिप्ता (तृ० तत्पु०) । परिक्षिप्ता—परि+√क्षिप् तुदा०+क्त, प्र०ए० ।अवगाहितुम्—अव+√गाह भ्वा० आ०+तुमुन् । निध्याननिश्चल नयनेन—निध्यानेन निश्चले इति निध्याननिश्चले (सुप्सुपा), तथा भूते नयने यस्य तेन (बहुव्रीहि) । निध्याय—नि+√ध्यै भ्वा० (ध्यान करना)+ल्यप् । परिहरन्ती–परि+√हृ (भ्वा०)+शतृ, प्र० ए० । दीर्घिकातीरे—दीर्घिकायाः तीरे (ष० तत्पु०) संज्ञायां कन् ।

आश्रम की बावड़ी में, स्त्रियां कमल तोड़ने आदि सुखों के अनुभव के लिए अवगाहन नहीं कर सकतीं क्योंकि महाराज (राम) के समीप होने के कारण परपुरुषों की दृष्टियों से यह घिरी हुई है। तब भगवान् वाल्मीकि ने समाधि द्वारा स्थिर नेत्र हो मुहूर्त्त भर चिन्तन कर के कहा—"इस बावड़ी पर स्थित स्त्रियां पुरुषों के नयनों की

मगोचरो भविष्यति—इति । ततः प्रभृति सीता रामस्य दर्शनपथं
अगोअरो भविस्सदित्ति । ततप्पउदि सीदा रामस्स दंसणपहं
परिहरन्ती दीर्घिकातीरे सकलं दिवसमतिवाहयति ।
परिहरंती दीहिआतीरे सअलं दिवअं अदिवाहेदि ।

य०—किं जानीतः कुशलवौ रामस्यात्मनश्च सम्बन्धम् ?
किं जाणन्ति कुसलवा रामस्स अत्ताणो अ संबंधं ?

वे०—आत्मनो बालभावेन मुनिजनस्य च संसर्गेण मातरमपि नामतो
अत्ताणो बालभावेण मुणिजणस्स अ संसग्गेण मादरं वि णामदो
न जानीतः, किमुत दीर्घप्रवासविच्छिन्नं रामस्य वृत्तान्तम्
ण जाणन्ति, किं उण दीहप्पवासविच्छण्णं रामस्स उत्तन्तम् ।

व्याकरण—जानीतः—√ज्ञा, क्र्या० लट्, प्र० द्वि० । बालभावेन—बालानां भावः तेन (ष० तत्पु०) । दीर्घप्रवासविच्छिन्नम्—दीर्घेण प्रवासेन (कर्मधारय) विच्छिन्नम् (तृ० तत्पु०) । प्राविशत्—प्र+√विश्, तुदा० लङ्, प्र० ए० ।

अगोचर होगी ।" तब से लेकर सीता राम को दृष्टि से बचती हुई सम्पूर्ण दिवस बावड़ी के तट पर बिताती है ।

नोट—परपुरुष दर्शनं परिहरन्ती का 'परपुरुषाणाम् अदृश्या सती' यही अर्थ है ।

यज्ञवेदि—क्या कुश तथा लव राम के साथ अपने सम्बन्ध को जानते हैं ?

वेदवती—निज बालभाव [बाल्यावस्था] के कारण तथा मुनियों के बीच रहने से (वह) माता का नाम भी नहीं जानते । दीर्घ प्रवास के कारण व्यवहित राम का वृत्तांत तो दूर रहा ।

य०—किं जानासि रामोऽत्र तपोवनं प्राविशदिति ?

किं जाण्णासि रामो एत्थ तपोवणं पविसिदित्ति

वे०—कुतस्तस्यागमः ?

कुदो तस्स आओ ?

य०—गच्छ त्वं तिलोत्तमासकाशम्, अहं च सीतायाः पार्श्वपरि-
गच्छ तुमं तिलुत्तमाए सआसं, अहं अ सीदाए पस्सपरि-
वर्तिनी भवामि ।

वट्टिणी होमि ।

(*इति निष्क्रान्ते*)

इति प्रवेशकः

(*ततः प्रविशत्युत्तरीयकृतप्रावरणा सीता यज्ञवती* च)

य०—सखि वैदेहि, केन तवोपदिष्टमपूर्वमुत्तरीययुगलधारणम् ?

सहि वैदेहि, केण तुह उवदिट्ठं अपुव्वं उत्तरीअजुअलधारणं ?

व्याकरण—प्रवासविरुद्धम् प्रवासेन विरुद्धम् (तृ० तत्पु०) । शारद-चन्द्रकिरणराशिपरिपाण्डुरम् शारदः च असौ चन्द्रः च, तस्य शारद चन्द्रस्य किरणानां राशिः, स इव परिपाण्डुरम् (कर्मधा०) । शरदिभवः—शारदाः ।

यज्ञवेदि—क्या जानती हो, राम इस तपोवन में प्रवेश कर चुके हैं ?

वेदवती—उसका (यहां) आना कैसे (हुआ) ?

यज्ञवेदि – तुम तिलोत्तमा के पास जाओ, मैं सीता के साथ होती हूँ ।

(दोनों चली जाती हैं)

(दुपट्टा ओढ़े हुए सीता तथा यज्ञवेदि का प्रवेश)

यज्ञवेदि—सखी सीते ! इस अपूर्व दुपट्टों के जोड़े के ओढ़ने का ढंग तुझे किस ने सिखाया ?

सीता—सतत बहती हुई (तथा) तरंगों से उठती हुई अतिशीतल बावड़ी की हवा ने ।

सी०—अत्यन्तशीतलेन तरङ्गग्राहिणा दीर्घेण दीर्घिकामारुतेन ।
अच्चन्तसीअलेण तरङ्गग्गाहिणा दीहेण दाहिआमारुदेण ।

य०—सखि, प्रवासविरुद्धं खल्वेतच्छारदचन्द्रकिरणराशिपरि-
सहि, पवासविरुद्धं खु एदं सारदचंदकिरणरासिपरि-
पाण्डुरं सुरभिबहुलामोदसमारब्धमधुकरकुलसङ्गीतमनोहर-
पडुरं सरहिबहुलामोदसमारद्धमहुअरउलसंगीदमणुहरं
मेतत्प्रावरणम् ।
एदं पावरणं ।

सी०—सखि, यदाहं महाराजशासनेन वनप्रवासे परित्यक्ता चित्रकूटं
सहि, जदा अहं महाराअसासणेण वणप्पवासे परिच्चत्ता चित्तऊटं

समारब्ध—सम् + आ + √रभ् (भ्वा० आ०) + क्त, प्र० ए० । सुरभिबहुला०—सुरभिणा बहुलेन आमोदेन समारब्धं मधुकरकुलस्य यत् सङ्गीतम् तेन मनोहरम् मधुकरेति जनयति इति मधुकरः । मनो हरतीति—मनोहरम् ।

कठिन शब्दार्थ—शरदः—शरत् काल के। परिपाण्डुर—श्वेत। सुरभि—सुगन्धि। आमोद—हर्ष। मधुकर—भ्रमर। प्रावरण—दुपट्टा शॉल, (Shawl)। वासित—सुगन्धित। दिव्य—स्वर्गीय, अलौकिक। उत्तरीयक—दुपट्टा।

यज्ञवेदि—सखी ! चन्द्रमा के रश्मि-समूह के समान श्वेत (तथा) तृप्ति कारक, अत्यधिक आकर्षक सुगन्ध के कारण भ्रमरों की गुञ्जार से मनोहर यह दोपट्टा (ओढ़ना) प्रवास के विरुद्ध है अर्थात् विरहावस्था में ऐसा वस्त्र धारण न करना चाहिए।

परित्यज्य दक्षिणापथं प्रस्थिता तदा चिरनिवाससमुत्पन्नसखी-
परिच्चइअ दक्खिणपहं पत्थिदा तदा चिरणिवाससमुप्पण्णसहि-
स्नेहया चिन्ताकुलया वनदेवतया मायावत्या स्मरणनिमित्तं चन्द्र
सिणेहाए चिन्ताउलाए वणदेवदाए मायावईए सुमरणणिमित्तं चंद-
धवलं वासितसुगन्धमात्मनो दिव्यमुत्तरीयकं मम प्रणीतम्,
धवलं वासिदसुअंधं अत्तणो दिव्वं उत्तरीअअं मम पणीदं ।
तदार्यपुत्रस्य ममापि हस्तेऽत्यन्तसखीभूतं चिरदुःखसहायमित्य
तं अंअउत्तस्स मम वि हत्थे अच्चन्तसहीभूदं चिरदुःखसहायंत्ति एत्थ
त्रात्मना सादरं धारितम् । (*इति रोदिति*)
अत्ताइं साअरं धारिदं ।

महाराजशासनेन—महाराजस्य शासनेन (ष० तत्पु०)। प्रस्थिता—प्र √स्था+क्त, प्र. ए.। चिरनिवाससमुत्पन्नसखीस्नेहतया—चिरनिवासेन समुत्पन्नः इति चिरनिवाससमुत्पन्नः सख्यां स्नेहः इति सखी स्नेहः, चिरनिवाससमूत्पन्नः सखीस्नेहो यस्याः तया (बहुव्री०)। चिन्ताकुलया - चिन्तया आकुला तया स्मरणनिमितम्— स्मरणं निमित्तं यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा (ब्रहुव्रीहि)। चन्द्रधवलम्— चन्द्र इव धवलम् (कर्मधा०)। वासित्—√वास् (चुरा)+णिच क्त । प्रणीतम्—प्र+√नी+क्त, प्र. ए. । धारितम्—धृ+णिच्+क्त, प्र. ए. ।

सीता—प्रिय सखी ! जब मैं महाराज (दशरथ) की आज्ञा से वनवास पाकर चित्रकूट छोड़ दक्षिण की ओर चली थी तब चिरकाल तक इकट्ठे रहने के कारण उत्पन्न हुए सखी के से स्नेह वाली (तथा मेरे प्रति) सचिन्त मायावती नाम की वनदेवता ने स्मृति चिह्न के रूप में अपना चन्द्र के समान श्वेत (तथा) सुगन्धिमय (यह) अलौकिक शॉल मुझे भेंट किया था। यह आर्य पुत्र तथा मेरे हाथ में पूर्ण

य०—सखि, मा रोदीः, नह्येष तपोवनवासो वनवास इति प्रोच्यते ।
सहि, मा रोदी, णहि एसो तपोवणवासो वणवासोत्ति पुच्चिअदि
सी०—कथं न रोदिष्यामि ? कथमेतत्तपोवनमागत आर्यपुत्र इति
कहं ण रोइस्सं ? कहं एदं तपोवणं आअदो अंअउत्त।त्ति
द्विगुण................धारयामि । एकाकिनी दीर्घनिःश्वासै
दिउणं विद्धारं आस सअणं पत्थरेमि । एआइणी दीहणसासेहिं
रात्रिन्दिवमतिवाहयामि । तद्बलवत् खलु आवेगकारणम् ।
रत्तिदिवं अदिवाहेमि । ता बलियं खु आवेअकारणं ।
य०—आलक्षणीयानि एतानि कदनानि । त्वमेतस्मिन् दीर्घिका-
आलक्खणीआइ एदाणि कदणाणि । तुमं एतस्सिं दीहिआ-

व्याकरण—विहङ्गममिथुनविभ्रमम्—मिथुनम्, तस्य विभ्रम्, तया । विहायस गच्छति— इति विहङ्गमः (पक्षी) ।

मित्र रूप रहा है । [राम और सीता के हाथ सदा उसे साथ रखने के अभ्यस्त हो गए थे] (तथा यह) चिरकाल से (मेरे) दुःखों में साथी है अतः इस समय आदरपूर्वक धारण किये हूं । (रोती है)

यज्ञवेदि—सखी, रोओ मत, इस तपोवन निवास को वनवास नहीं कहा जाता ।

सीता—रोऊँ न तो क्या करूँ ? आर्य पुत्र इस तपोवन में आए हैं (अतः) यह द्विगुणित (सन्ताप) कैसे सहन करूँ ? लम्बी आहें भरती हुई अकेली ही दिन रात बिताती हूँ । सो मेरे उद्वेग का कारण बड़ा प्रबल है ।

यज्ञवेदि—ये यातनाएं अव्याख्येय [अचिन्तनीय] हैं । [अथवा यह दुःख मनुष्य को भोगने ही पड़ते हैं] । तुम इस बावड़ी के

तीरे विहङ्गममिथुनविभ्रममवलोकयन्त्यात्मानं विनोदय,
तीरविहंगममिहुणविभमं अवलोअअन्ती अत्ताणं विणोदेहि।
अहमप्यात्मनो नियोगमनुतिष्ठामि। (*परिक्रामति*)
अहं मि अत्तणो णिओअं अणुचिट्ठामि।

सी०—(*दीर्घिकामालोक्य*) अतिधन्यं खल्वेतद्राजहंसमिथुनमेवमनासादितविरहं समागमसुखमनुभवतीति नास्ति दम्पत्योर्मम
अइधण्णं खु एदं राअहंसमिहुणं एवं अणासादिअविरहं समाअमसुहं अणुहोदित्ति णत्थि दंपईणं मम

व्याकरण—राजहंसमिथुनम्—राजहंसयोः मिथुनम् (ष० तत्पु०)। हंसानां राजा—हंसराजः राजहंसः इति वा। अनासादितविरहम्—आसादितः विरहः येन तत्, (बहुव्रीहि) तन्न भवतीति तत् (नञ् तत्पुरुष)। उपदेशनिपुणः—उपदेशे निपुणः (स० तत्पु०)। उपाध्यायः - उपेत्य अधीयते अस्मात् इत्युपाध्यायः। अन्योन्य०—अन्योन्यस्य हृदयस्य ग्रहणे समर्थानि यानि ललितानि (विलसितानि—चेष्टितानि) तैः मधुराः (मनोहराः)। चाटुप्रयोगम्—चाटोः चाटुनः वा प्रयोगः तम्। प्रस्थापयन्ति—प्र+√स्था+पुक्+णिच्, लट्, प्र० ब०।

तट पर पक्षियों के जोड़ों की क्रीड़ा देख कर अपना मनोविनोद करो, मैं भी अपना कार्य करती हूं। (घूमती है)

सीता—(बावड़ी की ओर देखकर) राजहंसों का यह युगल धन्य है जो कि (कभी) वियुक्त नहीं हुआ २ इस प्रकार संयोग-सुख का अनुभव कर रहा है (पर) दम्पतियों के लिए मेरे वियोग के समान उपदेश देने में कुशल आचार्य (कोई) नहीं, क्योंकि एक दूसरे का चित्त आकर्षित करने में समर्थ चेष्टाओं में युक्त अत एव मनोरम पक्षी भी अनुनय-विनयपूर्ण चिकनी चुपड़ी बातें करते हैं।

विरहसम उपदेशनिपुण उपाध्यायः, येन पक्षिणोपि अन्यो-
विरहसमो उपदेसणिउणो उपज्झायो, जेण पक्खिणो वि अण्णो-
न्यहृदयग्रहणसमर्थललितमधुराश्चाटुप्रयोगं प्रस्थापयन्ति ।
ण्णहिअअग्गहणसमत्थललिअमहुरा चाडुप्पओअं पत्थावयन्ति ।

य०—(*निर्वर्ण्य*) यथैष ससम्भ्रमतत्क्षणविमुक्तासनः परिग्रहांसदेश-
जह एसो ससंभमतक्कणविमुत्तासणो परिग्गहअंसदेस-
समुत्क्षिप्तवल्कल..................विस्मयोत्फुल्ललोचनः सर्व एव
समुक्खित्तवक्कलो सुअसंअमणपाउधो विंमयोफुल्ललोअणो सव्वो जेव
............मुनिजन एकमुखकोपसृतस्तथा जानामि सम्प्राप्तेन
(एव्व)मुणिअणो एअमुखओ अपसरिदो तह जाणामि संपत्तेण
महाराजेन भवितव्यमिति ।
महाराएण होदंवंदि ।

व्याकरण—ससंभ्रमतत्क्षणविमुक्तासनः— ससंभ्रमं तत्क्षणं विमुक्तम् आसनं येन सः (बहुव्री०) । परिग्रहांसदेशसमुत्क्षिप्तवल्कलः—परिग्रहस्य अंसदेशे समुत्क्षिप्तानि वल्कलानि येन सः (बहुव्री) । विस्मयोत्फुल्ललोचनः—विस्मयेन उत्फुल्ले लोचने यस्यः सः (बहुव्री०) । एकमुखकः— एकस्मिन् कार्ये दिशि वा मुखं यस्य सः (बहुव्री०) । अपसृतः—अप + √सृ + क्त, प्र० ए० ।

यज्ञवेदि—(देख कर) मुनिवृन्द एक दम आसन छोड़ कर, परिजनों [शिष्यादि अथवा स्त्रियों] के कन्धों पर वल्कल रखे हुए, प्रसन्नता पूर्वक [आश्चर्य में] विकसित नेत्रों से एक ही ओर जा रहे हैं, इससे मेरा अनुमान है कि महाराज (राम) आ गए होंगे ।

इति निष्क्रान्ता

(ततः प्रविशति रामः सचिन्तः कण्वश्च)

कण्वः—आदिष्टोऽस्मि भगवता वाल्मीकिना — कण्व, दाशरथिं नैमिशारण्यरामणीयकदर्शनेन विनोदय—इति। एष पुनश्चिन्तापराधीनत्वात्पुरोगामिनमपि मां नावगच्छति। तथाहि—

स्खलति मुहुरयं समेऽपि मार्गे
निभृतगतिः प्रविलम्बते विदूरात्।
अवनतवदनो नितान्तरम्ये
न च नयने निदधाति काननेऽस्मिन् ॥ १ ॥

व्याकरण—रामणीयकम्—रमणीयस्य भावः, वुञ्—अच्। चिन्तापराधीनत्वात्—परस्मिन् अर्थे अधि इति पराधीनः, चिन्तायां परस्मिन् अर्थेऽधि इति चिन्तापराधीनः। चिन्तया पराधीन इत्यादि विग्रह असंगत तथा व्यर्थ होगा।

अन्वय—समे अपि मार्गे अयं मुहुः स्खलति, निभृतगतिः विदूरात् प्रविलम्बते। अवनतवदनः च नितान्तरम्ये अपि अस्मिन् कानने नयने न निदधाति ॥ १ ॥

व्याकरण—निभृतगतिः—निभृता गतिः यस्य (बहु०)। विदूरात्—'दूरान्तिकार्थेभ्योद्वितीया च, इस सूत्र से पञ्चमी हुई। पक्ष में द्वितीया भी होगी—विदूरम् ॥ १ ॥

(बाहर चली जाती है)

कण्व—भगवान् वाल्मीकि ने (मुझे) आज्ञा दी है, "कण्व, नैमिश वन की शोभा दिखला कर राम का मनोविनोद करो।" और यह चिन्ता-मग्न होने के कारण (अपने) आगे २ जाते हुए भी मुझ को पहचान नहीं रहा।

क्योंकि—

(*उपसृत्य*) भो राजन् !

रा०—हन्त, वयस्य, तापसविरुद्धमामन्त्रणम् । अथ वा वयसः परिणामेनेदमपराद्धं न भगवता ।

अहं रामस्तवाभूवं त्वं मे कण्वश्च शैशवे ।
यूयमार्या वयञ्चाद्य राजानो वयसा कृताः ॥ २ ॥

क०—अहो धीरोदात्तो ऽयमुपालम्भः ।

रा०—उच्यतां यद्विवक्षितम् ।

अन्वय—शैशवे अहं तव रामः अभूवं त्वं च मे कण्वः (अभूः). अद्य वयसा यूयं आर्याः वयं च राजानः कृताः ॥ २ ॥

व्याकरण—शैशवे - शिशोः भावः, तस्मिन् । शिशु+अण् । अभूवम्—√भू,लुङ, उ० ए० । वयसा—वयस्, तृ० ए० । आर्याः-कृताः—√कृ+क्त, प्र० ए० ॥ १ ॥

समतल (मार्ग) में भी यह बार बार ठोकर खाता है, (तथा) मन्दगति के कारण पीछे रह जाता है। मुख नीचे किए हुए है तथा इस अति रमणीक वन पर भी दृष्टि नहीं डालता ॥ १ ॥

(समीप जाकर) हे राजन् !

राम—मित्र ! तपस्वियों के मुख से यह सम्बोधन नहीं जचता । अथवा इस में अवस्था-भेद का दोष है, आपका नहीं ।
बचपन में मैं तुम्हारे लिए राम था और तुम मेरे लिए कण्व। (परन्तु) आज अवस्था-भेद ने तुम्हें 'आर्य' और मुझे 'राजा' बना दिया है ॥ २ ॥

कण्व—अहो, कैसा धीर और हृदयग्राही उलाहना है ।

राम—जो कहना चाहते हो, कहो ।

क०—*सुरभिकुसुमगन्धैर्वासिताशामुखानां ।*
फलभरनमितानां पादपानां सहस्त्रैः ।
विरचितपरिवेषश्यामलोपान्तरेखो
रमयति हृदयं ते हन्त कच्चिद्वनान्तः ॥ ३ ॥

रा०—बहुमाननिरन्तरीकृतमानसं मां तपोवनमिदं रमयति न रमयतीति वचनावकाश एव नास्ति । पश्य—
दावाग्निं क्रतुहोमपावकधिया यूपास्थया पादपान्
अव्यक्तं मुनिगीतसामगतया भक्त्या शकुन्तस्वनम् ।

अन्वय— हन्त ! सुरभि-कुसुम-गन्धैः वासित-आशा-मुखानां फल-भर-नमितानां पादपानां सहस्त्रैः विरचित-परिवेष-श्यामल-उपान्त-रेखः वनान्तः, ते हृदयं रमयति कच्चित् ॥३॥

व्याकरण—सुरभि कुसुमगन्धैः—सुरभीणि च तानि कुसुमानि तेषां गन्धः । वासिताशामुखानाम्—वासितानि आशानां मुखानि (ष० तत्पु०) यैः तेषाम् (बहुव्री०) फलभरनमितानाम्—फलानांभरेण ष० तत्पु०) नमितानाम् (तृ० तत्पु०) । विरचितपरिवेषश्या०—विरचितेन परिवेषेण श्यामला उपान्तरेखा यस्य सः (बहुव्री०) उपान्तरेखा —- उपान्ते रेखा : इति ॥३॥

कठिन शब्दार्थ—दावाग्निम्—वन की आग को । दाव—वन । क्रतु—यज्ञ । पावक—अग्नि । यूप—यज्ञ स्तम्भ । शाकुन्त—पक्षी । स्वनम्—ध्वनि

मैं समझता हूँ कि सुगन्धित पुष्पों की गन्ध से (चारों) दिशाओं को सुगन्धित करने वाले (तथा) फलों के भार से झुके हुए सहस्त्रों वृक्षों से बने हुए घेरे से श्यामल समीपवर्ती वृक्ष पंक्ति वाला (यह) वन प्रदेश तुम्हारे मन को आनन्दित कर रहा है ॥३॥

राम—मेरा मन तपोवन के प्रति सम्मान से भरा है, सो यह मुझे आनन्दित कर रहा है कि नहीं, यह प्रश्न ही नहीं उठता । देखो—

वन्यांस्तापसगौरवेण हरिणान् सम्भावयन्नैमिशे
सोहं यन्त्रणया कथं कथमपि न्यस्यामि पादौ भुवि ॥ ४ ॥

क०—युक्तरूपोऽयं धर्मैकपरायणस्य महाराजस्य सकलजगदभ्युदय-

अन्वय—नैमिशे दावाग्निं क्रतु-होम-पावक-धिया, पादपान् यूप-आस्थया, अव्यक्तं शकुन्त-स्वनं मुनि गीत-सामगतया भक्त्या, वन्यान् हरिणान् तापस गौरवेण सम्भावयन् सः अहं यन्त्रणया कथं कथम् अपि पादौ भुवि न्यस्यामि ॥४॥

व्याकरण—क्रतुहोमपावकधिया—क्रतौ होमः क्रतुहोमः, तस्य यः पावकः तस्य धिया (ष० तत्पु०)। पुनाति इतिपावकः। पादपाः—पादैः मूलः पिवन्ति इति, क प्रत्यय। यूपास्थया—यूपे या आस्था तया। शकुन्तस्वनम्—शकुन्तानां स्वनम् (ष० तत्पु०) तापसगौरवेण—तापसानां गौरवेण (ष० तत्पु०) सम्भावयन्—सम् +√भू+णिच्+शतृ प्र० ए०। न्यस्यामि नि+√अस् (फेंकना), लट्, उ० ए० ।४।

युक्तरूपः=अतिशयेन युक्तः। प्रशंसायां रुपप्। धर्मैक परायणस्य—धर्म एव एकं परायणं—परम् अयनं यस्य तस्य (बहुब्री०) सकल जगदभ्युदयनिः श्रेयसहेतोः—सकलस्य जगतः (ष०त०) अभ्युदयः निःश्रेयसयोः (द्वन्द्व०) हेतोः (ष० तत्पु०)। अभ्युदयः—अभिगत।

(इस) नैमिश-वन में वन की आग को यज्ञ होम की अग्नि के विचार से, वृक्षों को यज्ञ की खूंटियों के से आदर से, पक्षियों के अस्पष्ट कूजन को मुनियों द्वारा गाए गये साम-मन्त्रों के प्रति भक्ति से (तथा) जंगली हरिणों को तपस्वी योग्य आदर से देखता हुआ मैं (बड़े) कष्ट एवं सङ्कोच से भूमि पर पैर रखता हूँ ॥४॥

कण्व—समस्त चराचर [सृष्टि] की ऐहिक तथा पारलौकिक उन्नति के कारणभूत धर्मपरायण महाराज का, निर्विघ्न तपश्चरण की

निःश्रेयसहेतोर्निष्प्रत्यूहतपःसिद्धिक्षेत्रे पूर्वराजर्षिवंशाध्यासिते नैमिशे बहुमानः ।

आनाकमेकधनुषा भुवनं विजित्य
पुण्यैर्दिवः क्रतुशतैर्विरचय्य मार्गम् ।
इक्ष्वाकवः सुतनिवेशितराज्यभारा
निःश्रेयसाय वनमेतदुपाश्रयन्ते ॥ ५ ॥

उदयः । निःश्रेयसम्—निश्चितं श्रेयः । निष्प्रत्यूहे तपःसिद्धिक्षेत्रनिष्प्रत्यहे—निर्गताः प्रत्यूहाः यस्मात् तस्मिन् । तपसां सिद्धिः—तपः सिद्धिः । तस्याः क्षेत्रे । पूर्वराजर्षिवंशाध्यासिते—पूर्वेषां राजर्षीणां वंशेन अध्यासिते (तृ० तत्पु०) । राजानः ऋषय इव इति राजर्षयः । (कर्मधारय) ।

कठिन शब्दार्थ—गौरव-मान । सम्भावयन्-समझते हुए या सम्मानित करते हुए । यन्त्रणया—कष्ट से । न्यस्यामि-रखता हूं ॥४॥

अभ्युदय—(पुं०) इहलौकिक उन्नति । निःश्रेयस — (नपुं०) निश्चित कल्याण, मोक्ष । निष्प्रत्यूह—निर्विघ्न । बहुमानः —आदर ।

अन्वय—इक्ष्वाकवः, एक-धनुषा आनाकम् भुवनं विजित्य, पुण्यैः क्रतुशतैः दिवः मार्गं विरचय्य, सुतनिवेशितराज्यभाराः निःश्रेयसाय एतद्‌वनम् उपाश्रयन्ते ॥५॥

भूमि (तथा) भूतपूर्व राजर्षियों द्वारा अधिष्ठित, नैमिशवन के प्रति आदर-भाव समुचित है ।

इक्ष्वाकु वंशी, एकमात्र धनुष से स्वर्ग पर्यन्त (इस) लोक को जीत कर, सैंकड़ों पवित्र यज्ञों [सौ अश्वमेधों] से स्वर्ग का मार्ग बना कर (तथा) राज्यभार (योग्य) पुत्रों को सौंप कर पारलौकिक कल्याण [मोक्ष-साधना] के लिए इसी वन में आकर रहा करते हैं ॥५॥

(*रामः प्रणमति*)

क०—इदमनन्यतपोवनसाधारणं नैमिशस्य माहात्म्यमवलोकय—

अस्मिन् सन्निवसन्महेश्वरशिरस्ताराधिपज्योत्स्नया
मिश्रीभूय कवोष्णतामुपगतस्तिग्मो निदाघातपः ।

व्याकरण—आनाकम्— नाकं स्वर्गम् अवधीकृत्य (अव्ययीभाव) । ऋतुशतैः—ऋतूनां शतैः (ष० तत्पु०) । विरचय्य–वि+√रच्+णिच्+ल्यप् । सुतनिवेशितराज्यभाराः– सुतेषु निवेशितः राज्यस्य भारः यैः ते (बहुव्री०) निवेशितः—नि+√बिश्+णिच्+क्त, प्र. ए. ॥५॥

अन्वय—निदाघ-आतपः-अस्मिन् संनिवसन् महेश्वर-शिरः-ताराधिप-ज्योत्स्नया मिश्रीभूय कवोष्णताम् उपगतः तिग्मः तरुपल्लवेषु म्लानिं न, सरसां तोयेषु क्षयं नैव, जनस्य अङ्गेषु सन्तापं न (जनयति) किन्तु दृशां आलोकमात्रं जनयति ॥६॥

व्याकरण—सन्निवसन्महेश्वरशिरस्तारा०—संनिवसतः महेश्वरस्य शिरसि (स्थितस्य) ताराधिपस्य ज्योत्स्नया । ताराधिपः—ताराणाम् अधिपः (ष० तत्पु०) । कवोष्णताम् =कवोष्णम् =ईषदुष्णम् उष्ण शब्द परे होने पर 'कु' को 'का' और 'कव' तथा 'कत्' आदेश होता है, । अतः कोष्ण, कवोष्ण,

---

(राम प्रणाम करता है)

कण्व—इस असाधारण नैमिश-वन का ऐश्वर्य देखो—

ग्रीष्म काल की प्रचंड धूप इस (तपोवन) में नित्य निवास करने वाले शिव के मस्तक (पर स्थित) चन्द्रमा की चान्दनी से मिल कर बहुत कम उष्ण रह जाने से न तो वृक्षों के कोमल पत्तों को मुरझाती है न जल-भरे तालाबों में क्षीणता (उत्पन्न करती है) और नाही लोगों को सन्तप्त करती है (यह) केवल नेत्रों को प्रकाश देने भर का काम करती है।

न म्लानिं तरुपल्लवेषु सरसां तोयेषु नैव क्षयं
सन्तापं न जनस्य किन्तु जनयत्यालोकमात्रं दृशाम् ॥ ६ ॥

किञ्च,—

एतस्मिन् विततध्वरे प्रतिदिनं सान्निध्ययोगाद्धरे
रत्यक्त्वा नन्दनचन्दनावनिरुहानालानतां प्रापिताः ।

कदुष्ण—तीन रूप होते हैं। कवोष्णस्य भावः, ताम् कवोष्णतां, निदाधातपः—निदाघस्य आतपः (ष० तत्पु०) । जनयति—√जन्+णिच्+लट्, प्र० ए० । आलोकमात्रम्—आलोकः एव (मयूर व्यंसकादि) ॥६॥

कठिन शब्दार्थ—ताराधिप (पुं०)—चन्द्रमा । तिग्म —तीव्र । आलोक-मात्रम्—केवल प्रकाश । जनयति—उत्पन्न करता है ।

अन्वय—वितत—अध्वरे एतस्मिन् (नैमिषारण्ये हरेः प्रतिदिनं सन्निध्य-योगात् नन्दन-चन्दन-अवनि रुहान त्यक्त्वा आलानतां प्रापिताः उच्चनिवेशितेन नयनेन आलोकनीयाः अमी पादपाः मत्त-ऐरावण-कण्ठ-रज्जु-वलय-न्यास-क्षतिं बिभ्रति ॥७॥

व्याकरण—विततध्वरे—वितताः अध्वराः यस्मिन् (बहुव्री०) अध्वानं राति ददाति इति । अध्वर—यज्ञः । वितत—वि+तन्(विस्तार करना)—क्त । आलानता—आलानस्य भावः आलानता, ताम् । सान्निध्ययोगात्—सान्निध्यम् एव योगः सम्बन्धः, तस्मात् । सन्निधिः एव सान्निध्यम् । ष्यञ् स्वार्थे । प्रापिताः—प्र+√अत्+णिच्+क्त, प्र० ब० । उच्चनिवेशितेन—उच्चं यथा स्यात्तथा निवेशितेन । आलोकनीयाः—आ+√लोक्+अनीयर्, प्र० ब० । मत्तैरावणकण्ठ०—मत्तस्य+ऐरावणस्य कण्ठरज्जूनां वलयस्य न्यासेन या क्षतिः ताम् । बिभ्रति—√भृ (धारण) जुहो०, लट्, प्र० ए० (बहु०) ॥७॥

तथा च—

निरन्तर यज्ञ होते रहने से इस (वन) में इन्द्र के प्रतिदिन

विभ्रत्युच्चनिवेशितेन नयनेनालोकनीया अमी
मत्तैरावणकण्ठरज्जुवलयन्यासक्षतिं पादपाः ॥ ७ ॥

रा०—(*विलोक्य*) सततप्रवृत्तमहाध्वरेण धर्मारण्येन नन्दनवनमपि विस्मारितो भगवान् पुरन्दरः ।

सचकितमवधाय कर्णमस्मिन् सुरपतिकर्षणमन्त्रनिःस्वनेषु ।
विरचयति शची सदैव नूनं स्रजमवधूय वियोगवेणिबन्धम् ॥ ८ ॥

कठिन शब्दार्थ— अध्वर—यज्ञ (स्वर्ग को रास्ता देने वाला) अवनिरुह (पुं०)— वृक्ष। आलान (नपुं०)—हाथी का बन्धन स्थान। रज्जु (स्त्री०)—रस्सी। वलय (पुं०, नपुं)–घेरा, मंडल। क्षति (स्त्री०)–घाव, चिह्न ।

व्याकरण—सतत प्रवृत्त०—सततं— (सन्ततं) प्रवृत्ता महाऽध्वरा यत्र, तेन। नन्दनवनम्—नन्दयतीति नन्दनं च तद वनं च। पुरन्दरः—पुरः—पुराणि दारयति इति।

अन्वय—अस्मिन् (नैमिशारण्ये) सुरपति-कर्षण-मंत्र-निस्वनेषु सचकितं कर्णम् अवधाय शची स्रजम् अवधूय वियोग-वेणिबन्धं रचयति नूनम् ॥८॥

उपस्थित होने के कारण नन्दन-वन के चन्दन के वृक्षों को छोड़ बन्धन स्तम्भ बनाये गये, नेत्र ऊंचे करके देखे जा सकने वाले यह वृक्ष मस्त ऐरावत (इन्द्र के हाथी) के गले की रस्सी के परिवेष्टन [गोलाकार में बांधने] के कारण लगे घावों [चिह्नों] को धारण किए हुए हैं ॥७॥

राम—(देखकर) निरन्तर महा-यज्ञ होते रहने से इस पवित्र तपोवन ने भगवान् इन्द्र को नन्दन वन भी भुला दिया है।

क०—इदमपरं न पश्यसि—

अस्मिन् कपोलमदपानसमाकुलानां
विघ्नं न जातु जनयन्ति मधुव्रतानाम् ।
सामध्वनिश्रवणदत्तमनोऽवधान—
निष्पन्दमन्दमदवारणकर्णतालाः ॥ ९ ॥

व्याकरण—सुरपतिकर्षण०—सुरपतेः (इन्द्रस्य) कर्षणः (कृष्यते एभिः इति), ते च मन्त्रः तेषां । अवधाय—अव+√धा+ल्यप् । अवधूय—अव+√धू (हिलाना, तिरस्कार पूर्वक फेंक देना)+ल्यप् । वियोगवेणि—वियोग सूचिका वेणिः तस्याः बन्धम् ।

अन्वय— अस्मिन् (नैमिशवने) साम-ध्वनि-श्रवण-दत्त-मनः-अवधान-निष्पन्द-मन्द-मद-वारण-कर्ण तालाः कपोल-मद-पान-समाकुलानां मधुव्रतानां जातु विघ्नं न जनयन्ति ॥९॥

व्याकरण—सामध्वनि०— साम्नां ध्वनयः, तेषां श्रवणे दत्तं यद् मनसोऽवधानं तेन निष्पन्दाः ये मन्द-मदवाराणनां (मन्देन मदेन युक्ताः वारणाः तेषाम् कर्णतालाः (कर्णाः ताला इव) । मधुव्रतानाम्—मधुनि व्रतं येषाम्, ते मधुव्राता, तेषाम् । मधु व्रतयन्ति इति वा मधुव्रताः । जातु—(अव्यय) कदापि ॥९॥

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस (नैमिशवन) में इन्द्र का आह्वान करने वाले मंत्रों की ध्वनियों को चौंक कर सुन इन्द्राणी माला का तिरस्कार [त्याग] करके वियोग (सूचक) वेणी बांधने लग जाती होगी ॥८॥

कण्व—क्या यह नहीं देख रहे हो—

इस (नैमिश वन) में सामवेद के (मन्त्रों के गायन की) ध्वनि सुनने में एकाग्र चित्त होने के कारण कुछ मस्ती में आए हुए

रा०—(*विहस्य*) *किमत्राश्चर्यम्*—

मुनीनां सामगीतानि पुण्यानि मधुराणि च ।
प्रवासिनामपि मनो हरन्ति किमु दन्तिनाम् ॥ १० ॥

क०—(*आत्मगतम्*) अहो रामस्य प्रवासे महान्निर्वेदः, यदयं तिर्यग्भ्योऽपि प्रवासिन एव शून्यहृदयानवगच्छति । (*प्रकाशम्*) इतस्तावदवधीयतां दृष्टिः—

मुक्त्वा वसन्तविरहेऽपि मुनिप्रभावा-
दुन्निद्रसान्द्रकुसुमां सहकारशाखाम् ।
धावन्त्यमी मधुकराः क्रतुहोमधूम-
सन्त्रासिताः सरसि वारिरुहोदराणि ॥ ११ ॥

अन्वय—मुनीनां पुण्यानि मधुराणि च सामगीतानि प्रवासिनां अपि मनः हरन्ति. दन्तिनां किमु ॥१०॥

अन्वय—क्रतुहोम-धूम-सन्त्रासिताः अमी मधुकराः वसन्त-विरहे अपि मुनि-प्रभावात् उन्निद्र-सान्द्र-कुसुमां सहकार-शाखां मुक्त्वा सरसि वारिरुह-उदराणि धावन्ति ॥११॥

व्याकरण—क्रतुहोमधूमसन्त्रासिताः — क्रतुहोमस्य = क्रतुसम्बन्धिनः होमस्य धूमेन सन्त्रासिताः (तृ० तत्पु०) । उन्निद्रसान्द्रकुसुमाम्—उन्निद्राणि

राजों के निस्पन्द कर्णताल, गण्डस्थलों का मद-पान करने में लगे हुए भ्रमरों के आनन्द में कोई विघ्न नहीं डालते ॥९॥

राम—(मुस्कराकर) इसमें आश्चर्य की क्या बात है—मुनियों के पवित्र तथा मधुर साम-गान प्रवासियों [विरहियों] तक के मन को हर लेते हैं, हाथियों का तो कहना ही क्या ॥१०॥

कण्व—(अपने आप) ओह ! प्रवास के कारण राम कितना दुःखी है, यह प्रवासियों को पशु-पक्षियों से भी अधिक विमनस्क समझता है । (प्रकट) जरा इधर देखिए—

रा०—कथमनवरताहुतिसंवर्द्धितो धूमराशिर्मधुकरानिवास्मान् पर्याकुलयितुं प्रवृत्तः। (*धूमसंबाधां नाटयति*)

क०—भो भोः किं बाढं धूमेन पर्याकुलनयन इवासि संवृत्तः।

रा०—*सीताविरहबाष्पेण क्षरता नित्यदुःखिते।*
बाढमायसिते भूयो धूमेन मम लोचने ॥ १२ ॥

(विकसितानि) सान्द्राणि कुसुमानि यस्यां ताम् (बहुव्री०)। मुक्त्वा—√मुच्+क्त्वा। वारिरुहोदराणि वारिरुहाणाम् उदराणि (ष० तत्पु०) वारिणि रोहन्ति इति वारिरुहाणि ॥११॥

कठिन शब्दार्थ—उन्निद्र (वि०)—विकसित। सान्द्र (वि०)—घने, निरन्तर। वारिरुह (नपुं)—कमल। उदराणि (नपुं०)—कोष।

अन्वय—क्षरता सीता-विरह-वाष्पेण नित्य दुःखिते मम लोचने भूयः बाढम् आयासिते ॥१२॥

यज्ञ में आहुतियों द्वारा उत्पन्न हुए धुएँ से डराए हुए यह भंवरे वसन्त के बीत जाने पर भी मुनियों के (अलौकिक) प्रभाव से विकसित घने बौर वाली आम की शाखा को छोड़ कर सरोवर में कमलों के कोष [गर्भ] में जा रहे हैं ॥११॥

राम—अरे, निरन्तर आहुतियां डालने से बढ़ा हुआ धुआं भ्रमरों के समान हमें तंग करने लगा है।

(धुएँ से उत्पन्न कष्ट का अभिनय करता है)

कण्व—अरे रे, क्या धुएँ से तुम्हारे नेत्र अत्यधिक खिन्न हैं ?

राम—सीता वियोग के कारण बहने वाले आंसुओं से नित्य व्यथित मेरे नेत्र पुनः अधिक पीड़ित हुए हैं ॥१२॥

क०—तदेनामग्रतोवर्त्तिनीमाश्रमदीर्घिकामवगाह्य शीतलेन सलिलेन क्षालितव्यपनीतनयनखेदं विश्रम्य मुहूर्त्तमत्र तिष्ठतु । अहमपि कुलपतेरग्निहोत्रवेलां सन्निधानेन सम्भावयामि ।

(इति निष्कान्तः)

रा०—(*परिक्रम्य*) एतद्दीर्घिकातोरमवतरामि । (*अवतीर्य*) अहो प्रसन्नसलिलता कमलाकरस्य । (*उदकमध्ये छायां निर्वर्ण्य ससम्भ्रमम्*) कथं सीताप्यत्रैव ! (*हर्षविस्मयं नाटयति*)

सी०— (*विलोक्य*) हा धिक् ! हंसमिथुनदर्शनव्याप्रुतया मयाऽतर्कित

हद्धी हंसमिहुणदंसणवावुदाए मए अतङ्कित-

समागत आर्यपुत्रो न संलक्षितः । तदपसरामि । *तथा करोति*)

समाअदो अंअउत्तो ण संलक्खिदो । ता ओसरिस्सं ।

रा०—कथमसम्भाष्येव मां प्रस्थिता सीता ।

कण्व—तो सम्मुखस्थ आश्रम की बावड़ो में (डुबकी लगाकर) स्नान करके (तथा) नेत्र-पीड़ा को शीतल जल से नेत्रों को धोने से दूर कर मुहूर्त्त भर यहां ठहरो। मैं भी कुलपति के यज्ञ को अपनी उपस्थिति से सम्मानित करता हूं।

(चला जाता है)

राम —(घूम कर) इस बावड़ी के किनारे २ (जल में) उतरता हूँ। (उतर कर) अहो ! इस सरोवर का जल कितना स्वच्छ है।

(जल में छाया को देख कर घबराहट के साथ)

क्या सीता भी यहीं है ! (हर्ष तथा आश्चर्य का प्रदर्शन करता है)

सीता—(देख कर) हा धिक्कार है, हंस युगल को देखने में लीन मैं ने सहसा आए हुए आर्यपुत्र को देखा ही नहीं । दूर हट जाती हूँ। (वैसे ही करती है)

राम—सीता मेरा अभिनन्दन किए बिना कैसे चली गई ?

आपाण्डरेण मयि दीर्घवियोगखेदं
लम्बालकेन वदनेन निवेदयन्ती ।
एषा मनोरथशतैः सुचिरेण दृष्टा
क्वापि प्रयाति पुनःक्व विहाय सीता ॥ १३ ॥

तदेनामालम्बे । (बाहू प्रसार्य) नैषा वैदेही, किन्तु-

वैदेह्याः क्वापि गच्छन्त्या दीर्घिकातीरवर्त्मना ।
अन्तर्गतजलच्छाया मया सैवेति वीक्षिता ॥ १४ ॥

अन्वय—सुचिरेण मनोरथ-शतैः दृष्टा एषा सीता आपाण्डरेण लम्ब-अलकेन वदनेन दीर्घ वियोग-दुःखं मयि निवेदयन्ति विहाय पुनः क्व-अपि प्रयाति ॥ १३॥

व्याकरण—मनोरथशतैः—मनोरथानां शतैः । मनोरथः मनसो रथः (गतिः-व्यापारः) इति मनोरथः । आपाण्डरेण=ईषत्पाण्डरेण । ईषदर्थे अण् । लम्बा-ल्केन=लम्बाः अलकाः यस्य तेन । अलक—पुं ॥ १३ ॥

अन्वय—दीर्घिका-तीर-वर्त्मना क्व-अपि गच्छन्त्याः वैदेह्याः अन्तर्जलच्छाया मया सा एव इति वीक्षिता ॥ १४ ॥

व्याकरण—दीर्घिकातीरवर्त्मना—दीर्घिकायाः तीरस्य वर्त्मना(ष० तत्पु०) गच्छन्त्याः—√गम् + शतृ, ष० ए० । अन्तर्गतजलच्छाया—अन्तर्गता चासौ

चिर पश्चात् सैंकड़ों मनोरथों से दिखाई दी हुई यह सीता, पीले [म्लान] पड़े हुए, तथा लम्बी लटाओं से युक्त मुख से (अपने) दीर्घ विरह का दुःख मुझे बताती हुई (मुझे) छोड़ फिर कहीं चल दी है ॥ १३ ॥

तो मैं इसे पकड़ता हूँ । (दोनों भुजाए फैला कर)

यह सीता नहीं, बल्कि———————

तदस्याः प्रतिकृतेर्मूलप्रकृतिमन्वेषयामि । (*अन्वेषणं नाटयति*) निःसम्पातविविक्तमिदं दीर्घिकातीरम्, बिम्बेन च विना प्रतिबिम्ब-मित्यसम्भाव्यमेतत् । किमिदम् ?

सी०—प्रेक्षते प्रतिकृतिं कथं न प्रेक्षते मामार्यपुत्रः । (*विचिन्त्य*) भवतु
पेक्खदे पडिकिदिं, कहं ण पेक्खदि मं अंअउत्तो । होदु
विज्ञातम्, मुनिप्रसाद एष तपोवनवासिनीनां स्त्रीणामेतस्मिन्
विण्णादं, मुणिप्पखादो एसो तपोवणवासिणीणं इत्थिआणं एदस्सिं
दीर्घिकातीरे पुरुषनयनानामगोचरता । यदि प्रतिकृतेरप्यदर्शनं
दीहिआतीरे पुरुसणअणाणं अगोअरदा । जदि पडिकिदिए वि अदंसणं

जलच्छाया (कर्मधा०) । वीक्षितः—वि + √ईक्ष् + क्त, प्र० ए० ॥ १४ ॥ विविक्तम्—वि + √विच् (पृथक् करना) + क्त, प्र० ए० । असम्भाव्यम्—न + सम् + √भू + णिच् + यत् । विज्ञातम्—वि + √ज्ञा + क्त, प्र० ए० । अनुगृहीत—अनु + √ग्रह् + क्त, प्र० ए० । दृश्यते—√दृश् (कर्मवाच्य), लट् प्र० ए० । अन्तर्हिता—अन्तर + धा + क्त, प्र० ए० ।

कठिन शब्दार्थ—प्रतिकृतेः—छाया का । निःसम्पातविविक्तम्—जनसंचारशून्य तथा एकान्त ।

नोट—यदि प्रतिकृतेरप्यदर्शनम् इत्यादि वाक्य में कवि ने लङ् के विषय में लिङ् का प्रयोग किया, सो ठीक नहीं किया । यहां 'क्रियातिपत्ति' का स्पष्ट प्रतीत होती है ।

बावड़ी के किनारे २ कहीं जाती हुई सीता की, जल में पड़ी हुई, छाया को मैंने वही [सीता ही] समझ लिया ॥ १४ ॥ अच्छा तो इस प्रतिबिम्ब के मूल को ढूंढता हूँ ।

(ढूंढने का अभिनय करता है)

महर्षिणाऽऽदिष्टं भवेत् तदायं जनोऽनुगृहीतो भवेत् । अह-
महेसिणा आदिट्ठं भवे तदा अअं जणो अणुग्गहिदो भवे । अहं
मपि तावत् यथैषा प्रतिकृतिर्न दृश्यते तथापमरामि । (*अपसरति*)
वि जाव जह एसा पडिकिदी ण दीसइ तह ओसरिस्सं ।

रा०—तामेव तावत् प्रसन्नसलिलमध्यवर्तिनीं प्रतिमासीतामवलोक-
यामि । (*विलोक्य*) कथं साप्यन्तर्हिता । (*मोहं गच्छति*)

सी०—हा धिक् ! हा धिक् ! मोहं गत आर्यपुत्रः । उपसर्पामि ।
हद्धी ! हद्धी ! मोहं गदो अंअउत्तो । पुणो वि कुप्पिस्सं ।

व्याकरण — संलक्षितः–सम्+√लक्ष्, चुरा० + णिच् + क्त, प्र० ए० । अवनीता—न+वि + √नी + क्तः, प्र० ए० । सम्भावयिष्यन्ति–सम्+√भ+णिच्, लृट् प्र० ब० । कुप्यतु – √कुप् (क्रोध करना) दिवा० लोट् प्र० ए० ।

मनुष्य संसार के अभाव के कारण बावड़ी का तट प्रदेश जन-
शून्य है परन्तु बिम्ब के बिना प्रतिबिम्ब का होना असम्भव है ।
यह क्या (खेल) है ?

सीता—आर्य पुत्र (मेरा) प्रतिबिम्ब देख रहे हैं, मुझे क्यों नहीं ।
(सोच कर) हां, समझ लिया । मुनि की यह कृपा है कि इस
बावड़ी के तट पर विद्यमान तपोवन में रहने वाली स्त्रियों को
पुरुष नहीं देख सकते । यदि महर्षि ने प्रतिबिम्ब के भी न
दिखाई देने का विधान कर दिया होता तो मझ पर बड़ी कृपा
की होती । मैं दूर हट जाती हूँ ताकि यह प्रतिम्बि भी (आर्य-
पुत्र को) न दिखाई दे ।

राम—तो फिर स्वच्छ जल में प्रतिबिम्बित सीता की उसी प्रतिमा को
देखता हूँ । (देख कर) क्या वह भी लुप्त हो गई । (मूच्छित हो
जाता है)

(*परिक्रामति*) अथवा यदि संलक्षित आर्यपुत्रः पुनरपि कोपि-
अहवा जदि संलक्खिदो अंअउत्तो पुणो वि कुप्पि-
ष्यति तदा मुनिजना अविनीतेति मां सम्भावयिष्यन्ति। तद्गमि
स्सदि तदा मुणिअणा अविणीदेत्ति मं संभावइस्संति। ता गमि
ष्यामि। (*निवृत्त्य*) अथ वा नैष युक्तायुक्तविचारणस्य कालः,
स्सं अहवा ण एसा जुत्ताजुत्तविआरणस्स कालो
कुप्यतु वा मे आर्यपुत्रः, मुनिजनो वाविनीतेति सम्भावयतु
कुप्पदु वा मं अंअउत्त मुणिअणो वा अविणीदेत्ति संभावेदु।
सर्वथा न शक्नोमि एतादृशावस्थां गतमार्यपुत्रमुपेक्षितुम्।
संवहा ण सक्कणोमि एदारिसावत्थं गदं अंअउत्तं उवेक्खिदुं।

व्याकरण——उपेक्षितुम्—उप्+√ईक्ष्+तुमुन्। शृण्वन्तु—√श्रु,लोट् प्र० ब०। निर्वासिता—निर्+√वस्+णिच्+क्त, प्र० ए०। प्रभवन्ति—प्र+√भू+शतृ, प्र० ए०। अनुतिष्ठामि—अनु+स्था, लट् उ० ए०। आचरामि। युक्तायुक्तविचारणस्य—युक्तं च अयुक्तं च इति युक्तायुक्ते (द्वन्द्व) तयोः विचारणम् (ष० त०)।

सीता—हा खेद है, खेद है। आर्य पुत्र मूर्च्छित हो गए हैं। समीप जाती हूँ। (जाती है) अथवा यदि देखने पर आर्य ने पुनः क्रोध किया तो मुनिजन मुझे निर्लज्जा समझें गे। अतः मैं लौटती हूँ। (लौट कर)अथवा यह उचित-अनुचित विचार करने का समय नहीं। आर्य पुत्र मुझ पर क्रुद्ध हों अथवा मुनि लोग निर्लज्जा समझें, इस दशा में पड़े हुए आर्यपुत्र की ओर से कदाचित् दृष्टि नहीं फेर सकती। (आगे बढ़ती है) पूज्य लोकपालको सुनो, मैं आर्य पुत्र की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर रही अपितु शोक के प्रबल वेग से प्रेरित हुई २ अपने आप को वश में न रख सकने

(*परिक्रामति*) शृण्वन्तु भवन्तो लोकपालाः, अहमार्यपुत्रेण
सुण्णंतु भवन्तो लोअवाला, अहं अंअउत्तेण

निर्वासिता साम्प्रतमविनीततयार्यपुत्रस्य न शासनं खलु अति
णिव्वासिदा, संपदं अविणीददोए अंअउत्स्स ण सासणं खु अदि-

क्रमामि, किन्तु शोकावेगबलात्कारिताऽऽत्मनो न प्रभवन्ती
क्कमामि, किंदु सोआवेअबलक्कारिदा अत्तणो ण प्पहवन्तो

ईदृशं साहसमनुतिष्ठामि। (*उपसृत्य निर्वर्ण्य*) हा धिक्! हाधिक्
ईदिसं माहसं अणुचिट्ठामि। हद्धी! हद्धी!

परित्यक्तचेतन इवार्यपुत्रः। (*परिष्वजते*)
परिच्चत्तचेदणो विअ अंअउत्तो।

(*रामः प्रत्यागमनं नाटयति*)
(*सीता अपसरणं नाटयति*)

रा०—कथमकस्मादेव रोमाञ्चितोऽस्मि ?

सी०—तथा नाम निर्वासितेदृशं साहसमनुष्ठाय यत्सत्यं भीतास्मि
तह णाम णिव्वासिदा ईदिसं साहसं अणुचिट्ठिअ जं भीदंमि

संवृत्ता।
संवुत्ता।

व्याकरण—रोमाञ्चितः—रोमाञ्चाः संजाताः इति, तारकादित्वात् इतच्। अनुष्ठाय अनु+√स्था+ल्यप्। भीता—√भी जुहो० क्त, प्र० ए०। संवृत्ता—सम्+√वृत्+क्त, प्र० ए०।

के कारण ऐसा साहस कर रही हूं। (समीप जाकर देख कर) हा कष्ट है। आर्यपुत्र अचेत पड़े हैं। (आलिङ्गन करती है)

(राम सचेत होने का अभिनय करता है)

(सीता अभिनय पूर्वक हटती है)

राम—अचानक ही रोमाञ्च कैसे हो आया ?

रा०—(*विलपन्*)—*गाढमालिङ्ग वैदेहि*—

सी०—अनपराद्धास्मि ।

अणवरद्धंमि ।

रा०—*देहि मे दर्शनं प्रिये* ।

सी०—प्रभवति सिद्धशासनं किमत्र करोमि मन्दभाग्या ।

पहवदि सिद्धसाससणं; किं एत्थ करेमि मंदभाआ ।

रा०—*त्यज्यतां दीर्घरोषोऽयं*—

सी०—अहमप्यार्यपुत्रमेवं विज्ञापयामि ।

अहं वि अंअउत्तं एव्वं विण्णवेमि ।

रा०—*किं नु निष्करुणा मयि* ॥ १५ ॥

अन्वय—वैदेहि ! गाढम् आलिङ्ग, प्रिये मे दर्शनं देहि । अयं दीर्घरोषः त्यज्यतां, किं नु मयि निष्करुणा (असि) ॥१५॥

सीता—वस्तुतः निर्वासित की गई मैं इस प्रकार का साहस करके सच मुच भयभीत [कातर] हो गई हूँ ।

राम—(विलाप करते हुए) सीते ! गाढ आलिंगन करो—

सीता—मैंने कोई अपराध नहीं किया ।

राम—प्रिये ! अपने दर्शन दो ।

सीता—यहां सिद्धि प्राप्त (भगवान् वाल्मीकि की) आज्ञा का पूर्ण प्रभाव (राज्य) है (अर्थात् सामर्थ्यवान् भगवान् वाल्मीकि के नियोग का पूर्ण अधिपत्य है) (मैं) अभागिनी क्या कर सकती हूँ

राम—तीव्र (पिछला) रोष [पंजाबी रोसा] छोड़ दो—

सीता—मेरा भी आर्य पुत्र से यही निवेदन है ।

राम—क्या (तुम सचमुच) मेरे प्रति (इतनी) कठोर हो ॥१५॥

सी०—आर्यपुत्र ! विपरीतः खलूपालम्भः ।
अंअउत्त ! विवरीओ खु उवालंभो।

रा०— *देवि विज्ञापयामि त्वां—*

सी०—अवहितास्म्येषा, आज्ञापय ।
अवहिदंमि एसा, आणवेहि ।

रा०— *यत्त्वं चारित्रशालिनी ।*

सी०—अहो अत्यागयोग्याः प्राणाः ।
अहो अच्चाइजोग्गा पाणा ।

रा०— *निर्वासितासि विषयात् —*

सी०—प्रभवत्यार्यपुत्रः सकलस्य परिजनस्य ।
पहवदि अंअउत्तो सअलस्स परिअणस्स ।

रा०— *अस्मिन् दोषे प्रसीद मे ॥ १६ ॥*

सी०—त्वं प्रसीद, नित्यप्रसन्नाहम् ।
तुमं पसीद, णिच्चपसण्णा अहं ।

अन्वय—देवि ! त्वां विज्ञापयामि यद् त्वं चरित्रशालिनी (असि) । विषयात् निर्वासिता असि, अस्मिन् मे दोषे प्रसीद ॥१६॥

सीता—आर्य पुत्र ! (यह) उपालम्भ वस्तुतः विपरीत है ।

राम—देवि ! (मैं) तुमसे निवेदन [प्रार्थना] करना चाहता हूँ—

सीता—मैं सावधान हूँ, आज्ञा करो—

राम—कि तुम सच्चरित्र हो ।

सीता—अहो ! (यह) प्राण अत्याज्य [रक्षणीय] हैं ।

राम—(तुझे मैंने) देश से निकाल दिया था ।

सीता—आर्यपुत्र का सारे सेवकों पर पूर्ण अधिकार है ।

राम—इस दोष के कारण मुझ पर अप्रसन्न मत होवो (मेरे इस अपराध को क्षमा करो) ॥१६॥

रा०—कदा बाहूपधानेन पटान्तशयते पुनः ।
गमयेयं त्वया सार्द्धं पूर्णचन्द्रां विभावरीम् ॥ १७ ॥

सी०—अयि जनवादभीरुक, अत्र सन्निहिते जने सन्तपसि ।
अयि जणवादभीरुअ, एत्थ सण्णिहिदे जणे संतपसि ।

रा०—हा प्रिये जनकराजपुत्रि ! देहि मे प्रतिवचनम् । (*मोहं गच्छति*)

सी०—कथं पुनरप्यार्यपुत्रो मोहं गतः । समाश्वासयामि (*पटान्तेन वीजयति*)
कहं पुणो वि अंअउत्तो मोहं गदो । समस्ससस्सं ।

रा०—(*हस्तं प्रसार्य पटान्तं गृह्णति*) कथं पटान्त इव संलक्ष्यते । को नु खल्वेष भविष्यति ? (*विचिन्त्य*) अथवा—

अन्वय—त्वया सार्द्धं पटान्त-शयने बाहु-उपधानेन पूर्णचन्द्रां विभावरीं पुनः कदा गमयेयम् ॥१७॥

सीता—तुम संतुष्ट रहो, मैं सदा प्रसन्न हूं ।

राम—तुम्हारे साथ पटान्त-शयन [सुन्दर बिस्तर वाले पलंग] पर, भुजा का तकिया बना कर पूनो की रात काटनी फिर कब मिलेगी ॥१७॥

सीता—अरे लोकापवाद से डरने वाले, (मेरे) यहां पास रहते संतप्त हो रहे हो ।

राम—हा, प्यारी जनकदुलारी ! मुझे उत्तर दो ।

(मूर्च्छित हो जाता है)

क्या—आर्य पुत्र पुनः मूर्च्छित हो गए । सचेत करती हूँ ।

(आंचल से हवा करती है)

राम—(हाथ बढ़ा कर आंचल पकड़ लेता है) आंचल सा प्रतीत होता है । यह कौन होगा (सोच कर) अथवा—

जनकदुहितरं विहाय देवीं
जनमपरं भुवने तथाप्रभावम् ।
अहमिह न विलोकयामि या मे
स्पृशति पटान्तसमीरणैः शरीरम् ॥ १८ ॥

तदेनामवलोकयमि । (*चक्षुरुन्मीलयन्*) अनवरतवाष्पपिहित लोचनतया न किञ्चिदपि दृश्यते । तस्मादेनमपकृष्य तावदपनयामि ।

(तेनैवोत्तरीयान्तेनाश्रूणि प्रमार्जन्नाकर्षति)

अन्वय—इह भुवने देवीं जनक दुहितरं विहाय तथा प्रभावम् अपरं जनम् अहं न विलोकयामि यः पटान्त् समीरणैः मे शरीरं स्पृशति ॥१८॥

व्याकरण—'जन' शब्द का प्रत्यवमर्श करता हुआ 'यद्' सर्वनाम पुं० में ही हो सकता है, स्त्रीलिंग में कदापि नहीं । अतः 'यो मे' ऐसा मूल-पाठ होना चाहिए । जैसे एक पुरुष अपने को 'अयं जनः, इमं जनम्' इत्यादि शब्दों से निर्दिष्ट करता है, वैसे स्त्री भी । जन शब्द पुं० व्यक्ति तथा स्त्री व्यक्ति को समान रूप से कहता है ।

इस लोक में देवी जानकी के अतिरिक्त ऐसी शक्ति वाले (किसी) दूसरे व्यक्ति को नहीं जानता जो आंचल की पवन से मेरे शरीर को स्पर्श कर सके ॥१८॥

सो इसे देखता हूँ (नेत्र उघाड़ कर) निरन्तर बहते हुए आंसुओं से भरे हुए नेत्रों के कारण कुछ दिखाई नहीं देता अतः इस (आंचल) को खींच कर (पहले आंसू) पोंछता हूँ ।

(उसी आंचल से आंसू पोंछते हुए खींचता है)

सी०—(*उत्तरीयं मुञ्चति*) आर्यपुत्र न त्वया परकीयेनोत्तरीयेण प्रणय-
अंअजत्त ण तुए परकेरएण उत्तरीएण सणअ-

कोविदस्य इव जनस्याश्रुप्रमार्जनमनुष्ठातव्यम् ।
कोविदस्स विअ जणस्स अस्सुप्पमंज्जण अणुचिट्ठिदव्वं ।

रा० —(*उत्तरीयं पतितमवलोक्य*) कथमुत्तरीयमात्रमेव पश्यामि न पुनः परिधानकम् ।

अन्यांशुकमतिरभसादविमृश्यविधायिना मयाकृष्टम् ।
गगनतलात्परिगलितं ज्योत्स्नानिर्मोकललितमिदम् ॥ १९ ॥

अन्वय—अविमृश्य-विधायिना मया अतिरभसात् आकृष्टं ज्योत्स्ना—निर्मोक-ललितम् इदम् अन्य-अंशुकं गगनतलात् परिगलितम् ॥१९॥

व्याकरण—अविमृश्य०—अविमृश्य विदधाति इत्येवं शीलः, तेन । उपपद समास । आकृष्टम्—आ + √कृष् + क्त, प्र० ए० । ज्योत्स्ना निर्मोक-ललितम्—ज्योत्स्नायां यः निर्मोकः स इव ललितम् (कर्मधारय०) ; निर्मुच्यत इति निर्मोकः, घञ् । अन्यांशुकम्—अन्यस्याः अंशुकम् (ष० तत्पु०) ।।१९।।

कठिन शब्दार्थ— अविमृश्यविधायिना—असमीक्ष्यकारी, बिना सोचे कार्य करने वाले ने । रभसात्—वेग से । ज्योत्स्ना (स्त्री०)—चांदनी । निर्मोक (पुं०)— केचुली । अंशुक (पुं०, नपुं०)—रेशमी वस्त्र । परिगलितम्—गिरा है ।।१९।।

सीता—(वस्त्र फेंक देती है) आर्य पुत्र ! प्रेम करने में निपुण व्यक्ति के समान तुम्हे दूसरे की चादर से आंसू न पोंछने चाहिए ।

राम—(गिरे हुए वस्त्र को देख कर) यह क्या बात, केवल वस्त्र को देखता हूं, इसके पहनने वाले को नहीं ।

(पुनर्निर्वर्ण्य) किमप-मकस्मादेवासमीक्ष्यकारिणमात्मानमवगच्छामि। सुव्यक्तं तयैव चित्रकूटवनदेवतया मायावत्या प्रदर्शितम्-

द्यूते पणः प्रणयकेलिषु कण्ठपाशः
क्रीडापरिश्रमहरं रतान्ते।
शय्या निशीथकलहे हरिणेक्षणायाः
प्राप्तं मया विधिवशादिदमुत्तरीयम् ॥ २० ॥

अन्वय—द्यूते पणः, प्रणयकेलिषु कण्ठपाशः, रतान्ते क्रीडा-परिश्रमहरं व्यजनं, निशीथ—कलहे शय्या, हरिणेक्षणायाः इदम् उत्तरीयं मया विधिवशात् प्राप्तम् ॥२०॥

व्याकरण—क्रीडापरिश्रम०—क्रीडया यः परिश्रमः तं हरति इति। निशीथ कलहे—निशीथे कलहः तस्मिन्। नितरां शेरतेऽस्मिन् इति निशीथः। हरिणेक्षणायाः—हरिणस्य ईक्षणे इति हरिणेक्षणे। हरिणेक्षणे इव ईक्षणे यस्याः सा हरिणेक्षणा तस्याः। (बहुव्रीहि)।

असमीक्ष्यकारी मेरे द्वारा प्रबल वेग से खींचा गया, चांदनी में पड़ी हुई (सांप की) केंचुली के समान मनोरम यह किसी का उत्तरीय आकाश से गिर पड़ा है ॥१९॥

(पुनः देखकर) अपने आपको एकदम असमीक्ष्यकारी क्यों समझने लगा हूं। निश्चय ही चित्रकूट की वन देवता मायावती द्वारा भेंट किया हुआ—

जुए में दाव, प्रेम क्रीडाओं में गले में डालने का पाश, रति-समाप्ति पर (रति) क्रीडा की थकान दूर करने वाला पंखा, आधी रात को प्रणय कलहों में बिछौना (बनने वाला), मृगनयनी का यह उत्तरीय (shawl) मैंने भाग्य से पा लिया है ॥२०॥

सी०—दिष्ट्या ऽभिज्ञातमार्यपुत्रेण ।

दिट्ठिआ अहिण्णादं अंअउत्तेण ।

रा०—कीदृशमिदानीमस्य प्रियावल्लभस्य सम्मानविशेषमनुतिष्ठामि (*विचिन्त्य*) भवत्वयमेवास्यानन्यसाधारण सम्मानविशेषः । (*प्रावृणोति*) (*आत्मानं प्रावृतमवलोक्य*) द्वितीयप्रावरणं मामव लोक्य किमपि चिन्तयिष्यति मुनिजनः । तस्मादात्मीयमुत्तरीयं परित्यजामि । (*इत्युत्क्षिपति*)

सी०—(*गृहीत्वा सहर्षम्*) प्रियं मे संवृत्तं चिरजीविताया: फलम् ।

पिअं मे संवुत्त चिरजीविदाए फलं ।

(*आघ्राय*) दिष्ट्याऽसङ्क्रान्तविलेपनमार्यपुत्रस्योत्तरी-

दिट्ठिआ यसंकंतविलेवणातोअं अंअउत्तस्स उत्तरी

व्याकरण—आघ्राय–आ + √घ्रा + ल्यप् । असङ्क्रान्तविले पनामोदम् —विलेपनस्य आमोदः = विलेपनामोदः । संक्रान्तःविलेपनामोदः यस्मिन् तत् (बहुव्री०) तद् न भवति इति (तत्पुरुष) । सत्यसन्धाः – सत्या सन्धा येषां ते (बहुव्री०) । प्रियजनसंसर्गसुखस्पर्शम् – प्रिय जनेन सह यः संसर्गः तेन सुखः स्पर्शः यस्य । आर्यपुत्रवक्षःस्थलपरिश्रान्तम्—आर्य पुत्रस्य वक्षःस्थले

सीता—सौभाग्य है कि आर्य पुत्र ने पहचान लिया ।

सीता—प्रियतमा के प्यारे इस (उत्तरीय) का कैसे मान करूं । (सोच कर) यही इसका असाधारण तथा उत्कृष्ट सम्मान है ।

(ओढ़ लेता है)

(अपने आपको शॉल ओढ़ हुए देखकर)

मुझे दो शॉल ओढे हुए देख कर मुनिजन तर्क-वितर्क करने लगेंगे । सो अपना शॉल उतारे देता हूं । (फैंक देता है)

सीता—(उठ कर, प्रसन्नता से) इतना चिर जीने का इच्छित बल पा लिया

यम् । सर्वथा सत्यसन्धा राघवाः । (*प्रावृत्य*) अहो एतत् प्रिय
अं सव्वहा सच्चसन्धा राहधा । अम्हे एदं पिंय
जनसंसर्गसुखस्पर्शमुत्तरीयं प्रावृत्यार्यपुत्रवक्षःस्थलपरिश्रान्त-
जणसंसग्गसुहप्परिसं उत्तरीअं पावरिअ अंअउत्तवच्छत्थलपरिस्संतं
मिवाविरलसमुद्भिन्नरोमाञ्चनिरन्तरमात्मानमुद्वहामि ।
विअ अमिरलसमुव्भिण्णरोमंचणिरंतरं अत्ताणं उव्वहामि ।

रा०—(*सविस्मयम्*) यथैतदुत्तरीयमप्राप्तमहीतलमेव केनाप्यपहृतं तथा जानामि प्रत्यासन्नफलो मे मनोरथ इति। (*विचिन्त्य*) उत्त-

---

परिश्रान्तम् (स० तत्पु०) । आर्यस्य पुत्रः=आर्यपुत्रः । प्रशस्तं विशालं वक्षः वक्षःस्थलम् नित्य समास । स्थल शब्द यहां प्रशंसा में प्रयुक्त हुआ है । इस में गण रत्नमहोदधिकार वर्धमान का वचन प्रमाण है । समुद्भिभन्न—रोमाञ्चनिरन्तरम्—सम्+उद्+√भिद्,+क्त। समुद्भिभन्नैः रोमाञ्चः निरन्तरम् (सुप्सुपा)। उपहृतम्—उप+√हृ (भ्वा० उ०)+क्त, प्र० ए० । प्रत्यासन्न—प्रति+आ+√सद्+क्त । सम्भावयसि - सम्+भू+णिच्, लट् म० ए० । चिरजीवितायाः—चिरं जीवति इति चिरजीविनी (सीता, तस्या भावः चिरजीविता, तस्याः ।

(सूंघ कर) प्रसन्नता का विषय है कि आर्य पुत्र का उत्तरीय चन्दनादि की सुगन्ध से अछूता है। रघुवंशी सर्वतोभावेन सत्य प्रतिज्ञ हैं। (ओढ़ कर) अहो, प्रिय के सम्पर्क के कारण [के-समान] स्पर्श वाला (यह उत्तरीय) ओढ़ने से मेरा सारा शरीर, आर्यपुत्र के वक्षःस्थल पर विश्राम करने के समान, रोमाञ्च-विचित हो गया है ।

राम—(*विस्मय से*) क्योंकि यह उत्तरीय पृथ्वी पर गिरने से पहले किसी ने पकड़ लिया अतः मैं समझता हूँ कि मेरा मनोरथ

रीयापहारो जलच्छायायां दृश्यते, न सीता, किमेतत् ? भवतु सिद्धाश्रमवासिभ्यो जनेभ्योऽस्याः प्रभावो भविष्यति। तत्को नु खल्वस्याः प्रत्यासन्नदर्शनेऽभ्युपायः। अयि वैदेहि ! न किञ्चित् स्मरसि कस्यचित् पूर्ववृत्तान्तस्य, यन्मामेवं दर्शनमात्रेणापि न सम्भावयसि।

सी०—अद्यापि कीदृशः पूर्ववृत्तान्तः ?

अज्जवि कीदिसो पुव्ववुत्तन्तो ?

रा०—*अविदितमनुसृत्य चित्रकूटे*
सुतनु सुमापचयाय निर्गतां त्वाम्।
कुसुममपचितं विकीर्य भूमौ
स्मरसि रसेन मया धृतं पटान्तम्॥ १२॥

अन्वय—सुतनु ! चित्रकूटे सुमापचयाय निर्गतां त्वाम् अविदितम् अनुसृत्य अपचितं कुसुमं भमौ विकीर्य मया रसेन धृतं पटान्तं स्सरमि॥ २१॥

व्याकरण—प्रत्यासन्नदर्शने—प्रत्यासन्नं यद् दर्शनं तस्मिन्। कस्यचित् स्मरसि—सम्बन्धवात्र में षष्ठी। दर्शनमात्रेण—दर्शनमेव दर्शनमात्रम्।

शीघ्र पूरा हो जायगा। (सोचते हुए) उत्तरीय के अपहरण का प्रतिबिम्ब जल में दीखता है (पर) सीता नहीं, यह क्या ? तो यह उसकी आश्रमवासी सिद्ध तपस्वियों से प्राप्त शक्ति का प्रभाव होगा। तो इसे पास से देखने का क्या उपाय हो सकता है ? ऐ सीते। क्या तुझे कोई पिछली घटना अणुमात्र भी याद नहीं जो कि इसप्रकार दर्शनमात्र से भी मेरा अभिनन्दन नहीं करती।

सीता—आज पिछली घटनाओं से क्या अभिप्राय ?

सी०—(विहस्य) साहसिक, अत एव दूरे परिह्रियसे ।

साहसिअ अदो एव्व दूरे परिहरिअसि ।

रा०—कथं न किञ्चिदपि प्रतिवचनं प्रयच्छति ?

सी०—आसन्ना मम दिवसावसानवेला । न युक्तं चैतदवस्थां गतमार्य-

आसण्णा मम दिअहावसाणवेला । ण जुत्तं अ एतावत्थं गदं अअ-

व्याकरण—सुमापचयाय—सुमानां अपचयाय (ष० तत्पु०) निर्गतां — निर् + √गम् + क्त, द्वि० ए० अविदितम्—क्रिया वि० । अनुसृत्य—अनु + सृ + ल्यप् । अपचितम्—अप + √चि (चुनना + क्त, प्र० ए० । विकीर्य वि + √कृ (बिखेरना + ल्यप् । धृतम्—√धृ + क्त, प्र० ए० ॥ २१ ॥

आसन्न – आ + √सद् स्वा० + क्त, प्र० ए० । दिवसानवेला—दिवसावसानस्य वेला (ष० तत्पु०) देवता द्वितीयः यस्य तम्, एकाकिनम् इत्यर्थ । कृत्वा—√कृ + क्त्वा । अपक्रीतुम्—अप + √क्रम् + तुमुन् । अन्विष्यन्—अनु + √इष् (दिवा०) + शतृ, प्र० ए० । कौतूहलसमावेशनिक्षिप्तलोचनः—कौतूहलस्य समावेशेन निक्षिप्तं लोचने यस्य सः (बहुव्री०) कौतूहलम् कुतूहल + अण् । कुतूहलमेव कौतूहलम् ।

राम—हे शोभानङ्गि ! (क्या तुम्हें) स्मरण है कि चित्रकूट (पर्वत) पर फूल बीनने के लिए जाने पर चुपके से तुम्हारा पीछा करके बीने हुए फूल पृथ्वी पर बिखेर कर मैंने अति प्रेम से (तुम्हारा) आंचल पकड़ा था ॥ २१ ॥

सीता—(मुस्करा कर) अरे अविनीत ! इसी लिए तो तुझे दूर रखा है।

राम—कुछ भी उत्तर क्यों नहीं देती ?

सीता—सायंकाल होने को है। इस दशा में आर्य पुत्र को [बिल्कुल अकेले छोड़ कर चले जाना उचित नहीं । तो क्या करूँ ।

इधर उधर देखकर)

प्रसन्नता की बात है कि प्रियसखा कौशिक उत्सुकतापूर्ण

पुत्रं देवताद्वितीयं कृत्वापक्रमितुम् । तत् किमत्र करिष्यामि।
उत्तं देवदादुदिअं कदुअ अपक्कमिदुं । ता किं एत्थ करइस्सं ।
(*दिशोऽवलोक्य*) दिष्ट्या एष प्रियवयस्यः कौशिकः किमप्यन्वि
दिट्टिआ एसो पिअवअस्सो कोसिओ किंवि अण्णे
ष्यन्निव कौतूहलसमावेशानिक्षिप्तलोचन इत एवागच्छति ।
संतो विअ कोदूहलसमावेसणिक्खित्तलोअणो इदो एव्व आअच्छइ,
तदपसरामि । (*निष्क्रान्ता*)
ता ओसरिस्सं ।

(*ततः प्रविशत्यन्वेषमभिनयन् विदूषकः*)

वि०—कुत्र नु खलु तत्रभवान् भविष्यति राजा । (*परिक्रम्यावलोक्य च*)
कहिं णु खु तत्तभवं भविस्सदि राआ
एष प्रियवयस्यश्चिन्ताकुल इव निभृतमनोहरयाऽऽकृत्या दीर्घि
एसो पिअवअस्सो चिन्ताउलो विअ णिहुदमणोहराए आकिदीए दीहि
कातीरमलङ्करोति । तदुपसर्पामि । (*उपसृत्य*) जयतु भवान्।
आतीरं अलंकरेइ, ता उवसप्पिस्सं । जेदु भवं ।

रा०—(*विलोक्य*) दिष्ट्या प्रियवयस्यः कौशिकः प्राप्तः । वयस्य कौशिक ! कुतो भवान् ?

दृष्टि से कुछ ढूँढता सा हुआ इधर ही आ रहा है, सो (मैं) चलती हूं । (चल जाती है)

(ढूँढने का अभिनय करते हुए विदूषक का वेश)

विदूषक—पूज्य महाराज कहाँ होंगे ? (घूम कर तथा देखकर) चिन्ता-ग्रस्त सा यह प्रिय मित्र (अपनी) शांत और मनोरम आकृति से बावड़ी के तट को विभूषित कर रहा है । (समीप जा कर) महाराज की जय हो ।

राम—(देख कर) आनन्द का विषय है कि प्रिय मित्र कौशिक आ गया

वि०—अद्य सूर्योदयात्प्रभृति मम त्वामन्वेषमाणस्य सकलो दिवसो-
अज्ज सूरोदअप्पहुदि मम तुमं अण्णेसमाणस्स संअलो दिअहो
ऽतिक्रान्त :।
अदिक्कंदो।

रा०—किङ्कृतोऽयमस्मदन्वेषणे भवतः प्रयासः ?

वि०—श्रुतं मया प्राभातिके समयेऽतिमुक्तमण्डपाभ्यन्तरे प्रच्छन्न-
सुदं मए पहादए समए अदिमुत्तमंडपब्भंतरे पच्चण्ण
स्थितेन विस्रब्धप्रवृत्तसङ्कथानां मुनिकन्यकानामप्सरसामपि
ट्ठिदेण विस्सद्धपउत्तसंकहाणं मुणिकण्णआणं कच्चारणं वि

व्याकरण—अतिमुक्तमण्डपाभ्यन्तरे—अतिमुक्तानां मंडपस्य अभ्यन्तरे (ष० तत्पु०)। प्रच्छान्नस्थितेन— प्रच्छन्नं यथा स्यात् तथा स्थितेन। प्रच्छन्न—प्र०+√छद् (ढांपना)+क्त। स्थितेन—√स्था+क्त, तृ० ए०। विस्रब्ध—वि+√स्रम्भ् (विश्वास करना) + क्त। विस्रब्धं प्रवृत्ताः संकथाः यासां ताः

है। मित्रवर कौशिक ! आप कहाँ से (आए हो) ?

विदूषक—सूर्योदय से लेकर आपको ढूँढते २ आज सारा दिन निकल गया।

राम—किस उद्देश्य से आप ने मुझे ढूँढने को इतना परिश्रम किया।

विदूषक—(आज) उषा काल में अति मुक्त [माधवी, वासन्ती] लता के कुञ्ज में छिप कर खड़े मैंने विश्वस्त हो बातें करती हुई मुनिकन्याओं तथा अप्सराओं के मुख से कहा हुआ तपोवन का एक रहस्य सुना है। और वह तुम्हारे लिए शुभ है। हृदय में स्थित (वह रहस्य) गर्भ के समान

मुखतः किमपि तपोवनरहस्यं मन्त्र्यमाणाम् । तत् तव च
मुहादो किंवि तवोवणरहस्सं मंतिअमाणं । नं तुह अ
प्रियमासीत् । अभ्यन्तरस्थितमिव गूढगर्भमधिकतरं बाधते ।
प्पिअं आसी । अब्भंतरट्ठिदं विअ गूढगब्भं अहिअदरं बाहेइ ।

रा०—कीदृशं तपोवनरहस्यम् ?

वि०—भोः किं न जानासि तत्रभवती—
भो किं ण जाणासि तत्तहोदी—

रा०—(*कर्णौ पिधाय*) स्त्रीसम्बद्धमेव रहस्यम्, तदलमनेन श्रुतेन ।

वि०—मा बिभीहि रामवयस्यः खल्वहम् । न जानासि तत्रभवतीं
मा भयाहि, रामवअस्सो खु अहं । ण जाणासि तत्तहोदिं
पुराणस्वर्गदासीम्—
पुराणसग्गदासिं ।

तासाम् । मन्त्र्यमाणाम् = √मन्त्र् चुरा० णिच् (कर्मवाच्य) + शानच्, द्वि० ए० । रहस्य—रहसि भवम् । अभ्यन्तरस्थितम्—अभ्यन्तर स्थितम् (स० तत्पु०) ।

(मुझे) बहुत कष्ट दे रहा है ।

राम—तपोवन का रहस्य कैसा ?

विदूषक—अरे, क्या तुम जानते नहीं कि पूज्या—

राम—(कान बन्द करके) वह रहस्य किसी स्त्री से सम्बन्धित है, (मुझे) न सुनना चाहिए ।

विदूषक—डरो मत, मैं आपका मित्र ही हूँ । क्या स्वर्ग की उस देव-दासी [अप्सरा] को नहीं जानते ?

रा०—(*आत्मगतम्*) देवगणिकासम्बद्धैषा कथा, न कश्चिद्दोषस्तदाकर्णने। (*प्रकाशम्*) कतमासौ पुराणस्वर्गदासी किमुर्वशी किं तिलोत्तमा।

वि०—न जानामि किं तिलोत्तमा सिलोत्तमेति। सा किल तत्रभवत्या-
ण आणामि किं तिलुत्तमा सिलुत्तमोत्ति। सा किल तत्तहोदीए
श्चिरकालवियुक्ताया विदेहराजतनयायाश्चरितमनुष्ठाय प्रिय-
चिरकालविउत्ताए विदेहराअतणआए चरिदं अणुच्चिट्ठिय पिअ-
वयस्यमुपहसितुमिच्छति।
वयस्सं उपहासदुं इच्छइ।

व्याकरण—चिरकालवियुक्तायाः—चिरकालं वियुक्तायाः (द्वि० तत्पु०) वियुक्ताया;—वि+युज्+क्त, ष० ए०। विदेहराजतनयायाः—विदेहानां राजा, विदेहराजः (ष० तत्पु०)। विदेहराजस्य तनयायाः (ष० तत्पु०)। अनुष्ठाय—अनु+√स्था+ल्यप्। उपहसितुम्—उप+√हस् भ्वा०+तुमुन्। उपलक्षितम्—उप+√लक्ष्+क्त, प्र० ए०। दृश्यमाने—दृश् (कर्मवाच्य)+शानच् स० ए०। असम्भाव्यम्—न+सम्+√भू+यत्।

राम—(अपने आप) यह देवदासी से सम्बन्धित घटना है, इस के सुनने में कोई दोष नहीं। (प्रकट) कौन सी देवदासी, उर्वशी अथवा तिलोत्तमा?

विदूषक—(मैं) तिलोत्तमा सिलोत्तमा (कुछ) नहीं जानता। चिरकाल से वियुक्त देवी सीता का अभिनय करके आपका उपहास करना चाहती है।

राम—(अपने आप) बहुत बुरा हुआ! (आर्य) कौशिक ने ठीक समझा है। अन्यथा प्रिया के समीपता सूचक चिह्न

रा०—(आत्मगतम्) कष्टं ! सम्यगुपलक्षितं कौशिकेन । अन्यथा हि दृश्यमाने प्रियासन्निधानाभिज्ञाने स्वयं न दृश्यत इत्यसम्भाव्य-मेतन्मानुषीषु । सर्वथा वञ्चितोऽस्मि कामरूपिण्या तिलोत्तमया ।

तृषितेन मया मोहात् प्रसन्नसलिलाशया ।
अञ्जलिर्विहितः पातुं कान्तारमृगतृष्णिकाम् ॥२२॥

(*उत्तरीयमवलोक्य*) कथमुत्तरीयमपि निर्मितमतिमायाविन्या । अहो परवञ्चनायमतिमहन्नैपुणम् ।

वि०—भो वयस्य ! विलक्षमुख इव दृश्यसे । किं तया वञ्चितोऽसि ?
भो वयस्स । विलक्खमुहो विअ दीससि । किं ताए वंचिदोसि ?

अन्वय—तृषितेन मया प्रसन्नसलिल-आशया मोहात् कान्तार-मृगतृष्णिकां पातुम् अञ्जलिः विहितः ॥ २२ ॥

व्याकरण—मृगतृष्णिका – मृगाणां तृष्णा, संज्ञायां कन् ॥२२॥
अतिमायाविन्या—अतिशयेन मायाविनी (मायिनी), तया । माया + विन्, माया अस्या अस्ति इति मायाविनी । नैपुणम् =निपुणस्य भावः । अण् ।

दिखलाई देते हुए वह स्वयं न दिखाई दे, यह मानुषियों के विषय में असम्भव है । कामरूपिणी [यथाभिलषित रूप धारण करने वाली] तिलोत्तमा ने मुझे बड़ा धोखा दिया है ।

निर्मल जल की आशा से, मुझ प्यासे ने मोहवश वन में मृग-मरीचिका को पीने के लिए अञ्जलि बना ली ॥२२॥

(उत्तरीय को देखकर) क्या जादूगरनी ने उत्तरीय भी बना लिया । दूसरों को ठगने में बड़ी कुशल है ।

विदूषक—मित्रवर ! संक्षुब्ध से दिखाई देते हो । क्या उस

रा०—वञ्चितः कृतोऽस्मि ।

वि०—किं मया श्रुतं रहस्यमन्यथा भवति ?

किं मए सुदं रहस्सं अण्णहा होदि ?

(नेपथ्ये)

सन्ताप्य लोकमखिलं निरवग्रहेण
तीव्रो नरेश्वर इव प्रथमं स्वधाम्ना ।
सोऽयं वयः परिणतेरिव शान्ततेजाः
सायं मृदुर्भवति तिग्मरुचिः क्रमेण ॥ २३ ॥

अन्वय—सः अयं तिग्मरुचिः निरवग्रहेण स्वधाम्ना तीव्र नरेश्वर इव प्रथमं अखिलं लोकं सन्ताप्य सायं वयः परिणते इव शांत-तेजाः क्रमेण मृदुः भवति ॥२३॥

व्याकरण—तिग्मरुचिः—तिग्माः रुचयः यस्य सः (वहुव्री०) । निरव-ग्रहेण—निर्गतः अवग्रहः (प्रतिबन्धः) यस्मात् तेन (वहुव्री०) । धाम्ना—धामन्, (नपुं तृ० ए० । सन्ताप्य—सम्+√तप्+णिच्+ल्यप् । वयःपरिणतेः—वयसः परिणतेः पञ्चमी । शांन्ततेजाः—शान्तं तेजः यस्य सः (बहुव्री०) ॥२३॥

सो धोखा खा गए ?

राम—हां ! धोखे में फंस गया ।

विदूषक—मेरे द्वारा सुना हुआ रहस्य असत्य कैसे हो सकता है ।

(नेपथ्य में)

वह यह सूर्य अपने प्रचंड तेज से, पहले समस्त लोक को सन्तप्त करके, सायंकाल को मानों बुढ़ापा आ जाने से शान्त तेज वाला होकर क्रमशः ऐसे कोमल हो रहा है जैसे उग्र-प्रताप से समस्त जगत् को सन्तप्त करके वृद्धा-वस्था में शान्त स्वभाव वाला हो कर कोमल हो जाता है ॥ २३ ॥

रा०—(निर्वर्ण्य) अस्तं गच्छति भगवान् दिवाकरः ।

प्रियजनरहितानामङ्गुलीभिर्वधूना-
मवधिदिवससङ्ख्याप्रुताभिः सहैव ।
व्रजति किरणमालिन्यस्तमेकैकशोऽस्मिन्
सरसकमलपत्रश्रेणयः सङ्कुचन्ति ॥ २४ ॥

व्याकरण—काकपक्षपरिभूषितम्—काकपक्षैः परिभूषितम् (तृ० तत्पु०)। प्रेक्ष्य—प्र + √ईक्ष् + ल्यप्। ध्रियमाणे—√धृ (कर्मवाच्य) + शानच्, स०ए०। अलङ्कुर्वन्तौ—अलम् + √कृ + शतृ प्र० द्वि०। अभूताम्—√भू, लुङ्, प्र० द्वि०। परिपृष्टौ—परि + √पृच्छ् + क्त, प्र० द्वि०।

अन्वय—अस्मिन् किरणमालिनि अस्तं व्रजति सरसकमल-पत्र-श्रेणयः प्रियजन-रहितानां वधूनाम् अवधि-दिवस-संख्या-व्यापृताभिः अंगुलीभिः सह एव एक-एकशः संकुचन्ति ॥ २४ ॥

व्याकरण—व्रजति—√व्रज् + शतृ, सतिसप्तमी। सरसकमलपत्र-श्रेणयः—सरसां कमलपत्राणां श्रेणयः। प्रियजनरहितानाम्—प्रियजनैः रहितानां (तृ० तत्पु०)। अवधिदिवससंख्याव्यापृताभिः—अवधेः दिवसाः तेषाम् अवधि-दिवसानां संख्यायां गणनायां व्यापृताभिः (स० तत्पु०)। संकुचन्ति—सम् + √कुच्, तुदा० लट्, प्र० ब० ॥ २४ ॥

राम—(देख कर) सूर्य भगवान् अस्त हो रहे हैं।

इस सूर्य के अस्ताचल को जाने पर कमलों की कोमल पंखुड़ियां प्रियतमों से वियुक्त कामिनियों की (वियोग की) अवधि के दिन गिनने में लगी हुई अंगुलियों के साथ साथ एक एक करके संकुचित हो रही हैं ॥ २४ ॥

तथा च—

अपि च,—

आकर्षात् प्रग्रहाणां नियमितगतयो नोदितास्तोत्रपातै-
र्नैव स्थातुं न यातुं सचकितचरणाः सारथेः पारयन्तः
दुर्विन्यस्तैः खुराग्रैर्विषमपरिसरादस्तशैलस्य शृङ्गा-
दृगाहन्ते वारिराशिं कथमपि विधुरा वाजिनस्तिग्मरश्मेः ॥ २५ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति चतुर्थोऽङ्कः

अन्वय—सारथेः प्रग्रहाणां आकर्षात् नियमित-गतयः तोत्र पातैः नोदिताः न स्थातुं नैव यातुं पारयन्तः, सचकित—चरणाः विधुराः तिग्मरश्मेः वाजिनः दुर्विन्यस्तैः खुराग्रैः अस्ताचलस्य विषम-परिसरात् शृङ्गात् कथम् अपि वारिराशिं गाहन्ते ॥ २५ ॥

व्याकरण—नियमितगतयः— नियमिता गतिः येषां ते (बहुव्री०)। तोत्रपातैः—तोत्रस्य पातैः। नोदिताः—√नुद् (प्रेरित करना णिच् + क्त + प्र० ब०। सचकितचरणाः—सचकिताः चरणाः येषां ते (बहुव्री०)। विषम-परिसरात् विषमः परिसरः यस्य तस्मात्। स्थातुम्—√स्था + तुमुन्। यातुम्—√या + तुमुन्। शृङ्गात्—'ल्यब्लोपे कर्म व्युपसंख्यानम्' इस वार्तिक से यहां पञ्चमी हुई। 'शृङ्गं परित्यज्य' यह अर्थ है ॥ २५ ॥

सारथि द्वारा रासों के खींचने से गति के नियन्त्रित किए जाने से (तथा साथ ही) चाबुक लगा कर (दौड़ने को) प्रेरित किए जाने से न ठहरने और चलने में समर्थ, कांपते हुए पैरों वाले, सूर्य के दुखी घोड़े, खुरों के उलटे सीधे रखे जाने के कारण, अस्ताचल की ऊबड़ खाबड़ चोटी से बड़ी कठिनता से समुद्र में उतर रहे हैं ॥ २५ ॥

(सब निकल जाते हैं)

चतुर्थ अङ्क समाप्त

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विदूषकः)

वि०—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आसन्नस्तपोधनानां सम्पातसमयः, तत्
आसराणा तपोधणाणं संपातसमओ, ता

त्वरतु भवान् ।
तुवरेदु भवं ।

(ततः प्रविशति रामः)

रा०—*सवनमवसितं हुतं कृशाना-*
वुदयगतः समुपासिता विवस्वान् ।

अन्वय—सवनम् अवसितं, कृशानौ हुतम्, उदयगतः विवस्वान् समुपासितः, इति वासरादौ विधिं अवसाय्य अहं नियमधनान् प्रणन्तुम् आगतः ॥१॥

व्याकरण—अवसितम्—अव + √षो (समाप्त करना) (दिवा०) + क्त, प्र० ए० । कृशानौ—कृश्यति–कर्शयति हुतान्पदार्थान् इति कृशानुः तस्मिन् । हुतम्—√हु + क्त, प्र० ए० । अवसाय्य—अव + √षो + णिच् + ल्यप् । णिच् के विना 'अवसाय' रूप होगा । नियमधनान्—नियमाः धनं येषां तान्

पञ्चम अङ्क

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—(नेपथ्य की ओर देख कर) तपस्वियों के एकत्र होने का समय हो गया है अतः आप शीघ्रता कीजिए ।

(राम का प्रवेश)

इति विधिमवसाय्य वासरादौ
नियमधनानहमागतः प्रणन्तुम् ॥ १ ॥

वि०—एतदास्थानमण्डपम्, प्रविशतु भवान् ।
एदं अत्थाणमंटपं, पविसदु भवं ।

रा०—*(प्रविष्टकेन चिन्तां नाटयन्)*
आ ! आश्चर्यमस्माकं किं वृत्तमतीतेऽहनि ?
अतिप्रसादादसतीव तस्मिन्
दृष्टा मया वारिणि पंकजाक्षी ।

(बहुव्री०) । अपि वा नियमशब्देन तपो लक्ष्यते । नियमः तपः धनं येषां ते । प्रणन्तुम्—प्र+√नम्+तुमुन् ॥१॥

कठिन शब्दार्थ— सवन— स्नान । अवसितम्—समाप्त कर लिया । कृशानौ—अग्नि म । हुतम्—आहुतियां डाल दी । विवस्वान्—सूर्य । वासर (पुं०, नपुं०)—दिन । नियमधनान्—तपस्वियों को ॥१॥

अन्वय—अति प्रसादात् असति इव तस्मिन् वारिणि लम्बालकं पाण्डुर-पीन-गण्डं प्रसाद-रम्यं वदनं वहन्ती पंकजाक्षी मया दृष्टा ॥

व्याकरण—असति—न+√अस्+शतृ, स० ए० । लम्बालकम्—लम्बाः अलकाः यत्र तत् (बहुव्रीहि) पाण्डुरपीनगाण्डम्—पाण्डुरौ पीनौ गण्डौ यस्य तत् (बहुव्री०) । प्रसादरम्यम्—प्रसादेन रम्यम् (तृ० तत्पु०) ।

राम—स्नान कर लिया है, हवन (भी) कर लिया है (तथा) उदित सूर्य की उपासना भी कर ली है। इस प्रकार दिन के प्रारम्भ की विधि समाप्त करके, मैं तपस्वियों को प्रणाम करने आया हूँ ॥१॥

विदूषक—यह है सभा-मण्डप, आप भीतर चलिए ।

लम्बालकं पाण्डुरपीनगण्डं
प्रसादरम्यं वदनं वहन्ती ॥२॥

अथवा विलोक्यते तिलोत्तमया कृतोऽयं परिहास इति ।

तस्याः स्वहस्तरचितामिव कुन्दमालां
सादृश्यवन्ति सिकतासु पादानि तानि ।
छायां च देवगणिका विदधातु येन
रामं कथं स्पृशति हस्तपटान्तवातैः ॥३॥

वहन्तीं√वह् + शतृ, प्र० ए० । पंकजाक्षी -पंकजे इव अक्षिणी यस्याः सा (बहुव्री०) । दृष्टा—√दृश् + क्त + टाप् प्र० ए० ॥२॥

कठिन शब्दार्थ—अलक (पुं०)—केश । पाण्डुर (वि०)—पीला। पीन (वि०)—मांसल, मोटा । गण्ड (पुं०)—कपोल । पंकजाक्षी (स्त्री०)-कमल नयनी ॥२॥

अन्वय—येन देवगणिका तस्याः स्वहस्त-रचिताम् इव कुन्द-मालां, सिकतासु सादृश्यवन्ति तानि पदानि, छायां च विदधातु, (परं) हस्त-पटान्त-वातैः रामं कथं स्पृशति ॥३॥

व्याकरण—गणिका—गणयति अर्थं धनम् इति । अर्थ परायणत्वात्तस्याः । स्वहस्तरचिताम्—स्वस्य आत्मनः हस्तेन (ष० त०), स्वहस्तेन रचिताम्

राम—(चिन्ता का प्रदर्शन करते हुए प्रवेश करके) ओह ! आश्चर्य है, कल मेरे साथ क्या बीती ? अत्यन्त निर्मल होने के कारण मालूम ही न होने वाले उस जल में मैंने लम्बी लताओं वाला, सुडोल पीले कपोलों वाला, (परन्तु) प्रसन्नता के कारण मनोरम मुख धारण किए हुए कमलनयनी (सीता) को देखा ॥२॥

अथवा प्रतीत होता है कि तिलोत्तमा ने ही उपहास किया है। जिस कारण [अर्थात् उपहास-निमित्त] अप्सरा सीता के

(*चिन्तां नाटयति*)

वि०—एष सचिन्त इव, अद्य एतदुपविश्य निर्बन्धयिष्यामि। (*उपविश्य*)

एसो सचिन्तो विअ, अज्ज ता उपविसिअ निब्बन्धइस्सम्।

भो भो वयस्य, मा त्वमत्र स्थितः खलु कुत्र स्थितः खलु त्वं

भो भो वअस्स, मां तुमं एत्थ ठिदो खु कहिं ठिदो खु तुमं

नवमेघस्निग्धश्यामलः परिणद्धमुक्ताहारोऽत्यन्तसमुन्नद्धदुरारो

णवमेहसिणिद्धस्सामलो परिणद्धमुत्ताहारा अच्चंदसमुण्णद्धदुरारो-

हाणामिन्द्रनीलमयानां भवनस्तम्भानामन्यतम इव मम हृदय-

हाणं इंदनीलमआणं भवणवकंभाणं अण्णतमो विअ मम हिअअ

(तृ० तत्पु०)। विदधातु— वि + √धा, लोट्, प्र० ए०। संभावना अर्थ में लोट् का प्रयोग। हस्तपटान्तवातैः—हस्ते (धृतस्य) पटान्तस्य वातैः (ष० तत्पु०) ॥३॥

उपविश्य — उप + √विश् + ल्यप्। निर्बन्धयिष्यामि — निर् + √बन्ध् क्र्यादि० + णिच्, लृट् उ० ए०। नवमेघस्निग्धश्यामलः—

समान कुन्दमाला (भले ही बना ले), रेत पर सीता जैसे पदचिह्न (भी चाहे बना ले), (तथा) छाया भी (उसके जैसी) बनाले (परन्तु) हाथ में पकड़े हुए आंचल की पवन से राम को कैसे रोमाञ्चित कर सकती है? ॥३॥

(चिन्ता का अभिनय करता है)

विदूषक—यह चिन्तित से हैं, आज इनके पास बैठकर निर्बन्ध [आग्रह] पूर्वक प्रार्थना करता हूँ। (बैठ कर) हे मित्र! नूतन मेघ के समान स्निग्ध (तथा) श्याम वर्णवाले, मोतियों की माला पहने हुए (तथा) इन्द्रनील मणि के बने हुए अत्यन्त उन्नत एवं दुरारोह से भवन-स्तम्भों में से किसी एक के समान दीखते हुए

विभ्रममुत्पादयसि । तदेतस्य लक्ष्मीनिवासभवनस्य सेवासमय-
विब्भमं उप्पादेसि । ता एदस्स लक्खीणिवासभवणस्स सेवासमअ-
समुपागतसामन्तनरेन्द्रमधुरशब्दोपगीतस्यास्थानदासेरमण्डप-
समुवागदसामंतणरिंदमहुरसद्दोपगीतस्स अत्थाणदासेरमंडप-
पुण्डरीकस्य कर्णिकामण्डल इवैतस्मिन् सिंहासने मधुमथन-
पुण्डरीअस्स कण्णिआमंडले विअ एदस्सिं सिंहासणे महुमहण-

नवमेघ इव स्निग्धः श्यामलः च (कर्मधा०) परिणद्धमुक्ताहारः—परिणद्धः-मुक्तानां हारः येन सः (बहुव्री०)। परिणद्ध—परि+√नह (बांधना)+क्त। अत्यन्तसमुन्नद्धदुरारोहाराम्—अत्यन्तं समुन्नद्धाः (अतएव) दुरारोहाः तेषाम् (बहुव्री०) समुन्नद्ध—सम्+उद्+√नह्+क्त। भवनस्तम्भनाम्—भवनस्य स्तम्भानाम् (ष० तत्पु०)। हृदयविभ्रमम्—हृदये विभ्रमम् (स० तत्पु०)। समारुढस्य—सम+आ+√रुह्+क्त, ष० ए०। उपविष्टः—उप+विश+क्त, प्र० ए०।

कठिन शब्दार्थ—स्निग्ध—चिकना। परिणद्ध—पहने हुए। समुन्नद्ध—ऊँचे। विभ्रम—भ्रम सन्देह। आस्थान— (नपुं०) सभा, आस्थानी शब्द भी नपुं०। दासेर—पुं० सेवक। पुण्डरीक—श्वेत कमल। मधुमथन—मधुसूदन, विष्णु। पितामह—ब्रह्मा। अधिक्षिपन—तिरस्कृत करते हुए। यहां मूल में आस्थानदासेर० पाठ है। यहां 'दासेर' का कुछ अर्थ नहीं जुड़ता। मण्डप का मण्डली अर्थ कर के, जो कभी होता ही नहीं, दास मण्डली को श्वेत कमल का रूप देना अत्यन्त असंगत और उद्वेजक है।

आप कभी यहां कभी अन्यत्र कहीं बैठे हुए मेरे हृदय में भ्रम उत्पन्न करते हो। अतः श्रद्धा समर्पित करने के लिए एकत्र हुए २ सामन्त राजाओं के मधुर शब्दों द्वारा स्तुति किए गये इस "लक्ष्मी निवास" भवन सभा मंडप में

नाभिकमलकर्णिकासमारूढस्य भगवतः पितामहस्य महत्त्वमधि-
णाभिकमलकण्णिआसमारूढस्य भअवदो पिदामस्स महत्तणं अधि-
क्षिपन्नुपविष्टो भव ।
क्खिपन्तो उवविट्ठो होहि ।

रा०—यथाह भवान् । (*उपविश्य चिन्तां नाटयन्*) अद्याहमभिनवसुख-दुःखस्य सचेतन इवास्मि संवृत्तः । (*ध्यानमभिनीय हस्तं च हृदये निवेश्य*)

आसीदियत्सु दिवसेषु निरस्तजाने-
नैराश्यलुप्तमनसो न सुखं न दुःखम् ।
छायादिदर्शनबलादधुना मनो मे
दुःखं सुखञ्च परिगृह्य पुनः प्रसूतम् ॥४॥
(*चिन्तां नाटयति*)

अन्वय—इयत्सु दिवसेषु निरस्तजानेः नैराश्य-लुप्त-मनसः (मम) न सुखम् आसीत् न दुःखम् । अधुना छाया—आदि दर्शनात् सुखं च दुखं परिगृह्य मे मनः पुनः प्रसूतम् इव ॥४॥

व्याकरण—निरस्तजानेः—निरस्ता जाया येन (बहुव्री०), बहुव्रीहि समास मे 'जाया' को 'जानि' आदेश होता है । जायायां निङ—यह विधायक

विराजमान कमल के बीज कोश जैसे इस सिंहासन पर, भगवान विष्णु के नाभि-कमल के बीजकोश पर स्थित ब्रह्मा के महत्त्व को तिरस्कृत करते हुए बैठो ।

राम—जैसे आप कहते हैं । (बैठ कर चिन्ता का प्रदर्शन करते हुए) आज मैं अभिनव सुखों के विषय में जानकारी को प्राप्त हो गया हूँ [अर्थात् मुझे नये सिरे से सुख-दुःख का भान होने लगा है] ।

(चिन्तन का अभिनय करते हुए हाथ हृदय पर रख कर)

वि—(*निर्वर्ण्यात्मगतम्*) अहो ! अस्य साम्प्रतमभिप्रायं लक्षयिष्ये ।
अहो ! से संपदं अभिप्पाअं लक्खाइस्सम् ।
(*प्रकाशम्*) भो राजन्, एते आसनकेसरिणो गुरुतरभारोद्वहन-
भो राअं, एदे आसनकेसरिणो गुरुदरभरुव्वेहण-
जातपरिश्रमा इव मुखविवरविनिर्गतमुक्ताकलापच्छलेन फेन—
जादपस्सिमा विंअ मुहविवरविणिग्गअमुत्ताकलावछलेन फेण-

शास्त्र है । नैराश्यलुप्तमनसः—नैराश्येन लुप्तं मनः यस्य तस्य (बहु०) । निराशस्य भावः—नैराश्यम्—ष्यञ् । परिगृह्य—परि+√ग्रह्+ल्यप् । प्रसूतम्—प्र+√सू+क्त, प्र० ए० । आदि कर्मणि क्तः (कर्तरि) इयत्सु दिवसेषु—इसके स्थान पर यदि कवि अत्यन्त संयोग में द्वितीया का प्रयोग करता तो बहुत अच्छा होता । इयतो दिवसान् ॥४॥

व्याकरण—लक्षयिष्ये—√लक्ष् (चुरा०) (देखना) णिच् लृट्, उ० ए० । गुरुतरभारोद्वहनजातपरिश्रमाः—गुरुतरस्य भारस्य उद्वहनेन जातः श्रमः येषां ते (बहु०) । उद्वमन्ति—उद्+√वम् भ्वा० (उगलना), लट्, प्र० ब० । तर्कयामि—√तर्क (विचार करना), चुरा० लट्, प्र० ब० । उद्वहन्—उद्+√वह् भ्वा०+शतृ, प्र० ए० ।

इन दिनों पत्नी का परित्याग करने पर (उसके जीवन के प्रति) निराश होने के कारण नष्टप्राय चित्त (संज्ञा) वाले (मुझको) न सुख का अनुभव होता था न दुःख का । अब (आज) (सीता की) छाया आदि देख कर दुख वा सुख का अनुभव करने से मेरा मन पुनः जीवित हो उठा है ॥४॥

(चिन्ता का अभिनय करता है)

विदूषक—(देख कर अपने आप) अहो ! अब इस का आशय मालूम करता हूँ । (प्रकट) हे राजन् ! जैसे आसन (उठाने के लिए

धारामुद्वमन्ति, तथा तर्कयामि बाहुयुगलेन पृथिवीं हृदयेन
धारं उव्वमंति, तह तक्केमि बाहूजुअलेन पुढवीं हिअएण
पृथिवीदुहितरमुद्वहन्नतीव गुरुतरः संवृत्त इति।
पुढवीदुहिदरं उव्वहंतो अदीव गुरुअरो संवुत्तोत्ति।

रा० (*आत्मगतम्*) सीताकथामुपक्षिप्य कौशिको नूनं जिज्ञासते; एष बालमित्रम्, तदस्मै यथास्थितं निवेदयामि। (*प्रकाशम्*) वयस्य, अस्त्येतत् स्मराम्यहमविच्छेदेन वैदेहीम्।

वि०—किं दोषत उत गुणतः ?
किं दोसदो आदु गुणदो ?

व्याकरण—उपश्रुत्य—उप + √श्रु + ल्यप्। उप क्षिप्य – यह पाठ ही अधिक संगत है। जिज्ञासते—√ज्ञा + सन्. लट्, प्र० ए०। उज्झित्वा—उज्झ तुदा० + क्त्वा। सीमन्तिन्यः—स्मर्यन्ते – √स्मृ (कर्मवाच्य), लट्, प्र० ब०। सीमन्त आसाम् अस्ति इति। सीम्नोऽन्तः = सीमन्तः। सीम + अन्तः। शकन्ध्वादित्वात् पररूपम्।

बनाए हुए) ये सिंह, अत्यधिक भार उठाने के कारण मानों थके हुए, मुखों से लटकते हुए मोतियों के गुच्छों के के बहाने, झाग की धारा सी उगल रहे हैं, वैसे ही मैं समझता हूँ कि भुजाओं पर पृथ्वी को (तथा) हृदय में सीता को धारण करने से (आप भी) भारीपन अनुभव करने लगे हो।

राम—(अपने आप) सीता की बात प्रारम्भ करके कौशिक निश्चय ही (उसके विषय में) जिज्ञासु है। यह (मेरा) बाल सखा है, अतः इसे वस्तु स्थिति बतलाए देता हूँ। (प्रकट) मित्र! ऐसा ही है, मैं सीता को सतत स्मरण करता रहता हूँ।

विदूषक—दोषों के कारण अथवा गुणों के ?

रा०—न दोषतो नापि गुणतः ।

वि०—एतदुभयमुज्झित्वा कथं सोमन्तिन्यः स्मर्यन्ते ?

एदं उभय उज्झिअ कहं सीमन्तिणीओ सुमरीअंति ?

रा०—अन्यदम्पतीविषय एव कारणानुरोधी प्रेमावेशः, सीतारामयोस्तु न तथा ।

दुःखे सुखेष्वप्यपरिच्छदत्वा—

दसूच्यमासीच्चिरमात्मनीव ।

व्याकरण—अन्यदम्पती विषयः—यह मूल पाठ है। पर यहाँ समास में दम्पती शब्द में दीर्घ की प्राप्ति ही नहीं, विभक्ति का लुक् होने से अन्यौ दम्पती (अन्ये दम्पतयो वा) विषयोऽस्य-यह विग्रह है। कारणानुरोधी—कारणम् अनुरुणद्धि इति ।

अन्वय—तस्यां दोष गुणानपेक्षः निर्व्याजसिद्धः मम भाव बन्धः दुःखेषु सुखेषु अपि अपरिच्छदत्वात् असूच्यं आत्मनि इव चिरं स्थित आसीत् ॥५॥

व्याकरण—निर्व्याजसिद्धः—निर्व्याजं सिद्धः (सुप्सुपा)। दोषगुणानपेक्षः—दोषेषु गुणेषु च अनपेक्षः । अनपेक्षः—अविद्यमाना अपेक्षा यस्य सः (बहुव्री०)। असूच्यम् न+√सूच्+ण्यत्, क्रिया वि० ।५।

कठिन शब्दार्थ—भावबन्धः—गाढ प्रेम। अपरिच्छद—अनावृत न ढाँपा हुआ, स्पष्ट । निर्व्याजसिद्ध -अहेतुक । जो व्याज=निमित्त के बिना ही विद्यमान है।

राम—न दोषों के न गुणों के ।

विदूषक—इन दोनों (कारणों) के अतिरिक्त स्त्रियों को (और) किस कारण स्मरण किया जाता है ?

राम—अन्य दम्पतियों का प्रेम कारण पर आश्रित होता है, सीता-राम के विषय में ऐसा नहीं ।

तस्यां स्थितो दोषगुणानपेक्षो
निर्व्याजसिद्धो मम भावबन्धः ॥५॥

वि०—मा त्वम् वैदेहीमलीकमधुरवचनैरस्मादृशं वञ्चयसि । स
मा सुमं वेदेहि अलिअमहुरवअणेहिं अंहारिसं वंचेसि । सो
खलु त्वं देवीमन्तरेण—
खु तुमं देविं अन्तरेण—

रा०—नैवमध्यवसितं—एकान्ते सीतानिरपेक्षो राम इति ।

अन्तरिता अनुरागा भावा मम कर्कशस्य बाह्येन ।
तन्तव इव सुकुमाराः प्रच्छन्नाः पद्मनालस्य ॥६॥

व्याकरण—देवीमन्तरेण—अन्तरा, अन्तरेण के योग में द्वितीया होती है । 'अन्तरेण' का यहाँ 'विषय में' ऐसा अर्थ है, जैसा कि कालिदास आदि में अनेकत्र ।

अध्यवसितम् – अधि+अव +सो दिवा०+क्त । 'एकान्ते' के स्थान पर यदि 'एकान्तेन' होता तो अच्छा होता ।

अन्वय—बाह्येन कर्कशस्य मम अनुरागभावाः पद्मनालस्य सुकुमाराः प्रच्छन्नाः तन्तवः इव अन्तरिताः ॥६॥

सीता के प्रति मेरा गाढ प्रेम दोष-गुण की अपेक्षा न रखने वाला तथा अहेतुक था और सुख और दुःख दोनों में आवरण न होने से मानो अपने में ही अकथनीय रुप से चिर काल तक स्थित रहा ।५॥

विदूषक—सीता के समान हमें भी मीठे मीठे परन्तु असत्य वचनों से मत ठगो । निश्चय ही सीता के विषय में—

राम—यह सर्वथा असत्य है कि राम सीता के प्रति अत्यन्त उदासीन है ।

ऊपर से कठोर मुझ राम की प्रेम पूर्ण चित्तावस्था (कठोर) कमल नाल के भीतर विद्यमान कोमल तन्तुओं के समान छिपी

वि०—त्वमतिप्रबलेन हृदयसन्तापेन वडवानलेनेव भगवान् महासमुद्र
तुमं अदिप्पवलेण हिअअसंदावेण वडवाणलेण विअ भअवं महासमुद्दो
आत्मनो महत्त्वेन परिहीयसे, अहं पुनः स्वभावलघुतया देव्याः
अत्तणो महत्तणेन परिहीअसि, अहं उण सहावलहुदाए देवीए
सीताया गतिं स्मृत्वा दावानलेनेव तुषारबिन्दुर्निरवशेषं परि-
सीताया गइं सुमरिअ दावाणलेण विअ तुषारबिंदु णिरवसेसं परि
शुष्कामि, तत् परित्रायस्व माम् (*इति रोदिति*)
सुस्सामि, ता परित्ताएहि मं।

व्याकरण—वाह्येन—प्रकृत्यादित्वात् तृतीया। अन्तरिताः—अन्तर-वतः करोति इति अन्तरयति, णिच्, मतुब्लुक। 'अन्तरि' इस ण्यन्त धातु से 'क्त' होने पर 'अन्तरित' रूप सिद्ध होता है॥६॥

परिहीयसे—परि + √हा (छोड़ना) कर्मवाच्य, लट्, म० ए०। परिशुष्यामि—परि + √शुष् दिवा० (सूखना), लट्, उ० ए०। परित्रायस्व—परि + √त्रै भ्वा० आ० लोट् म० ए०। प्रतिषिद्धः—प्रति + √सिध् + क्त, प्र०ए०। दुर्विज्ञाप्यः—दुर् + वि + √ज्ञा + णिच् + यत्। अनाश्रवाः—न आश्रबाः; आ + श्रु + अच्, प्र० ब०। बचने स्थिताः—कहना मानने वाले।

रहती है। अर्थात् ऊपर से यद्यपि मैं कठोर हूँ परन्तु मेरा हृदय कोमल है तथा सीता के प्रेम से भरा हुआ है॥६॥

विदूषक—जैसे बडवानल से (सुखाए जाने पर भी) महा समुद्र का महत्त्व घटता नहीं वैसे ही हृदय के (तीव्र) सन्ताप से (आक्रांत होने पर भी आपका महत्त्व कम नहीं हो रहा, मैं तो स्वभाव से कातर होने के कारण देवी की दुर्दशा का ध्यान करने पर, दावानल से सूख जाने वाली ओस

रा०—यदि त्वं स्मरणयोग्यां सीतामवगच्छसि कस्मादहं तत्परित्याग-प्रवृत्तस्तदा न प्रतिषिद्धः ?

वि०—प्रसादसुमुखोऽपि राजा दुर्विज्ञाप्यः सेवकैः, किं पुनः कोप-भीषणः।

पसादसुमुहो वि राआ दुव्विण्णव्वो सेवएहिं, किं उण कोव-भीसणो।

रा०—*वयस्य, नहि मादृशास्तादृशीं कोपावस्थामवगाहन्ते यस्यां वर्तमानायां सुहृदामनाश्रवाभवन्ति।*

व्याकरण—प्रसाद सुमुखः—प्रसादेन सुमुखः शोभनं मुखं यस्य सः सुमुखः। भीषणः—भीषयते इति भीषणः।

अधिकप्रवृत्ततेजाः—अधिकं प्रवृत्तं तेजः यस्य सः बहुव्री०। गुणनिहितैः—निहितगुणैः निहिताः गुणाः येषु, तैः (बहुव्री०), आहिताग्न्यादित्वान्निष्ठायाः परनिपातः। निवारणीयः—नि + √वृ (हटाना) + अनीयई, प्र० ए०। अभितपन्—अभि + √तप् + शतृ, प्र० ए०। व्यपनीयते—वि + अप + √नी (कर्मवाच्य), लट्, प्र० ए० ॥७॥

की बूंद के समान सर्वथा क्षीण हो रहा हूँ, अतः मुझे बचाओ। (रोता है)

राम—यदि तुम सीता को स्मरणीय समझते हो तो उसका परित्याग करते समय मुझे रोका क्यों नहीं ?

विदूषक—प्रसन्न मुख राजा को भी सेवक (कोई) निवेदन नहीं कर सकते, क्रोध से विकराल (रूप धारण किए राजा के) विषय में तो कहना ही क्या।

राम—मित्रवर, मेरे जैसे (व्यक्ति) क्रोध की उस दशा को प्राप्त नहीं होते जिसमें (वह) मित्रों की बात ही न सुनें।

नरपतिरधिकप्रवृत्ततेजा गुणनिहितैः सचिवैर्निवारणीयः ।
भुवनमभितपन् सहस्ररश्मिर्जलगुरुभिर्व्यपनीयते हि मेघैः ॥ ७ ॥

वयस्य, वर्तमाना सीताकथा द्वयोः सन्तापकारिणी । तद्गच्छ अत्याहारभूमिम्, समाज्ञापय दौवारिकान्—समासन्नस्तपोधनानां सम्पातसमयः, तस्मात्सम्भृतवेत्राणि सर्वद्वाराणि क्रियन्ताम् ।

वि०—भो राजन्, कीदृशाः पुनरेते कन्दमूलफलाशिनो वल्कलपरि-
भो राअ कीस उण एदे कंदमूलफलासिणो वक्कलपरि-

अन्वय—अधिक प्रवृत्ततेजाः नरपतिः गुणनिहितैः सचिवैः निवारणीयः । भुवनम् अभितपन् सहस्ररश्मिः जलगुरुभिः मेघैः व्यपनीयते हि ॥७॥

व्याकरण—सीताकथा—सीतायाः कथा (ष० तत्पु०) । सन्तापकारिणी—सन्तापं करोति इति । (उपपद समास) । समाज्ञापय—सम् + आ + √ज्ञा + पुक् + √णिच, लोट्, म० ए० दौवारिकान्—द्वारे नियुक्ताः दौवारिकाः तान् । तत्र नियुक्त इति ठक् । समासन्नः—सम् + आ + √सद् + क्त, प्र० ए० । क्रियन्ताम् —√कृ (कर्मवाच्य), लोट्, प्र० ए० ।

अधिक प्रचंडता (से व्यवहार करने वाले) राजा को गुणवान् मन्त्रियों द्वारा (प्रजा-पीडन आदि से) रोके जाना उचित है। संसार को तपाते हुए सूर्य को सलिल पूर्ण मेघ ढक ही लेते हैं ॥७॥

मित्रवर, सीता की वर्तमान कथा [दशा] हम दोनों के लिए संताप-जनक है। प्रवेश द्वार पर जाओ (तथा) द्वारपालों को आज्ञा दो—"तपस्वियों के आगमन का समय निकट है अतः सब द्वारों पर दण्ड धारण करके खड़े हो जावें।"

विदूषक—राजन् ! ये कन्द मूल-फल भोगी, वल्कलधारी (तथा) अत्युच्च दण्डधारी (तपस्वी) कैसे (व्यक्ति हैं, जिनका) इस

धाना उद्दण्डदण्डधारा ईदृशेनाचारेण सम्भाव्यन्ते ।

धाणा उद्दडदंडधारा ईरिसेण आआरेण संभाविअन्ति ।

रा०—अस्थानेऽयमत्रभवतः सन्देहः । ननु मूलस्वयोगमूलसकल-पुरुषार्थसंवेदिनी ज्ञाननिष्पत्तिः । पश्य—

ज्योतिः सदाभ्यन्तरमाप्तपादै-
रदीपितं नार्थगतं व्यनक्ति ।
नालं हि तेजोऽप्यनलाभिधानं
स्वकर्मणे मारुतमन्तरेण ॥ ८ ॥

अन्वय—सत् आभ्यन्तरं ज्योतिः आप्तपादैः अदीपितं (सत्) अर्थगतं न व्यनक्ति । हि अनलाभिधानं तेजः मारुतम् अन्तरेण स्वकर्मणे अलम् न ॥८॥

कन्दमूल फलाशिनः—कन्दाः च मूलानि च फलानि च इति कन्द मूल फलानि तानि अशितुं शीलं येषां ते (उपपद समास) । बल्कलपरिधानाः—वल्कलं परिधानं येषां ते (बहुव्री०) । सम्भाव्यन्ते—सम् √भू + णिच्, (कर्मवाच्य) लोट् प्र० ब० । मूल स्वयोग०—मूलेन स्वस्य योगः तन्मूलाः ये सकलाः पुरुषार्थाः तेषां संवेदिनी ।

विधि से अभिनन्दन किया जाता है ।

राम—तुम्हारे संदेह का कोई अवकाश नहीं । ज्ञान की प्राप्ति, आत्मा का परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करने वाले सकल कार्यों की ज्ञापिका [साधिका] होती है (और इन्होंने उस ज्ञान का अर्जन किया हुआ है) । देखो—

अन्तःकरण में निहित शाश्वत [त्रिकालबाधित] प्रकाश, धर्म का साक्षात्कार किए हुए महर्षियों द्वारा प्रज्ज्वलित हुए बिना परमार्थ को प्रकट नहीं कर सकता जैसे कि अग्नि नामक तेज भी वायु के

वि०—यदि महार्थस्तपोधनानां समागमः, अहं च लघु गत्वा यथा-
यदि महत्थो तपोधणाणां समाओ, अह अ लघु गच्छिअ जहआ-
ज्ञप्तिं सम्पादयामि । (*निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य*) ही ! ही ! साम्प्रतं मया
णत्तिं संपादेमि । ही ही संपदं मए
राज्ञ आज्ञया प्रतीहारनिक्षिप्तेन दृष्टौ सुस्निग्धश्यामलच्छायौ, अनु
राइणो आण्णाए पडिहारणिक्खित्तेण दिट्ठ सुसिणिद्धसामलच्छाआ, अणु
द्भिन्नतारुण्यविग्रहौ, तोरणस्तम्भावस्थितौ, मङ्गलाङ्कुराविव बाल-
ब्भिण्णतापुण्णविग्गहा तोरणत्थंभवट्ठिदा मंगलंकरा विअ बाल-

व्याकरण—सत्—√अस् अदादि० होना + शतृ, नपुं० ष० ए० । आभ्यन्तरम्—अभ्यन्तरे भवम् । आप्तपादैः—पूज्याः आप्ताः आप्तपादाः, तैः । पाद शब्द पूजा वाचक है । यह नित्य समास है । स्वकर्मणे अलम्—अलम् और अलमर्थ के योग में चतुर्थी होती है । व्यनक्ति—वि + √अञ्ज् रुधा० लट्, प्र० ए० ।

व्याकरण—महार्थः—महान् अर्थः यस्य स (बहु०) । प्रतिहारनिक्षिप्तेन—प्रतिहारे द्वारे निक्षिप्तेन नियुक्तेन । सुस्निग्धश्यामलच्छायौ—सुस्निग्धा श्यामला

बिना अपना कर्म करने में कदापि समर्थ नहीं होता [अर्थात् जीवात्मा का स्वरूप जानने के लिए आप्त गुरू का उपदेश अपेक्षित है ही] ।।८।।

विदूषक—यदि तपस्वियों का समागम (इतना) महत्त्वपूर्ण है तो मैं शीघ्र जाकर आज्ञानुसार करता हूँ ।

(निकल कर तथा पुनः प्रवेश करके)

अहा हा ! महाराज की आज्ञा से अभी द्वारपाल के कार्य पर नियुक्त हुए २ मैंने बाह्य द्वार के स्तम्भों के पास खड़े (तथा) प्रिय मित्र के सम्मुख (अपनी संगीत) कला का प्रदर्शन करने के अभिप्राय से आए हुए दो तपस्वी—बालकों को देखा है । उनकी कान्ति स्निग्ध तथा

भावेन, असमाप्तप्रमाणाविव, अप्रमादाविव, कन्दर्पदारकाविव रूप-
भावेण, असमत्तपमाणा विअ, अप्रमाधा विअ कंदप्पदारआ विअ रुप-
सौभाग्येन, उच्चतरौ सालतरू इव, प्रस्पन्दाविव, लोलतराविव,
सोवग्गेन उच्चदरा सालतरु विअ, पप्पंदा विअ, लोलदरा विअ,
महाबलाविव, अत्यन्तधीराविव, अत्यन्तललिताविव, असंक्षेपिता-
महाबला विअ अचंतधीरा विअ, अच्चंतललिदा विअ, असंखेपिदा
विव, वयस्यस्य कलादर्शनावागतौ द्वौ तापसकुमारकौ।
विअ, वअस्सस्स कलादंसणा आगदा दवे तापसकुमारआ।
रा०—(*साकूतम्*) कस्तयोरस्मन्नयनसीमावतरणप्रतिबन्धः ?

व्याकरण—छाया ययोः तौ (बहु०)। अनुद्भिन्नतारुण्यविग्रहौ—न उद्भिन्नं तारुण्यं ययोः विग्रहयोः तौ (बहुव्री०)। मंगलांकुरौ—मंगलस्य अंकुरौ (ष० तत्पु०)। कलादर्शनौ — कलायाः दर्शनौ। दर्शनः—दर्शयति इति दर्शनः। नन्द्यादित्वाल्ल्युः। व्यधिकरण बहुव्री०। यथा संभव नहीं होना 'कलादर्शकौ' पाठ अधिक उचित होता।

नयनसीमावतरणप्रतिबन्धः—नयनयोः सीमायाम् अवतरणे प्रतिबन्धः।

श्यामल है, जवानी अभी फूटी नहीं, (तथा) बाल्यावस्था के कारण कल्याण के अंकुर से प्रतीत होते हैं; (उनका) कद अभी पूरा नहीं निकला प्रतीत होता है (तथा) वह बड़े होशियार, रूप सौंदर्य के कारण कामदेव के पुत्रों जैसे, साल वृक्ष के समान ऊँचे, स्फूर्तिशाली, अतीव चपल, शूरवीर, असाधारण धैर्यशाली, अति सुन्दर (एवं) विशाल हृदय प्रतीत होते हैं।

राम—(साभिप्राय) हमारे सम्मुख आने में उन्हें क्या अड़चन है ?

वि०—शृणु तावदेतयोर्बालभावललितयोः कौतूहलसम्बद्धयोरेत-
सुणाहि दाव एदाणां बालभावललिदाणां कोऊहलसंबद्धाणां एदं
मुपन्यासम् ।
उवंणासम् ।

रा०—कथय कथय।

वि०—तौ किल भगवतो वाल्मीकिमहर्षेः शिष्यौ प्रवीणौ वीणाकलाविज्ञा-
ते किल भअवदो वम्मीइमहेसिणो सिस्सा पवीणा वीणाकलाविण्णा
नेऽपूर्वं किलागमं धारयतः। एतौ किलैवं वदतः—"राजर्षेर्जनानां
णेअपुव्वं किल आअमं धारिंति। एदे किल एव्वं वदंति—"राएसिणोजणाणं

व्याकरण—प्रवीणौ— प्रकृष्टौ वीणायाम् । अनुष्ठातव्यम्—अनु—√स्था+तव्यत्। दुष्करविन्यासः—दुष्करः विन्यासः यत्र तत् (बहुव्री०)। महाकविसंङ्ग्रथितमहापुरुषचरित्रबन्धम् — महाकविना सङ्ग्रथितः महापुरुषस्य चरित्रबन्धः यस्मिन् तत् (बहुव्री०) महार्थगम्भीरं—महार्थेन गम्भीरम् (तृ० तत्पु०)। योगविरचितवर्णरमणीयकम्—योगेन विरचितैः वर्णैः रमणीयकम्।

विदूषक—बचपन के कारण आकर्षक तथा कुतूहल उत्पन्न करने वाले इन (बालकों) का परिचय सुनो।

राम—सुनाओ, सुनाओ।

विदूषक—वे दोनों महर्षि वाल्मीकि के चतुर [निष्णात] शिष्य हैं तथा वीणा बजाने की कला में बहुत प्रवीण हैं। वे दोनों यूँ कहते हैं, "..........................हमारे लिए भूमि पर आसन लगाया जावे,..................................

..............................हम वीणा के तारों की ध्वनि के साथ महाकवि (वाल्मीकि) द्वारा रचित महापुरुष का चरित्रमय गीत गावेंगे (जो कि) कठिन रचना वाला,

तपोधनबहुमानेनास्माकमिव भूस्थानमासनं.. ...अनुष्ठातव्यम्,
तपोधणबहुमाणेण अह्लाणं विअ भूटठाणं आसणं पदाणं अ अणुचिट्ठिदव्वं,
................................दुष्करविन्यासं महा-
जदा अंहे मदभह्स्स दीअइ रादललअ दुक्खरविण्णासं महा-
कविसङ्ग्रथितमहापुरुषचरित्रबन्धं महार्थगम्भीरं केनाप्यश्रुत-
कइसंगधितमहापुरुसचरित्तबंधं महन्थगंभीरं केण वि अस्सुद-
पूर्वमागमं गान्धर्ववेदसंवादि सरसं योगविरचितवर्णारमणीयकं
पव्वं आअमं गधव्ववेदसंवादि सरसं जोअविरइअवण्णारमणीअअं
वीणातन्त्रीरसितानुविद्धं गीतं गायावः, तदा विज्ञानविशेषप्रसन्न
वीणातंतिरसिदाणुविद्धं गीदं गाअंह्म, तदा विण्णाणविसेसपसण्ण-
हृदयो राजा यं वृत्तान्तमनुष्ठास्यति एष ज्ञातव्य इत्यस्माकं
हिअओ राआ जं वुत्तंतं अणुचिठ्ठस्सदि एसो जाणिदंवोत्ति अह्माणं
भगवतो वाल्मीकिमहर्षेरादेशः–इति" ।
भअवदो वंमीइमहेसिणो आदेसोत्ति" ।

वीणातन्त्री रसितानुविद्धम्—वीणायाः तन्त्रीणां रसितेन अनुविद्धम् । विज्ञान विशेषप्रसन्नहृदयः—विज्ञानस्य विशेषेण (आधिक्येन) प्रसन्नं हृदयं यस्य सः (बहुव्री०) अनुण्ठास्यति-अनु+√स्था, लृट्, प्र० ए० । ज्ञातव्यः—√ज्ञा +तव्यत् ।

(अर्थात् जिसकी प्रणयन दूसरे के लिए दुष्कर है) अर्थ गौरव सम्पन्न, पहले न सुना हुआ ऐतिह्य, संगीतशास्त्रानुकूल, सरस एवं योगशक्ति से संयोजित वर्णों के कारण अतिमनोरम है। तब (इस) असामान्य (संगीत) कला के (प्रदर्शन से) प्रसन्न चित्त राजा जो चेष्टाएं करे उन्हें जानना, यह हमें पूज्य महर्षि वाल्मीकि का आदेश है।"

रा०—अहो विज्ञानावलेपः शौण्डीर्यगर्भश्चोपन्यासः । वयस्य ! यथाभिमतं प्रतिज्ञाय प्रवेशयाविलम्बितं पुरा तौ न चिरावस्थाननिर्वेदेन पराङ्मुखीभवतः ।

वि०—कुत इदानीं निर्वेदः ? तौ हि अन्योन्यवत्सलत्वमाकारसा-
कुदो दाणिं णिव्वेदो ? ते हि अण्णोण्णवच्चलत्तणं आआरसा-
दृश्यं काकपक्षपरिभूषितं च वदनं प्रेक्ष्य 'एवं रामलक्ष्मणौ महा-
रिच्चं काअपक्खपरिभूसिदं च वअणं पेक्खिअ 'एव्वं रामलक्खणा महा-
राजदशरथे ध्रियमाणे राजस्थानमलङ्कुर्वन्तावभूताम्'-इति
राअदसरहे धरमाणे राअट्ठाणं अलंकरंत्ता भवंति'-त्ति
युवयोर्बालभावं महाराजं च स्मृत्वा बाष्पपूर्णनयनैः सौविदल्लैः
तुह्माणं बालभावं महाराअं अ सुमरिअ बफ्फपुण्णणअणेहिं सोविदल्लएहिं
परिपृष्टौ तिष्ठतः ।
परिपुट्टा चिट्ठंति ।

व्याकरण—शौण्डीर्यगर्भः—शौण्डीर्यं गर्भे यस्य सः । शौण्डीरस्य भावः शौण्डीर्यम् , ष्यञ् । पुरा पराङ्मुखीभवतः—पुरा (निपात) के उपपद होने पर भविष्यत् अर्थ में लट् का प्रयोग ।

राम—अहो ! (संगीत कला के) ज्ञान का कितना गर्व है, तथा कैसा अभिमान-युक्त कथन है, मित्रवर !

इच्छानुसार वचन देकर (उन्हें) शीघ्र भीतर लिवालाओ, चिरकाल तक प्रतीक्षा करने से अधीर हुए २ कहीं लौट न जावें ।

विदूषक—(उन्हें) अधीरता कैसी ? अनेक परस्पर सन्देह, समान आकार तथा काकपक्षों से विभूषित मुख को देखकर "महाराज दशरथ के जीवित रहते राम लक्ष्मण ऐसे

रा०—किमस्मच्छैशवानुकारिणी तयोराकृतिः ?

वि०—अथ किम्।

अह इं।

रा०—वर्धते मे कुतूहलम्, तत्प्रवेशयाविलम्बितम्।

वि०—यद्भवानाज्ञापयति ।

जं भवं आणवेदि।

(इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशतौ विदूषकेणोपदिश्यमानमार्गौ तापसौ कुशलवौ)

वि०—इत इत आर्यौ।

इदो इदो अंआ ।

(परिक्रम्य)

ही राजभवन को सुशोभित किया करते थे" इस प्रकार आप दोनों के शैशव को तथा महाराज को स्मरण करके अश्रुपूर्ण नेत्रों वाले कञ्चुकियों द्वारा पूछताछ किए जाते हुए वह (उनके पास) खड़े हैं।

राम—क्या उनकी आकृति हमारे बाल रूप से मिलती जुलती है।

विदूषक—हाँ तो।

राम—मेरी उत्कण्ठा बढ़ रही है अतः (उन्हें) शीघ्र लिवा लाओ।

विदूषक—जो आपकी आज्ञा।

(चला जाता है)

(विदूषक द्वारा मार्ग दिखलाए जाते हुए तपस्वी कुमार कुश तथा लव का प्रवेश)

विदूषक—श्रीमन्! इधर, इधर।

(मुड़ कर)

कुशः —(अपवार्य) वत्स लव ! इदानीं भगवतो वाल्मीकेरादेशादम्बामभिवाद्य पार्थिवभवनाभिमुखं प्रस्थिते मयि काकपक्षग्रहणसञ्ज्ञया पर्णशालायां प्रवेश्य कीदृशेन रहस्येनाम्बया पृथक् संविभक्तो भद्रमुखः ?

लवः—न खलु कश्चित्संविभागः । किन्तु तदानीं तापसजनसङ्कीर्णमुटजाभ्यन्तरं प्रविश्य बाहूपपीडं तनूदरेण परिष्वज्य शिरसि चाघ्राय सीत्कारलक्षितस्मितमधुरं साशङ्का शनैः शनैः कर्णपत्रं वर्धयन्ती स्वमुखेन मन्मुखमपवार्यैवं सन्दिष्टवती—

व्याकरण—अभिवाद्य—अभि + √वद् + ल्यप् । प्रवेश्य—प्र + √विश् + णिच् + ल्यप् । संविभक्तः— सम् + वि + √भज् + क्त, प्र० ए० ।

व्याकरण—तापसजनसङ्कीर्णम्—तापस जनन सङ्कीर्णम् (स्थानभृ) (तृ० तत्पु०) । उटजाभ्यन्तरम्—उटजस्य अभ्यन्तरम् (ष० तत्पु०) । प्रविश्य—प्र + विश् + ल्यप् । परिष्वज्य—परि + √स्वञ्ज् + ल्यप् । आघ्राय—आ +

कुश—(एक ओर होकर) प्रिय लव ! जब भगवान् वाल्मीकि की आज्ञा से माता जी प्रणाम करके मैं राजभवन की ओर चला ही था तो काकपक्षों से पकड़ कर संकेत से पर्णकुटी में ले जाकर माता जी ने अकेले में आपको क्या गुप्त बात कही थी ?

लव—गोपनीय तो कुछ नहीं था । उस समय तपस्वियों की भीड़ में कुटिया के भीतर जाकर भुजाओं से (मुझे) दबाते हुए (अपने) कृशोदर से आलिङ्गन करके तथा सीत्कारमय मधुर मुस्कान से सिर सूँघ कर धीरे धीरे कर्ण-पत्र [कर्णभूषण] हटाते हुए अपने मुख से मेरा मुख छिपा कर यह सन्देश दिया था, "वत्स ? तुम दोनों ने अपना

वत्स ! युवाभ्यां स्वाभाविकमवलेपं परित्यज्य सत्कर्त्तव्यो महाराजः, कुशलञ्च परिप्रष्टव्यम्—इति

कुशः—युज्यते कुशलप्रश्नः, प्रणामस्तु कथम् ?

लवः—न कथम् ?

कुशः—अप्रणन्तारः किलास्मद्वंश्याः ।

लवः—क एवमाह ?

कुशः—अम्बा ।

लवः—प्रणाममपि सैवोपदिष्टवती । न च गुरुनियोगा विचारमर्हन्ति ।

कुशः—साधयामस्तावत्, अग्रतस्तत्र यत्कालोचितमनुष्ठास्यावः ।

(परिक्रामतः)

√घ्रा+ल्यप् । सीत्कारलक्षितस्मितमधुरम्—सीत्कारेण उपलक्षितेन स्मितेन मधुरम् (क्रिया वि०) । सन्दिष्टवती—सम्+√दिश्+तवत्, स्त्री० । सत्कर्त्तव्यः—सत्+√कृ+तव्यत्, प्र० ए० । परिप्रष्टव्यम्—परि+√प्रच्छ्+तव्यत् ।

स्वाभाविक गर्व छोड़कर महाराज को प्रणाम करना तथा कुशल समाचार पूछना ।"

कुश—कुशलता पूछना तो ठीक, पर प्रणाम क्यों ?

लव—नहीं, क्यों ?

कुश—हमारे वंश के लोग किसी के आगे नहीं झुकते ।

लव—ऐसा किस ने कहा है ?

कुश—मां ने ।

लव—प्रणाम करने के लिए भी उसी (माँ) ने कहा है । गुरुओं की आज्ञा विचारणीय नहीं होती ।

कुश—आओ चलें, आगे जैसा अवसर होगा वैसा करलेंगे ।

(चलते हैं)

वि०—इत इत आर्यौ।
इदो इदो अंआ।
रा०—(*विलोक्य*) नूनं तदेवैतद्दारकद्वयं कौशिकेनोपदिश्यमानमार्गमित एवाभिवर्तते। कथमस्मायितो ऽस्मि। किन्नू खल्वेतत्।
न चैतदभिजानामि नाकूतमपि किञ्चन।
तथाप्यापातमात्रेण चक्षुरुद्बाष्पता गतम् ॥ ९ ॥
अथवा किमात्राश्चर्यम्—
आपातमात्रेण कयापि युक्त्या
सम्बन्धिनः सन्नमयन्ति चेतः।

अन्वय—न एतद् अभिजानामि न च किञ्चन् (एतयोः) आकूतं (जानामि) तथा अपि आपात मात्रेण चक्षुः उद्बाष्पतां गतम् ॥ ९ ॥

कठिन शब्दार्थ—आकूतं (नपुं०)—अभिप्राय, प्रयोजन। आपातमात्रेण—देखने भर से। उद्बाष्पता (स्त्री०)—आंसुओं का उमड़ना ॥ ९ ॥

अन्वय—सम्बन्धिनः कया अपि युक्त्या आपातमात्रेण चेतः सन्नमयन्ति। दोषगुणानभिज्ञः चन्द्रकान्तः चन्द्रोदये विमृश्य श्चयोतति किम् ॥ १० ॥

विदूषक—श्रीमन्! इधर से, इधर से।
राम—(देख कर) कौशिक द्वारा मार्ग बतलाए जाते हुए, निश्चय ही यह वही दोनों बालक इधर ही आ रहे हैं। अपने आप को खोया २ क्यों अनुभव कर रहा हूँ। इस का क्या कारण है?
न तो मैं इन्हें पहचानता हूं, नाहीं इनका अभिप्राय जानता हूं, फिर भी (इन्हें) देखते ही नेत्रों में आँसू उमड़ आए हैं ॥ ९ ॥
अथवा इस में आश्चर्य ही क्या है—

विमृश्य किं दोषगुणानभिज्ञ-

श्चन्द्रोदये श्च्योतति चन्द्रकान्तः ॥ १० ॥

निर्वर्णयामि तावत्किमाकारावेताविति । कथं द्रष्टुमपि न प्रभवामि । यथा यथा कुमारावेतौ निर्वर्णयामि तथा तथा हृदयमप्यननुभूतपूर्वेण साध्वसप्रहर्षशोकानुक्रोशसम्भेदचित्रेणावस्थाविशेषेणाक्रम्यमाणं मूर्च्छयेव तिरोधीयते । (*मूर्च्छामभिनीय*) बाष्पपातश्च कथम् प्रशान्त इव मे हृदयस्तम्भो बाष्पपातेन; स्वस्थीभूतोऽस्मि

व्याकरण—सन्नमयन्ति—सम्+√नम्+णिच्, लट्, प्र० ब० । दोषगुणानभिज्ञः—दोषाणां गुणानां च अनभिज्ञः । अभिजानाति इति अभिज्ञः, स न भवति इति अनभिज्ञः (नञ् तत्पु०) । चन्द्रोदये—चन्द्रस्य उदये । विमृश्य—वि+√मृश√ल्यप् । श्च्योतति—√श्च्युत् (टपकना, बहना) भ्वा०, लट्, प्र० ए० ॥ १० ॥

व्याकरण—निर्वर्णयामि—निर+वर्ण+णिच्, लट्, उ० ए० । द्रष्टुम्—√दृश्+तुमुन् । आक्रम्यमाणम्—आ+√क्रम् (कर्मवाच्य), लट्, प्र० ए० । तिरोधीयते—तिरस्+√धा (कर्मवाच्य), लट्, प्र० ए० । प्रशान्तः—

सम्बन्धी देखने मात्र से न जाने कैसे हृदय को वशीभूत [आकर्षित] कर लेते हैं। (ठीक है) दोषों तथा गुणों से अपरिचित चन्द्रकान्त मणि क्या चन्द्रोदय पर (कुछ) विचार कर पिघला करती है ॥ १० ॥

देखता हूँ इन का आकार कैसा है। क्या कारण है क्या मैं (इन्हें) देख भी नहीं सकता। इन बालकों को देखते ही मेरा मन अदृष्ट पूर्व भय, हर्ष, शोक, करुणा आदि भावों के मिश्रण के कारण विविधभाव संकुलित विचित्र दशा से अभिभूत होता हुआ संज्ञाहीन सा हो रहा है।

संवृत्तः । एतद्व्यपनीतबाष्पव्यवधानेन चक्षुषा पुनरवलोकयामि । (*निर्वर्ण्य*) गम्भीरोदारः सन्निवेशः, प्रशान्तमनोहरा वेषरचना, विनयोदयोदात्तमभिक्रान्तम्, सुव्यक्तमनेन युगलेन कुलीनेन भवितव्यम् ।

वि०—एषोऽत्रभवान् राजा, उपसर्पतामार्यौ यथाभिप्रायम् ।
एसो अत्तभवं राआ, उपसप्पदु अंआ जहाहिप्पाअं ।

कु०—वत्स लव ! अपि जानासि त्वं सम्प्रत्येव प्रणामसम्बन्धेन यथा मया कथितम् ?

प्र+√शम्+क्त, प्र० ए० । व्यपनीत—वि+अप+√नी+क्त । विनयोदयोदात्तम् -विनयस्य उदात्तम् । अभिक्रान्तम् —अभि+√क्रम्+क्त, प्र० ए० सुव्यक्तम् (क्रिया वि०)—सु+वि+√अञ्ज्+क्त, नपुं० द्वितीया ए० । भवितव्यम्—√भू+तव्यत्, प्र० ए० ।

(मूर्च्छा का अभिनय करके) (आंखो से) आंसू कैसे ! अश्रुपात से मेरे हृदय की जड़ता शान्त हो गई है, पूर्ण स्वस्थ हो गया हूं। आँसुओं का आवरण (धुंधलापन) मिट जाने पर (निर्मल) दृष्टि से पुनः देखता हूं। (देख कर) इनकी आकृति गम्भीर तथा गौरवशाली है, वेषभूषा सौम्य एवं आकर्षक है, (तथा) नम्रतावश (इनकी) गति भी मनोहर है, यह जोड़ी अवश्य सत्कुलोत्पन्न होगी ।

विदूषक—यह हैं पूज्य महाराज, आप स्वच्छन्दता पूर्वक इन के पास जाईये ।

कुश—प्रिय भाई लव ! अभी प्रणाम के विषय में जो मैं ने कहा वह याद है ना ?

ल०—अथ सम्प्रति किम् ?

कु०—यथा यथैनं पार्थिवं प्रत्यासीदामि तथा तथा हृदयोत्कम्पकारिणा साध्वसेन न प्रभवामि स्वाङ्गानाम्, परित्यक्तोऽस्मि कस्मात्तुल्यावलेपेन ? न शक्नोमि चास्य पुरस्तादनवनतमुत्तमाङ्गमुद्वोढुम् किं बहुना एष प्रणतोऽस्मि ।

ल०—कथमार्योऽप्यहमिव परमवशत्वमापादितः । (*उभौ प्रणमतः*)

रा०—न खलु भवद्भ्यां मर्यादालङ्घनमनुष्ठेयम् । कथं प्रणतावेव ? कष्टं ब्रह्मशिरसा नतोऽस्मि । (*विषादं नाटयाति*)

व्याकरण—प्रभवामि स्वाङ्गानाम्—प्र+√भू के योग में अधिकार अर्थ में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग । अवनत—अब+√नम्+क्त । उद्वोढुम्—उद्+√वह्+तुमुन् ।

अनुष्ठेयम्—अनु+√स्था+यत् । प्रणतौ—प्र+√नम्+क्त, प्र० द्वि० ।

विषण्णः—वि+√सद्+क्त । परिहीयसे—परि+√हा (कर्मवाच्य) लट्, प्र० ए० । श्रूयातम्— √श्रु, (कर्मवाच्य) लोट्, प्र० ए० ।

लव—क्यों, अब क्या है ?

कुश—ज्यों २ इस राजा के समीप पहुंच रहा हूँ त्यों २ हृदय-कम्प-कारी भय के कारण अङ्गों को सम्भालने में असमर्थ होता जा रहा हूँ; समानता का गर्व (भी) क्यों लुप्त हो रहा है ? इसके सम्मुख झुके हुए सिर को ऊँचा नहीं रख सकता, अधिक क्या, (लो) यह झुक गया हूँ ।

लव - क्या आर्य [बड़े भाई] मेरे समान विवश कर दिए गए ।

(दोनों प्रणाम करते हैं)

राम—अपने आचार का उल्लंघन न करना चाहिए । क्या झुक

वि०—भो त्वं किं विषण्णः ? एताभ्यां प्रयुक्तः प्रणामो न प्रतिगृहीतः
भो तुबं किं विसण्णो ? एदेहिं पउत्तो पणामो ण पडिगहीदो,
अत्र न त्वं परिहीयसे ।
एत्थ ण तुमं परहीयसि ।

रा०—सम्यगुपलक्षितं कौशिकेन । आर्यावतिदाक्षिण्यपेशलौ, श्रूयताम्—

अयं भवद्भयामतिसम्भ्रमेण
मयि प्रयुक्तः शिरसा प्रणामः
भवत्विदानीं मदनुज्ञयैव
युष्मद्गुरूणां चरणोपहारः ॥११॥

अन्वय—भवद्भ्याम् अति सम्भ्रमेण मयि शिरसा प्रयुक्तः अयं प्रणामः इदानीं मत् अनुज्ञया युष्मद्-गुरूणां एव चरणोपहारः भवतु ॥ ११ ॥

ही गए ? ओह ! ब्राह्मण का मेरे आगे झुका है ।
(खेद का प्रदर्शन करता है)

विदूषक—अरे ! आप क्यों खिन्न हैं ? इनका प्रणाम स्वीकार क्यों नहीं किया ? इसमें तो आपकी कोई हीनता नहीं ।

राम—कौशिक का विचार ठीक है । अति मधुर व्यवहार में निपुण आर्यो ! सुनो—

अतिशीघ्रता से (बिना सोचे समझे) सिर झुका कर किया गया आपका यह प्रणाम मेरे वचन से आपके गुरुओं [माता-पिता-आचार्य] के चरणों की भेंट हो ॥ ११ ॥

वि० —अप्रतिहतशासनः प्रियवयस्यः — एष प्रणामस्य परिणामः—इति
अप्पडिहदसासणो पिअवअस्सो। एस पणामस्स परिणामोत्ति।

कुशलवौ— (*उत्थाय*) अपि कुशलं महाराजस्य ?

रा०—युष्मद्दर्शनात्कुशलमिव । भवतोः किं वयमत्र कुशलप्रश्नस्य भाजनम्, न पुनरतिथिभाजनस्य समुचितस्य कण्ठग्रहस्य ? (*परिष्वज्य*) अहो हृदयग्राही स्पर्शः। (*विचिन्त्य*) अनभिज्ञोऽहं तनयपरिष्वङ्गसौख्यस्य, यद्यपि तां तुलामारोहे । स्थाने खलु परिक्रामन्ति तपोवनपराङ्मुखा गृहमेधिनः।

व्याकरण—अप्रतिहतशासनः—प्रतिहतं शासनं यस्य सः (बहुव्री०)। स न भवति इति, नञ् तत्पुरुषः।

तनयपरिष्वङ्गसौख्यस्य—तनयस्य परिष्वङ्गेन यत् सौख्यं तस्य। सुखम् एव सौख्यम् स्वार्थे ष्यञ् । आरोहे—आरोहामि—परस्मैपद ही ठीक है। गृहमेधिनः—गृहैः (दारैः मेधन्ते (सङ्गच्छन्ते इति ताच्छील्यै णिनिः।

विदूषक—प्रिय मित्र की आज्ञा अलङ्घनीय है,—यह प्रणाम का (समुचित) उत्तर (अथवा अन्त) है।

कुश-लव—(उठ कर) महाराज कुशल तो हैं ?

राम—आपके दर्शन से सकुशल हूँ। क्या आप मुझे (केवल) कुशल-क्षेम ही पूछेंगे, अतिथि-सत्कारयोग्य अलिङ्गन न करेंगे।

(अलिङ्गन करके)

कैसा चित्ताकर्षक स्पर्श है। (सोच कर)

मैं यद्यपि पुत्र का अलिङ्गन करने के आनन्द से अपरिचित हूँ तथापि कुश वैसा ही आनन्द अनुभव कर रहा हूँ। गृहस्थियों का तपोवन से विमुख रहना ठीक ही है।

(आसनार्धमुपवेशयति)

उभौ—राजासनं खल्वेतत् न युक्तमध्यासितुम् ।

रा०—सव्यवधानं न चारित्रलोपाय, तस्मादङ्कव्यवहितमध्यास्यतां सिंहासनम् । (अङ्कमुपवेशयति)

उभौ—(अनिच्छां नाटयतः) राजन्, अलमतिदाक्षिण्येन ।

रा०—अलमतिशालीनतया ।

भवति शिशुजनो वयोऽनुरोधा-
द्गुणमहतामपि लालनीय एव ।

व्याकरण—राजासनम् (द्वितीया)—राज्ञः आसनम् (ष० तत्पु०)। अधिशीङ्स्थासां कर्म—इस से अधिकरण की कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया हुई। अध्यासितुम्—अधि+√आस्+तुमुन् ।

अध्यास्यानाम् - अधि+√आस् कर्मवाच्य, लोट्, प्र० ए० । उपवेशयति—उप+√विश्+णिच्, लट्, प्र० ए० ।

अन्वय—शिशुजनः वयः अनुरोधात् गुणमहतामपि लालनीयः एव भवति । हिमकरः अपि बालभावात् पशुपति-मस्तक-केतकच्छदत्वं व्रजति ॥ १२ ॥

(आधे आसन पर बिठलाता है)

दोनों—यह राज सिंहासन है, (इस पर) बैठना उचित नहीं ।

राम—व्यवधान युक्त किसी वस्तु से बियोजित सिंहासन पर बैठने से मर्यादा का भङ्ग नहीं होता अतः मेरी गोदी में आ जाओ । (शब्दार्थ—अतः मेरी गोदी द्वारा वियोजित सिंहासन पर बैठ जाओ ।)

(गोदी में विठा लेता है)

दोनों—(अनिच्छा का प्रदर्शन करते हुए) राजन् ! अधिक उपचार में न पड़िए ।

राजन्—इतनी लज्जा मत करो ।

व्रजति हिमकरोऽपि बालभावा-

त्पशुपतिमस्तककेतकच्छदत्वम् ॥ १२ ॥

(साश्रुरवलोकयन् पुनः परिष्वजते । विदूषकमवलोक्य)

अपि स्मरति भवान् निर्वासितायाः सीतायाः कियन्तः संवत्सरा अतिक्रान्ता इति ?

वि०—(*विचिन्त्य*) स्मरामि मन्दभाग्यः (*हस्ताङ्गुलिप्रमाणसङ्ख्यां*

सुमरामि मंदभाओ

विगणय्योपरिष्टात्पदाङ्गुलित्रयमपि निर्दिश्य) किं बहुना गणितेन,

किं बहुणा गणितेन,

व्याकरण—वयोऽनुरोधात्—वयसः अनुरोधात् (ष० तत्पु० । गुण-महताम्—गुणैः महताम् (सुप्सुपा) । लालनीयाः—लल्—णिच्+अनीयर्, प्र० ब० ।

कठिन शब्दार्थ—वय—आयु । हिमकर—चन्द्रमा । पशुपति—(पशूनां जीवानां पतिः) शिव । केतक पुं०—केबड़ा । छद पुं० पत्ता ।

बच्चे (अपनी) अवस्था के कारण बड़े बड़े गुणवानों के स्नेह के अधिकारी होते हैं। इसी लिए बाल-चन्द्र शिवजी के मस्तक पर केतकी के पुष्प की पदवी पा लेता है।

(अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखता हुआ पुनः आलिङ्गन करता है।)

(विदूषक की ओर देख कर)

क्या तुम्हें स्मरण है कि सीता को निर्वासित किए हुए कितने वर्ष बीत गए हैं ?

विदूषक—(सोच कर) हां, मुझ अभागे को स्मरण हैं (एक हाथ की अंगुलियाँ गिनने के पश्चात् पाँव की तीन अंगुलियाँ और गिन कर) अधिक क्या गिनना है, निश्चित ही देवी

सर्वथाद्य दशमः संवत्सरो देव्याः सीतायाः स्वहस्तेन परि-
सव्वहा अज्ज दसमो संवच्चरो देवीए सीदाए सहत्थेण परि-

प्रेषितायाः
प्पेसिदाए।

रा०—(*कुमारौ निर्वर्ण्य*) यदि स्वस्तिना गर्भमपि निर्वर्तयेत्, यदि कश्चिद-वगाहेत तदपत्यमियता कालेनेद्दशीमवस्थाम्।

वि०—हन्त! स्तम्भितोऽस्मि मन्दभाग्य एतया अज्ञातविप्रयुक्ततनय-
हन्त! तंभिदो म्हि मन्दभाओ एदाए अण्णादविप्पउत्ततणअ-

सङ्कथया। (*रोदिति*)
संकहाए।

रा०—अहमप्येतौ तापसकुमारावबलोकयन्नसह्यवेदनामवस्थामवती-र्णोऽस्मि।

सीता को अपने हाथों निर्वासित किए हुए आज दसवाँ वर्ष है।

राम—यदि (सीता को) कुशलपूर्वक प्रसव हुआ हो तो उसकी सन्तान (भी), यदि कोई जीवित है तो अब तक इतनी बड़ी हो गई होगी।

विदूषक—आह! अनदेखी तथा वियुक्त सन्तान की यह बात सुन कर सन्न रह गया हूँ।

(रोता है)

राम—मैं भी इन तपस्वी-बालकों को देखते ही असह्य (मानसिक) व्यथा का अनुभव कर रहा हूँ।

यां यामवस्थामवगाहमानं
मुत्प्रेक्षते त्वं तनयं प्रवासी ।
विलोक्य तां ताञ्च गतं कुमारं
जातानुकम्पो द्रवतामुपैति ॥ १३ ॥

(परिष्वज्य रोदिति)

वि०—(ससम्भ्रमं) अविधा मुञ्च, सर्प, मुञ्च, जीवतु तपस्वितनयः,
अविह मुंच, सर्प्प, मुंच, जीवदु तवस्सितणओ,
अवतरतु सिंहासनतः ।
ओदरदु सिंहासणादो ।

अन्वय—प्रवासी त्वं तनयं यां याम् अवस्थाम् अवगाहमानम् उत्प्रेक्षते तां तां च गतं कुमारं विलोक्य जातानुकम्पः (सन्) द्रवताम् उपैति ॥१३॥

व्याकरण—अवगाहमानम् - अव+√गाह (भ्वा०)+शानच्, द्वि० ए० । उत्प्रेक्षते—उद् + प्र√ईक्ष्, भ्वा० लट्, प्र० ए० । विलोक्य—वि√लोक् ल्यप् । जातानुकम्पः—जाता अनुकम्पा यस्य सः (बहुव्रीहि) । उपैति—उप+आ+इ (जाना), अदादि लट्, प्र० ए० ।

प्रवासी (पिता) अपने पुत्र की जिस जिस अवस्था को पहुंचने की कल्पना करता है उस उस अवस्था को प्राप्त हुए (किसी) बालक को देख कर दया भाव के उमड़ आने से (उसका हृदय) पिघल उठता है ॥१३॥

(आलिंगन करके आंसू बहाता है)

विदूषक—(घबराहट के साथ) हाय ! हाय ! बचाओ, बचाओ ! छोड़दो, दूर हट जाओ, जाने दो; तपस्वी-कुमार जीवे, इसे सिंहासन से उतरने दो ।

रा०—(ससम्भ्रम् कुमारौ मुञ्चन्) वयस्य, किमेतत् ?

वि०—श्रुतं मया साकेतनिवासिनां चिरजीविनां मुखतः—यः
सुदं मए साकेदणिवासिणं चिरजीविआणं मुहादो—जो
किलाराघव इमं सिंहासनमधिरोहति तस्य मर्धा शतधा शतधा
किल अराहवो इमं सिंहासणं अधिरोहदि तस्य मुद्धा सदहा सदहा
विदलेदिति ।
विदलदित्ति ।

रा०—(सावेगम्) अवतीर्यतां शीघ्रम् ।

(उभाववतीर्य भूमावुपविशतः)

रा०—अपि स्वस्थौ भवन्तौ, मूर्ध्नो वा न किञ्चिद्विकारः ?

उभौ—भोः ! स्वस्थावेवावाम्, न किञ्चिन्मूर्ध्नो विकारः ।

वि०—अहो आश्चर्यमाश्चर्यम् ! एवं नामापरिक्षतप्रकृतिस्थशरीरौ
अहो अच्चरिअं ! अच्चरिअं ! एवं णाम अवरिक्खदपइदित्थसरीरा
तिष्ठतः ।
चिट्ठति ।

राम—(घबराहट के साथ बालकों को छोड़ कर) मित्र ! क्या बात है ?

विदूषक—मैंने साकेतवासी वृद्धजनों के मुख से सुन रखा है कि रघुवंशियों के अतिरिक्त जो व्यक्ति इस सिंहासन पर बैठेगा उसका सिर टुकड़े टुकड़े हो जावेगा।

राम—(उद्वेग के साथ) शीघ्र उतरो।

(दोनों उतर कर पृथ्वी पर बैठ जाते है)

राम—आप दोनों स्वस्थ हैं ना, सिर में कोई चोट तो नहीं आई ?

दोनों—श्रीमन् ! हम सर्वथा स्वस्थ [अक्षत] हैं, सिर भी बिल्कुल ठीक है।

रा०—किमत्राश्चर्यम् (*कुमारौ निर्दिश्य*) स्वस्त्ययनपरिगृहीतानि तपश्शरीराणि । पश्य—

अपि नाम शरा मोघास्तपस्सन्नद्धमूर्तिषु ।
वासवस्यापि सुव्यक्तं कुण्ठाः कुलिशकोटयः ॥ १४ ॥

(कुमारावुद्दिश्य)

किं भवद्भयामव्यवहिता भूमिरध्यास्यते ?

उभौ—महाराज ! प्रथमपरिणीतोऽयमर्थः ।

रा०—तथा नाम ।

वि०—भो राजन्, अतिथी खल्वेतौ, तत्करोतु सङ्कथाभिरातिथेयम् ।
भो राअ, अदिही खु एदे, ता करिदु संकहाहिं आहिहेअं ।

अन्वय—तपः सन्नद्धमूर्तिषु शराः अपि मोघाः नाम वासवस्य कुलिश कोटयः अपि सुव्यक्तं कुण्ठाः ॥१४॥

व्याकरण—तपः सन्नद्ध०—तपसा सन्नद्धा मूर्तिः शरीरं येषां तेषु ।१४।

विदूषक—अहो ! महान् आश्चर्य है, (इन दोनों के) शरीर पूर्ववत् अक्षत एवं स्वस्थ हैं ।

राम—इसमें आश्चर्य क्या है (वालकों की ओर संकेत करके) तपस्वियों के शरीर स्वस्ति-वाचन मन्त्रों से सदा सुरक्षित रहते हैं । देखो—

तपरूपी कबच धारी (तपस्वियों के) शरीर पर बाण भी व्यर्थ (जाते हैं) तथा इन्द्र के वज्र की धार भी निस्संदेह कुण्ठित हो जाती है ॥१४॥

(बालकों को सम्बोधित करके)

क्या आप दोनों इकट्ठे (अपृथक् स्थान में) रहते हैं ?

रा०—एष भवतोः सौन्दर्यावलोकनजनितेन कौतूहलेन प्रतार्यमाणः पृच्छामि—कतमो वर्ण आश्रमो वा भवतोर्जन्मदीक्षाभ्यामलङ्क्रियते ?

कुशः—(*सञ्ज्ञया लवमादिशति*)

ल०—द्वितीयो वर्णः प्रथम आश्रमः।

रा०—नैतावग्रजन्मानौ, तदल्पापराधः प्रणामप्रयोगो न्यूनासनपरिग्रहश्च। अथ क्षत्रियकुलपितामहयोः सूर्याचन्द्रमसोः को वा भवतोर्वंशस्य कर्ता ?

व्याकरण—अतिथी—अतति इति अतिथिः, तौ। आतिथेयम्—अतिथिषु साधु।

सूर्याचन्द्रमसोः—सूर्यः च चन्द्रमा च तौ, देवताद्वन्द्वे च—इस से पूर्वपद को दीर्घ हुआ।

दोनों—महाराज! जन्म से ही ऐसा विधान है। [जन्म से ही हम इकट्ठे रहते हैं]।

विदूषक—राजन्! ये अतिथि हैं, (स्नेह पूर्ण) वार्तालाप से इनका आतिथ्य करो।

राम—आपके सौंदर्य को देखने से उत्पन्न उत्सुकता से प्रेरित होकर पूछना चाहता हूँ कि जन्म तथा संस्कार से आप किस वर्ण तथा आश्रम को अलंकृत करते हो ?

(कुश संकेत से लव को आदेश देता है)

लव—क्षत्रिय वर्ण, ब्रह्मचर्य आश्रम।

राम—यह ब्राह्मण नहीं—अतः (इनके) प्रणाम करने में तथा निम्न आसन स्वीकार में कोई विशेष दोष नहीं।

तो क्षत्रिय-कुल पितामह सूर्य तथा चन्द्रमा में से आपके वंश का प्रवर्तक कौन है ?

ल०—भगवान् सहस्रदीधितिः।

रा०—कथमस्मत्समानाभिजनौ संवृत्तौ।

वि०— किं द्वयोरप्येकमेव प्रतिवचनम् ?
किं दोण्णं वि एक्कं एव पडिवअणं ?

रा०—कच्चिदस्ति युवयोर्मिथो यौनसम्बन्धः ?

ल०—भ्रातरावावां सोदर्यौ।

रा०—संवादी सन्निवेशः, वयसस्तु न किञ्चिदन्तरम्।

ल०—आवां यमलौ।

रा०—सम्प्रति युज्यते, को भवतोर्ज्यायान्, किं नामधेयम् ?

ल०—(*अञ्जलिना निर्दिश्य*) आर्यस्य पादपूजनायां लव इत्यात्मानं श्रावयामि, आर्योऽपि गुरुचरणवन्दनायां (*अप्रतिपत्ति नाटयति*)

व्याकरण—सहस्रदीधितिः—सहस्रं (अनन्ताः) दीधितयः यस्य सः। दीधिति (किरण) नित्य स्त्री० है।

सौंदर्यौ०—समाने उदरे शयितौ। 'समान' को विकल्प से 'स' आदेश हो जाता है।

लव—भगवान् सूर्य।

राम—यह तो हमारे ही वंश के हो गये।

विदूषक—क्या आप दोनों का यही उत्तर है ?

राम—क्या आप दोनों का परस्पर रक्त-संबन्ध भी है ?

लव—हम दोनों सगे भाई हैं।

राम—आकृति समान है अवस्था में तो कोई अन्तर नहीं ?

लव—हम जुड़वें (भाई) हैं।

राम—अब समझा, आप में से बड़ा कौन है तथा (आपके) नाम क्या हैं ?

लव—(हाथ जोड़कर संकेत करते हुए) आर्य के चरणों में मैं अपने आप

कु०—अहमपि कुश इत्यात्मानं श्रावयामि।

रा०—अहो उदात्तरम्यः समुदाचारः।

वि०—ज्ञातं नामधेयम्, को ज्येष्ठ इति न दत्तं प्रतिवचनम्।

जाणिद णामहेअं, को जेट्ठोत्ति ण दिण्णं पडिवअणं।

रा०—नन्वञ्जलिनिर्देशादनामग्रहणाच्च दत्तमेव प्रतिवचनं कुशो ज्यायानिति।

वि०—साधु ज्ञातं साम्प्रतम्।

साहु जाणिदं संपदं।

रा०—किन्नामधेयो भवतोर्गुरुः?

ल०—ननु भगवान् वाल्मीकिः।

रा०—केन सम्बन्धेन?

ल०—उपनयनोपदेशेन।

को लव कहता हूँ तथा आर्य गुरु-चरणों में वन्दना करते समय······ (झिझकता है)

कुश—मैं अपने को कुश कहता हूं।

राम—अहो, कैसा ऊँचा तथा सुहावना व्यवहार है।

विदूषक—नाम जान लिए, (आप में से) बड़ा कौन है, इसका उत्तर नहीं मिला।

राम—हाथ जोड़ कर संकेत करने से तथा नाम न लेने से उत्तर मिल गया कि कुश बड़ा है।

विदूषक—ठीक, अब जान गया।

राम—आपके गुरु का शुभ नाम?

लव—भगवान् वाल्मीकि।

राम—किस सम्बन्ध से?

लव—उपनयन सम्बन्धी उपदेश के कारण।

रा०—अहमत्रभवतोः शरीरस्य धातारं पितरं वेदितुमिच्छामि ।

ल०—नहि जानाम्यस्य नामधेयम् । न कश्चिदस्मिंस्तपोवने तस्य नाम व्यवहरति ।

रा०—अहो माहात्म्यम् ।

कु०—जानाम्यस्य नामधेयम् ।

रा०—कथ्यताम् ।

कु०—निरनुक्रोशो नाम ।

रा०—(*विदूषकमवलोक्य*) अपूर्वं खलु नामधेयम् ।

वि०—(*विचिन्त्य*) एवं तावत् पृच्छामि । निरनुक्रोश इति क एवं भणाति ?

एव्वं दाव पुच्छिस्सं । णिरणुक्कोसोत्ति को एव्वं भणादि ?

कु०—अम्बा ।

राम—मैं आपके जन्मदाता पिता के विषय में जानना चाहता हूं ।

लव—उसका नाम नहीं जानता । इस तपोवन में कोई भी उसका नाम नहीं लेता ।

राम—बड़ा महान् व्यक्तित्व है ।

कुश—मैं उसका नाम जानता हूँ ।

राम—कहो ।

कुश—निर्दय ।

राम—(विदूषक की ओर देखकर) विचित्र नाम है ।

विदूषक—(कुछ सोच कर) एक बात पूछना चाहता हूँ, उसे 'निर्दय' कौन पुकारता है ?

कुश—माँ ।

वि०—किं कुपितैवं भणत्युत प्रकृतिस्था ?

किं कुविदा एव्वं भणादि आदु पइदित्था ?

कु०—यद्यावयोर्बालभावजनितं किञ्चिदविनयं पश्यति तदैवमधिक्षिपति—निरनुक्रोशस्य पुत्रौ मा चापलम्—इति ।

वि०—एतयोर्यदि पितुर्निरनुक्रोश इति नामधेयम्, एतयोर्जननी तेनावमानिता निर्वासिता, तस्याप्रभवन्त्येतेन वचनेन दारकौ निर्भर्त्सयति ।

एदाणं जदि पिदुणो णिरणुक्कोसोत्ति णामहेअं, एदाणं जणणी तेण अवमाणिदा णिव्वासिदा, तस्स अप्पवहंती एदिणा वअणेण दराए णिब्भच्छदि ।

रा०—सम्यगुपलक्षितं कौशिकेन । (*निश्वस्य*) धिङ् मामेवंभूतम् । सा तपस्विनी मत्कृतेनापराधेन स्वापत्यमेवं मन्युगर्भैरक्षरैर्निर्भर्त्सयति ! (*सबाष्पमवलोकयति*) अपि सन्निहितस्तत्र भवान् निरनुक्रोशो युष्मदाश्रमे ?

विदूषक—क्रोध में ऐसा कहती है अथवा यूँ (स्वस्थावस्था में) भी ।

कुश—हमारी कोई बाल-सुलभ चपलता देखती है तो इस प्रकार झिड़कती है—"अरे निर्दय के पुत्रो, चपलता [शरारत] मत करो ।"

विदूषक—यदि इनके पिता का नाम 'निर्दय' है तो (मेरे विचार में) इनकी माता उससे तिरस्कृत करके निर्वासित की गई है (तथा) उसके (दुर्व्यवहार को) सहन न कर सकने के कारण इन वचनों से पुत्रों को झिड़कती है ।

राम—कौशिक का अनुमान ठीक है । (दीर्घ श्वास लेकर) मुझे धिक्कार है, वह बेचारी मेरे दोष के कारण अपनी संतान को इस क्रोध भरे वचनों से बुरा भला कहती होगी ।

लवः—न सन्निहितः ।

रा०—(*ससम्भ्रमम्*) अपि श्रूयते ?

(*लवःकुशमवलोकयति*)

कु०—न तस्य पादावस्माकं नमस्कृतपूर्वौ । अम्बायाः पुनरेकवेणी-संसूचितानि तस्योच्छ्वसितानि ।

रा०—किं वा भवन्तौ तेनाघ्रातपूर्वौ ?

कु०—तदपि नास्त्येव ।

रा०—अतिदीर्घप्रवासोऽयं दारुणश्च, यदियता कालेन नाम परस्पर-लोचनगोचरमपि नावतीर्णा यूयम् । (*विदूषकमवलोक्य जनान्तिकम्*) कुतूहलेनाविष्टो मातरमनयोर्नामतो वेदितुमिच्छामि । न युक्तं च मम स्त्रीगतमनुयोक्तुम्, विशेषतस्तपोवने । तत्कोऽत्राभ्युपायः ?

(अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखता है) क्या वह श्रीमन् 'निर्दय' आपके आश्रम में रहते हैं ?

लव—नहीं ।

राम—(घबरा कर) क्या (उसके विषय में कभी कुछ) सुना है ?

(लव कुश की ओर देखता है)

कुश—हमें उसके चरणों में नमस्कार करने का अवसर अभी तक नहीं मिला परन्तु माँ ने (उसी के वियोग में) एक वेणी कर रखी है (तथा) उसी के लिए आहें भरती रहती है ।

राम—क्या उसने अभी तक आपका सिर नहीं चूमा ?

कुश—नहीं, कभी नहीं ।

राम—बड़ा लम्बा तथा भीषण प्रवास है जो कि अब तक आपने [कुश, लव तथा इनके पिता ने] एक दूसरे को देखा ही नहीं ।

(विदूषक की ओर देखकर तथा उसकी ओर मुड़ कर)

वि०–(*जनान्तिकम्*) अप्रतिहतवचनमहत्त्वा हि ब्राह्मणजातिः, अहं पुनः
प्पडिहदवअणमहत्तणा हि बह्मणजादी, अहं उण

पृच्छामि (*प्रकाशम्*) भो किन्नामधेया युवयोर्जननी ?
पुच्छिस्सं भो किण्णामहेआ तुह्मणं जणणी ?

ल०—तस्या द्वे नामनी।

बि—कथमिव ?
कहं विअ ?

ल०—तपोवनवासिनो देवीति नामाह्वयन्ति, भगवान् वाल्मीकिर्वधूरिति।

रा०—कतमत् क्षत्रियकुलं वाल्मीकिमुनिमुखनिर्गतेन वधूशब्देन वर्धते ?

वि०—विस्तीर्णं क्षत्रियकुलमिति न ज्ञायते कतमत् क्षत्रियकुलमिति।
वित्थिण्णं खत्तिअकुलं ति ण जाणीअदि कदमं खत्तिअकुल ति।

उत्कंठा पूर्ण होने के कारण इनकी माता का नाम जानना चाहता हूँ परन्तु स्त्री के विषय में प्रश्न करना मेरे लिए उचित नहीं, विशेषकर तपोवन में। तो क्या किया जाए ?

विदूषक—(एक ओर मुड़कर) ब्राह्मणों का इस में महत्त्व है कि उन्हें किसी प्रकार की भी बात करने में रोक टोक नहीं, अतः मैं पूछता हूँ। (प्रकट) अरे, आपकी माता का क्या नाम है ?

लव—उसके दो नाम हैं।

विदूषक—वह क्यों ?

लव—आश्रमवासी उसे 'देवी' कह कर पुकारते हैं तथा भगवान् पाल्मीकि 'वधू'।

राम—भगवान् वाल्मीकि अपने मुख से 'वधू' शब्द के साथ किस क्षत्रिय वंश का नाम लेते हैं ?

रा०—अपि चेतस्तावद्वयस्य मुहूर्त्तमात्रम्।

वि०—(उपसृत्य) आज्ञापयतु भवान्।

आणवेदु भवं ।

रा०—अपि कुमारयोरनयोरस्माकं च सर्वाकारसंवादी कुटुम्बवृत्तान्तः ?

वि०—कथमिव ?

कह विअ ?

रा०—पश्य, एतयोः सीतागर्भस्य च तुल्यः कालातिपातः, एतावपि क्षत्रियौ सूर्यान्वयौ, अजातप्रोषितौ च निर्विकारौ राजासनारोहणे, पितरि चानयोर्दारुणत्वसूचनो निरनुक्रोशशब्दः,

---

व्याकरण— अन्वयः—अनु+अयः+एरच्। अजातप्रोषितौ– अजातौ च तौ प्रोषितौ च (कर्मधारय)। सादृश्यबाहुल्येन— सदृशस्यभावः सादृश्यम्, बहुलस्य भावः वाहुल्यम।

विदूषक—क्षत्रिय वंश अति विस्तृत है, विशेष क्षत्रिय कुल का कैसे पता चल सकता है।

राम—मित्र ! जरा इधर आओ।

विदूषक—(समीप जा कर) आज्ञा श्रीमन् !

राम—क्या इन बालकों के कुल का वृत्तान्त पूर्णतः हमारे साथ नहीं मिलता ?

विदूषक—सो कैसे ?

राम—देखो, इन का वय तथा सीता के गर्भ से लेकर व्यतीत हुआ काल एक बराबर है, यह भी सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं, जन्म से पूर्व ही निर्वासित हुए है तथा राजसिंहासन पर बैठने से भी इन्हें कोई हानि नहीं हुई, इनका अपने पिता के लिये, क्रूरता के सूचक निरनुक्रोश [निर्दय] शब्द का व्यवहार, तथा माता

मातुश्च माहात्म्यविभावनो देवीशब्दः । सर्वथाहमनेन सादृश्य-बाहुल्येन पर्याकुलोऽस्मि मन्दभाग्यः ।

(वैक्लव्यं नाटयति)

वि०—किं तवेदृशोऽभिप्रायः, सीतागर्भगतावेतौ दारकाविति ?

किं तव ईरिसो अहिप्पाओ सीदागब्भदा एदे दारआ त्ति ?

रा०—मा मैवम् । कथं हन्त ! तपोवनवासिनि जने सम्बन्धमीदृश-मध्यारोपयामि । किन्तु—

एतत्कुमारयुगलं वयसान्वयेन
श्यामोन्नतेन वपुषा विपदानया च ।
तां मैथिलीं तनयसम्भविनीमवस्था-
मादाय मामतितरां तरलीकरोति ॥१५॥

अन्वय—एतत् कुमार युगलं वयसा, अन्वयेन, श्यामोन्नतेन वपुषा अनया विपदा च तां मैथिलीं तनयसम्भविनीम् अवस्थाम् आदाय माम् अतितरां तरलीकरोति ॥१५॥

व्याकरण—तनयसंभविनीम्—तनयस्य तनययोः वा संभवः जन्म यस्याम् अस्ति सा, ताम् (अवस्थाम्) । तरलीकरोति—अतरलं मां तरलं-करोति इति । च्विः । यहां च्व्यन्त का समास नहीं; तिङन्त के साथ लोक समास नहीं होता । 'तरली' यह पृथक अव्यय पद है ।

का (उसके) महत्त्व का बोधक 'देवी' यह नाम इतनी समानताओं के कारण मैं अभागा व्याकुल हो गया हूं [दुविधा में फंस गया हूँ] ।

(व्याकुलता का प्रदर्शन करता है)

विदूषक—आपका क्या विचार है कि ये सीता के पुत्र हैं ?

राम—ना, ऐसे मत कहो । ओह ! मैं तपस्वियों के साथ ऐसा संबन्ध कैसे स्थापित कर सकता हूं । किंतु—

(*चिन्ताशोकं नाट्यति*)

(*नेपथ्ये*)

भो भोः कोऽत्र सन्निहितस्तत्रभवतोरिक्ष्वाकुकुलकुमारयोः कुश-लवयोः ?

उभौ—(*आकर्ण्य*) द्वावप्यावां सन्निहितौ ।

(*पुनर्नेपथ्ये*)

किमितीयतीं वेलां नियोगः प्रत्युदास्यत ?

वाल्मीकिना मुनिवरेण महारथस्य
याऽसौ पुराणपुरुषस्य कथा निबद्धा ।

व्याकरण - नियोगः—नियुज्यते इति । घञ् । इयती वेलाम्— अत्यन्त संयोगे द्वितीया । यहां नियोग प्रत्युदास्यते ऐसा पाठ चाहिये । उद्+√आस् नित्य अकर्मक है । 'प्रति' के योग में द्वितीया होनी चाहिए ।

अन्वय—मुनिवरेण वाल्मीकिना महारथस्य पुराणपुरुषस्य या असौ कथा निबद्धा सा च राघवश्रुतिपथ-अतिथितां नेया, मध्यसवनस्य कालः च न लङ्घनीयः ॥१६॥

ये दोनों बालक (अपनी) अवस्था, वंश, सांवले (तथा) ऊँचे शरीर से तथा इस (जन्म से पूर्व ही निर्वासन रूप) विपत्ति से गर्भिणी सीता की याद दिला कर मुझे अत्यन्त अधीर कर रहे हैं ॥१५॥

(चिन्ता तथा खेद का प्रदर्शन करता है)

(नेपथ्य में)

अरे ! इक्ष्वाकु कुल के राजकुमार कुश तथा लव में से यहां कौन है ?

दोनों—(सुनकर) हम दोनों यहीं हैं ।

सा राघवश्रुतिपथातिथितां च नेया
कालश्च मध्यसवनस्य न लङ्घनीयः ॥ १६ ॥

उभौ—राजन्, उपाध्यायदूतोऽस्मान् त्वरयति ।

रा०—मयापि सम्भावनीय एव महार्थसंविधायी मुनिनियोगः ।

तथा हि –

भवन्तौ गायन्तौ कविरपि पुराणो व्रतनिधि-
गिरां सन्दर्भोऽयं प्रथममवतीर्णो वसुमतीम् ।

व्याकरण—पुराणपुरुषस्य—पुराणश्चासौ पुरुषः च तस्य (कर्मधारय०) पुराणम्—पुरा नवं भवतीति निरुक्तम् । व्याकरण के अनुसार 'पुराण' तथा 'पुरातन'—दोनों रूप निर्दोष है । निबद्धा—नि+√बन्ध्+क्त, प्र० ए० । राघवश्रुति०—राघवस्य श्रुतेः पन्थाः, तस्य श्रुतिपथस्य अतिथिताम् । नेयः—√नी+यत् । लङ्घनीयः—लघ+अनीयर ॥१६॥

अन्वय—भवन्तौ गायन्तौ, कविः अपि पुराणः व्रतनिधिः, गिराम् अयं सन्दर्भः वसुमतीं प्रथमम् अवतीर्णः, सरसिरुहनाभस्य इयं कथा च नियतं श्लाघ्या, अयं परिकरः श्रोतारं पुनाति रमयति च ॥१७॥

मुनिवर वाल्मीकि ने महारथी (रामावतार) आदि पुरुष (विष्णु) की जो कथा काव्य रूप में लिखी है वह (तुम्हें) महाराज राम को सुनानी है तथा मध्याह्न के स्नानादि का समय भी न चूकना चाहिए ॥१६॥

दोनों—राजन्! गुरू जी का दूत हमें शीघ्रता करने के लिए प्रेरित कर रहा है ।

राम—मुझे भी मुनि की महान्-कार्य साधक आज्ञा का सम्मान करना चाहिए । क्योंकि—

कथा चेयं श्लाघ्या सरसिरुहनाभस्य नियतं
पुनाति श्रोतारं रमयति च सोऽयं परिकरः ॥ १७ ॥

वयस्य ! अपूर्वोऽयं मानवानां सरस्वत्यवतारः तदहं सुहृज्जन-साधारणं श्रोतुमिच्छामि । सन्निधीयतां सभासदः, प्रेष्यतामस्मदन्तिकं सौमित्रिः, अहमप्येतयोश्चिरासनपरिखेदं पादाविहरणेनापहरामि । (*इति निष्क्रान्ताः सर्वे*)

इति पञ्चमोऽङ्कः

व्याकरण—गायन्तौ—√गै+शतृ, प्र० द्वि० प्रथमासामानाधिकरण्येपि लटः शत्रादेशः । गायत इत्यर्थः । व्रतानां निधिः । (व्रत—पुं०, नपुं०) निधिः—उपसर्गे घोः किः । अवतीर्णः अव+√तॄ+क्त, प्र० ए० । सरसिरुहनाभस्य—सरसिरुहं नाभौ यस्य (बहुव्री०) । श्लाध्या—√श्लाघ्+ण्यत्, प्र० ए० । पुनाति—√पू (पवित्र करना) क्रयादि, लट्, प्र० ए० । रमयति—√रम्+णिच्, लट्, प्र० ए० ॥१७॥

आप दोनों (कुशल) गायक हैं, पुरातन मुनि वाल्मीकि इस (काव्य) के रचयिता हैं, वाणी की यह साहित्यिक रचना पृथ्वी पर प्रथम बार ही हुई है तथा (भगवान्) विष्णु की यह कथा निःसंशय प्रशंसनीय है; (गुणों का यह (अपूर्व) समवाय सुनने वाले को पवित्र तथा आनन्दित करता है ॥१७॥

मित्र ! सरस्वती का, मनुष्यों में (काव्य रूप में) यह अवतार अपूर्व [नूतन] है अतः (इसे) मित्र मण्डली में बैठ कर सुनना चाहता हूँ । सभासदों को मेरे पास बुलाओ, तथा लक्ष्मण को (भी) मेरे पास भेजो । मैं भी इनके चिरकाल तक (मेरी गोदी में) बैठे रहने से उत्पन्न थकावट को जरा टहल कर दूर करता हूँ ।

(सब निकल जाते है)

पंचम अङ्क समाप्त

षष्ठोऽङ्कः

(*ततः प्रविशति कञ्चुकी*)

क०—सम्पादितकौशिकमुखसङ्क्रान्तपार्थिवाज्ञोऽहमत्रस्थितं स्वामिन-
मवलोकयामि (*विलोक्य*) एष प्राप्त एव स्वामी—

महाशीलस्त्रिभिः सार्धमित एवाभिवर्तते ।
परिष्कृतस्त्रिभिर्वेदैरश्वमेध इवाध्वरः ॥ १ ॥

व्याकरण—सम्पादितकौशिक०—कौशिकस्य मुखं कौशिकमुखम् । तत्र सङ्क्रान्ता—कौशिक मुखसङ्क्रान्ता । पार्थिवस्य आज्ञा=पार्थिवाज्ञा । पृथिव्याः ईश्वर=पार्थिवः । सम्पादिता कौशिक मुखसङ्क्रान्ता पार्थिवाज्ञा येन सः ।

अन्वय—त्रिभिः वेदैः परिष्कृतः अश्वमेधः अध्वर इव (राजा) महाशीलैः त्रिभिः सार्धम् इत एव अभिवर्तते ॥ १ ॥

छठा अङ्क

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—कौशिक द्वारा प्राप्त महाराज की आज्ञा का पालन करके
मैं यहां खड़ा उन की (महाराज की) प्रतीक्षा करता हूँ ।
(देख कर) महाराज तो आ गए—

तीनों वेदों (ऋग्यजुसाम) से सुशोभित अश्वमेध यज्ञ के समान (महाराज) उच्च-चरित्र वाले (लक्ष्मण, कुश, लव) तीनों के साथ इधर ही आ रहे हैं ।

(ततः प्रविशति कुशलवाभ्यामनुगम्यमानो रामभद्रो लक्ष्मणश्च)

(सर्वे परिक्रामन्ति)

क०—(उपसृत्य सर्वे) जयत्वार्यः, एतत्सज्जमास्थानमण्डपम्, एतदासनं च । (उपविशन्ति)

क०—इतस्तावदवलोकयतु देवः, एते राघवाः पौरजानपदाश्च देवं सम्भावयन्ति ।

रा०—(दृष्ट्वा) किमिदमपरमस्मदन्तिकाद्यवनिकया तिरोधीयते ?

क०—*एतास्तिस्रो महादेव्यः कौसल्याद्या महीपतेः ।*

एतद्भरतशत्रुघ्नलक्ष्मणानां वधूत्रयम् ॥ २ ॥

अन्वय—एताः कौसल्याद्याः महीपतेः तिस्रः महादेव्यः, एतद् भरत—शत्रुघ्न—लक्ष्मणानां वधूत्रयम् ॥ २ ॥

(आगे २ राम एवं लक्ष्मण तथा उनके पीछे कुशव लव) का प्रवेश)

(सभी इधर उधर घूमते है)

कञ्चुकी—(समीप जाकर) आर्य की जय हो, सभामंडप तैयार है। तथा राजसिंहासन इधर है ।

(सभी बैठ जाते है)

कञ्चुकी—महाराज ! इधर देखिए, रघुवंशी, नागरिक तथा ग्रामीण आप का स्वागत कर रहे हैं।

राम—(देखकर) यह और क्या है (जो कि) पर्दे द्वारा हम से छिपाया जा रहा है ?

कञ्चुकी-यह कौशल्या आदि महाराज (दशरथ) की तीन रानियाँ हैं, और यह भरत, शत्रुघ्न तथा लक्ष्मण की तीन पत्नियाँ हैं ॥ २ ॥

ल०—(कञ्चुकिनमुद्दिश्य) आर्य ! वैदेही च न देवीषु सङ्ख्यायते, न वधूषु च ।

रा०—(निश्वस्य) कञ्चुकिन् ! गच्छ त्वं स्वभूमिमध्यास्व ।

क०—यदाह (इति निष्क्रान्तः)

रा०—आर्यौ ! प्रस्तूयाम् ।

कुशलवौ—

उपयेमे ततस्तिस्रो धर्मपत्नीर्महीपतिः ।
कौसल्यामथ कैकेयीं सुमित्रां च सुमध्यमाम् ॥ ३ ॥

रामलक्ष्मणौ—(सहर्षम्) तात एव कथानायकतामुपनीतः कविना ।

(उभौ नमस्कृत्यासनादवतरतः)

कुशलवौ—*कौसल्या सुषुवे रामं—*

(लक्ष्मणः प्रणमति)

अन्वय—ततः महीपतिः तिस्रः धर्मपत्नीः— कौसल्यां अथ कैकेयीं, सुमध्यमां सुमित्रां च उपयेमे ॥ ३ ॥

लक्ष्मण—(कञ्चुकी को सम्बोधित करके) आर्य ! देवी सीता की न रानियों में गणना की गई है न वधुओं में ।

राम—(दीर्घ श्वास लेकर) कञ्चुकी ! तुम अपने स्थान पर जाओ ।

कञ्चुकी—जो आज्ञा (चला जाता है)

राम—आर्यो ! प्रारम्भ करो ।

कुश-लव—तदनन्तर महाराज (दशरथ) ने तीन धर्म पत्नियों— कौशल्या, कैकेयी तथा कृशोदरी सुमित्रा—से विवाह किया ॥३॥

राम-लक्ष्मण—(प्रसन्नता पूर्वक) कविवर ने पूज्य पिता जी को ही कथा का नायक बनाया है ।

(दोनों प्रणाम करके सिंहासन से उतरते है)

कुशलवौ—कैकेयी भरतं ततः
सुमित्रा जनयामास यमौ शत्रुघ्नलक्ष्मणौ ॥ ४ ॥
(रामः लक्ष्मणमालिङ्गति)

कुशलवौ—उपयेमे ततः सीतां रामः सौमित्रिरूर्मिलाम् ।
तथा भरतशत्रुघ्नौ कुशध्वजसुते उभे ॥ ५ ॥
बाल्ययौवनयोर्मध्ये वर्तमाना नृपात्मजाः ।
नवयोत्कण्ठया चैव कलत्रे दुःखस्थिति ययुः ॥ ६ ॥

ल०—रमणीयः ।

अन्वय—कौशल्या रामं सुषुवे, ततः कैकेयी भरतं, सुमित्रा (च) यमौ शत्रुघ्नलक्ष्मणौ जनयामास ॥ ४ ॥

अन्वय—ततः रामः सीता उपयेमे, सौमित्रिः उर्मिलां उपयेमे तथा भरत शत्रुघ्नौ उभे कुशध्वज सुते (उपयेमाते) ॥ ५ ॥

अन्वय—बाल्य यौवनयोः मध्ये वर्त्तमानाः नृपात्मजाःकलत्रे नवया उत्कण्ठया चैव दुःस्थितिं ययुः ॥ ६ ॥

कैकेयी ने भरत को तथा सुमित्रा ने यमज पुत्रों शत्रुघ्न और लक्ष्मण को जन्म दिया ॥ ४ ॥

(राम लक्ष्मण का आलिङ्गन करता है)

कुश-लव— तत्पश्चात् राम ने सीता से, लक्ष्मण ने उर्मिला से तथा भरत और शत्रुघ्न ने (जनक के भाई) कुशध्वज की दो बेटियों (माण्डवी और श्रुतकीर्ति) से विवाह किया ॥ ५ ॥

बाल्य तथा युवावस्था में स्थित राजा के पुत्र पत्नियों के प्रति नई २ उमंगों के कारण अति चञ्चल हो गए ॥ ६ ॥

लक्ष्मण—अति सुन्दर ।

रा०—अलं कालातिपातेन, गीयताम् ।

जरसा पलितस्तातः काकपक्षधरा वयम् ।
जानुदघ्नास्तदा तेऽपि साकेतोद्यानपादपाः ॥ ७ ॥

कुशलवौ—*अथाभिषेकसम्भारे रामस्य समुपस्थिते ।*
भरते मातुलं द्रष्टुं मातामहपुरं गते ॥ ८ ॥

रा०—(*आत्मगतम्*)नियतं मध्यमाम्बा निन्द्यते । (*प्रकाशम्*)
तमुद्देशमुल्लङ्घ्य सीतापहरणात्प्रभृति गीयताम् ।

कुशलवौ—*कालेन रूपसौन्दर्यं श्रुत्वा शूर्पणखामुखात् ।*
जहार देहं सीताया न चारित्रं दशाननः ॥ ९ ॥

अन्वय—तातः जरसा पलितः, वयं काकपक्षधराः, तदा ते साकेत-उद्यान-पादपाः अपि जानुदघ्नाः आसन् ॥ ७ ॥

अन्वय—अथ रामस्य अभिषेक सम्भारे समुपस्थिते भरते च मातुलं द्रष्टुं मातामह पुरं गते—॥ ८ ॥

राम—समय नष्ट न करो, गाओ ।
पिता जी के केश बुढ़ापे के कारण श्वेत हो गए थे, हम (अभी) काक पक्षधारी (छोटे बालक) थे, उस समय अयोध्या के उपबन के वे वृक्ष भी घुटनों तक ऊँचे थे ॥ ७ ॥

कुश—लव—फिर राम के यौवराज्याभिषेक सामग्री के उपस्थित होने पर तथा भरत के, मामा को मिलने के लिए ननिहाल जानेपर—॥ ८ ॥

राम—(अपने मन म) मुझे डर है (नियतम्=ध्रुवम्=शङ्के) किये मंझली माँ की निन्दा करेंगे । (प्रकट) यह प्रसङ्ग छोड़ कर सीता-हरण से लेकर गाओ ।

ल०—(*राममवलोकयति*)

कुशलवौ०— *ततो बध्वार्णवे सेतुं निहत्य युधि रावणम् ।*
सीतामादाय रामोऽपि साकेतं पुनरागतः ॥ १० ॥

रा०—अहो संक्षेपः ।

कुशलवौ—प्राप्तराज्यस्ततो रामो जनवादेन नोरितः ।
आहूय लक्ष्मणं प्राह सीता निर्वास्यतामिति ॥ ११ ॥

अन्वय—कालेन शूर्पणखा मुखात् रूप सौन्दर्यं श्रुत्वा दशाननः सीतायाः देहं जहार, चारित्रं न ॥ ६ ॥

अन्वय—ततः रामः अर्णवे सेतुं बध्वा युधि रावणं निहत्य सीताम् आदाय पुनः अपि साकेतम् आगतः ॥ १० ॥

अन्वय—ततः प्राप्तराज्यः रामः जनवादेन नोरितः लक्ष्मणम् आहूय सीता निर्वास्यताम् इति प्राह ॥ ११ ॥

कुश-लव—काल-क्रम से शूर्पणखा के मुख से (सीता के) रूप सौन्दर्य का बखान सुन कर रावण ने सीता को हर लिया (परन्तु उसके) चरित्र को न हर सका ॥ ६ ॥

(लक्ष्मण रामकी ओर देखता है)

कुश-लव—तो राम समुद्र पर पुल बांध कर, युद्ध में रावण को मार कर (और) सीता को लेकर पुनः अयोध्या में लौट आए ॥ १० ॥

राम—कितना संक्षिप्त वर्णन है ।

कुश-लव—इस के पश्चात् राज्य पाकर रामने लोकनिन्दा (के भय से) प्रेरित हो लक्ष्मण को बुलाकर कहा, "सीता को वन में छोड़ आओ" ॥ ११ ॥

वाष्पपर्याकुलमुखीमनाथां शोकविक्लवाम् ।
उद्वहन्तीं च गर्भेण पुण्यां राघवसन्ततिम् ॥ १२ ॥
सीतां निर्जनसम्पाते चण्डश्वापदसङ्कुले ।
परित्यज्य महारण्ये लक्ष्मणोऽपि न्यवर्तत ॥ १३ ॥

ल०—अहो ! अयशोभागी लक्ष्मणः ।

रा०—कस्तवात्रापराधः, रामपराक्रमाः खल्वेते गृह्यन्ते । ततः ।

कुशलवौ—एतावती गीतिः ।

अन्वय—लक्ष्मणः अपि वाष्पपर्याकुलमुखीं, अनाथां शोक-विक्लवां, गर्भेण च पुण्यां राघवसन्ततिं उद्वहन्तीं सीतां निर्जन सम्पाते चण्डश्वापदसङ्कुले महा-अरण्ये परित्यज्य न्यवर्तत ॥ १२ १३ ॥

व्याकरण —वाष्पपर्याकुलमुखीम्—बाष्पैः पर्याकिलं मुखं, यस्याः ताम् (बहुव्री०) । शोक विक्लवाम्—शोकेनविक्लवाम् (सुप्सुपा) । उद्वहन्तीम् निर्जनसम्पाते—निर्गतः जनसम्पातः जनसंचार यस्य तत् तस्मिन् । उद्+√वह +शतृ, द्वि० ए० । चण्डश्वापदसङ्कुले—चण्डैः सङ्कुले (सुप्सुपा) परित्यज्य परित्यज्य परि+√त्यज्+ल्यप् । न्यवर्तत—नि+√वृत्म्वा० (आत्मने) लट्, प्र० ए० ॥ १२—१३ ॥

लक्ष्मण भी अश्रुपूर्ण मुख वाली, अनाथ, शोक-विह्वल तथा गर्भ में रघुकुल की पवित्र सन्तान को लिए हुए सीता को सुनसान (तथा) प्रचण्ड हिंसक जीवों से परिपूर्ण महा वन में छोड़ आया । १२–२३ ॥

लक्ष्मण—आह ! लक्ष्मण ही अपयश का भागी बना ।

राम—तुम्हारा इस में क्या अपराध है, यह राम के ही 'पराक्रमों' का वर्णन है, आगे ।

कुश–लव—(बस यह)गीत इतना ही है । [अथवा यहीं समाप्त हो जाता है]

रा०— (*सोद्वेगम्*) सौमित्रे, कष्टमापतितम्—

उभौ— *ततः प्राणैः परित्यक्ता निराशा जनकात्मजा ।*
अप्रियाख्यानभीतेन कविना संहृता कथा ॥ १४ ॥

कुशः—(*अपवार्य*) महाभागावेतौ सीतासङ्कथायामत्यन्तविषादिनौ तस्मादनुयोक्ष्ये । (*लक्ष्मणमुद्दिश्य*) अपि भवन्तौ रामायण-कथानायकौ रामलक्ष्मणौ ?

ल०—तौ क्लेशभागिनौ ।

कुश—किं नीता त्वया सीता ?

ल०—(*सलज्जम्*) मया मन्दभाग्येन ।

अन्वय—ततः निराशा जनकात्मजा प्राणैः परित्यक्ता अप्रिय आख्यानभीतेन कविना कथा संहृता ॥ १४ ॥

राम—(उद्वेग के साथ) लक्ष्मण ! भारी विपत्ति आ पड़ी हैं ।

दोनों— इसके पश्चात् हताश सीता ने (अवश्य) प्राण छोड़ दिए (होंगे अतएव) अप्रिय कथन के भय से (निरुत्साहित हो कर) कवि ने (यहीं) कथा समाप्त कर दी ॥ १४ ॥

कुश—(एक ओर हट कर) दोनों महानुभाव सीता के प्रसङ्ग से अत्यधिक दुखी हो रहे हैं अतः इन्हें पूछाता हूँ (लक्ष्मण को सम्बोधित करके) क्या आप दोनों रामायण की कथा के मुख्य पात्र राम और लक्ष्मण हैं ।

लक्ष्मण—(हां)वही विपत्ति के मारे हैं ।

कुश—क्या सीता को आप (वन में) ले गए थे ।

लक्ष्मण—(लज्जा पूर्वक) हां मैं अभागा ही ।

कुश—क्या सीताराम की धर्मपत्नी ?

लक्ष्मण—और क्या ?

कुशवः—किं सीता रामस्य धर्मपत्नी ?
ल०—अथ किम् ?
कुश—अथ सीतायास्तद्गर्भस्य वा विदितः कश्चिद् वृत्तान्तः ?
ल०—विदितो युष्मत्सङ्गीतेन ।
रा०—किमितः पुनः कल्याणमावेदयति ? (*विचिन्त्य*) एवं तावदनुयोक्ष्ये । आर्यौ, किमेष युवयोरागमावधिः आहोस्वित्सन्दर्भावधिः ?
कुश—न वयं जानीमः ।
रा०—कण्वोऽनुयोक्तव्यः। सौमित्रे, कण्वमाह्वय ।

(लक्ष्मणः निष्क्रम्य कण्वेन सह पुनः प्रविष्टः)

कण्व—(*विलोक्य*)
स एष रामो नयनभिरामः सीतासुताभ्यां समुपास्यमानः ।
यदृच्छया तिष्यपुनर्वसुभ्यां पार्श्वस्थिताभ्यामिव शीतरश्मिः ॥ १५ ॥

अन्वय—नयनाभिरामः सः एव रामः सीतासुताभ्यां यदृच्छया समुपस्थिताभ्यां तिष्यपुनर्वसुभ्यां शीतरश्मिः इव समुपास्यमानः ॥१५॥

कुश—क्या सीता का अथवा उसकी सन्तान का कोई वृत्त ज्ञात है ?
लक्ष्मण—आप के गीत से ही पता चला है ।
राम—क्या इस के पश्चात् कोई शुभ समाचार देगा ? (सोच कर) तो यूँ पूछता हूँ । आर्यो ! क्या आपने यहां तक पढ़ा है अथवा काव्य ही इतना है ?
कुश—(यह) हम नहीं जानते ।
राम—कण्व से पूछना चाहिए । लक्ष्मण ! कण्व को बुलाओ ।

(लक्ष्मण बाहर जाकर कण्व के साथ पुनः प्रवेश करता है)

कण्व —(देख कर) देखने में अत्यन्त कमनीय यह राम, सीता के पुत्रों की संगति में ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे अकस्मात् उपस्थित हुए तिष्य और पुनर्वसु नक्षत्रों की संगति में चन्द्रमा ॥ १५ ॥

ल०—कण्वोऽयमार्य सम्प्राप्तः ।

रा०—(*प्रणम्य*) इदमासनमास्यताम् ।

कण्व—(*उपविश्य*) यदि रामायणश्रवणकौतुकं कथ्यतां कुत्रावधिरभिहितः कुशलवाभ्यामिति ।

ल०—"सीतां निर्जनसम्पाते" (*इति पठित्वा*) एषा कुशलवयोर्गीतसीमा ।

कण्व—श्रूयतां ततः परम् ।

रा०—का गतिः ?

कुशलवौ—रामदाराणां भद्रं गायति ।

कण्व—*ततः श्रुत्वा स शिष्येभ्यो वाल्मीकिर्मुनिरुत्तमः ।*
स्वयं सीतां समाश्वास्य निनाय स्वं तपोवनम् ॥ १६ ॥

अन्वय—ततः उत्तमः मुनिः सः वाल्मीकिः शिष्येभ्यः श्रुत्वा सीतां स्वयं समाश्वास्य स्वं तपोवनं निनाय ॥ १६ ॥

लक्ष्मण—आर्य ! कण्व आ गए हैं ।

राम—(प्रणाम करके) इस आसन पर विराजिये ।

कण्व—यदि रामायण सुनने की इच्छा है तो कहो कुश—लव ने कहाँ तक सुनाई है ?

लक्ष्मण—सीता को शून्य प्रदेश में ''......(यह श्लोक बोल कर), यहां तक कुश—लव ने सुनाया है ।

कण्व—इस के आगे सुनिए ।

राम—क्या करूं ?

कुश-लव—क्या श्री राम की पत्नी का शुभ समाचार सुनाएंगे ?

कण्व—तदनन्तर मुनिवर वाल्मीकि शिष्यों से (शून्य वन में अकेली रोती हुई किसी स्त्री का समाचार) सुन सीता को स्वयं सान्त्वना दे कर अपने तपोवन में ले आए ॥ १६ ॥

रा०—अनुगृहीतं भगवता रघुकुलम्, अभ्युद्धृतोऽस्मि भगवता ।
कुशलवौ—दिष्ट्या कुशलिनो रामदाराः (*सर्वे हर्षं नाटयन्ति*)
कुशः—अयि वत्स लव, कासौ वाल्मीकितपोवने सीता नाम ?
लवः—न काचित्, केवलं गीतिनिबन्धनान्येतानि सीता सीतेत्यक्षराणि ।
रा०—ततस्ततः ।
कण्व—*परिपूर्णे ततः काले द्यौरिवेन्दुदिवाकरौ ।*
सीताऽपि जनयामास सा यमौ तनयावुभौ ॥ १७ ॥

व्याकरण—गीतसीमा—गीतस्य सीमा । 'सीमन्' (नकारान्त तथा आकारान्त) नित्यस्त्रीलिङ्ग है । अतः इस के साथ 'एषा' ऐसा सर्वनाम होना चाहिये । मूलपाठ में—'एष' लिपिकार का प्रमाद है ।

अन्वय—ततः काले परिपूर्णे सा सीता अपि द्यौः इन्दु-दिवाकरौ इव उभौ यमौ तनयौ जनयामास ॥ १७ ॥

राम—भगवान् (वाल्मीकि) ने रघुकुल पर अपार कृपा की है, उन्हों ने मुझे बचा लिया है ।
कुश-लव—प्रसन्नता का विषय है कि राम की धर्मपत्नी सकुशल है ।
(सभी प्रसन्नता का अभिनय करते हैं)
कुश—प्रिय लव । वाल्मीकि के आश्रम में सीता नाम की कौन सी स्त्री है ।
लव—कोई भी नहीं, 'सीता, सीता' यह अक्षर केवल काव्य में आते हैं ।
राम—फिर ।
कण्व—तत्पश्चात् (गर्भ का) समय पूरा होने पर सीता ने भी जैसे द्युलोक सूर्य तथा चन्द्रमा को जन्म देता है । वैसे दो जुड़वें बेटों को जन्म दिया ।

ल०—जयत्वार्यः, दिष्ट्या वर्धतां पुत्रजन्मना ।

रा०—(*स्वगतम्*) अपि नाम कुशलवौ स्याताम् ।

कण्वः—*जातावस्थोचितं कर्म विदधानो यथाक्रमम् ।*
स चकार तयोर्नाम मुनिः कुशलवाविति ॥ १८ ॥

रा०—कथमेतावेव सीतातनयौ ? हा पुत्र कुश ! हा पुत्र लव !

ल०—इयं सा देवीसम्भवाऽर्यस्यात्मसङ्क्रान्तिः ।

कुशलवौ—कथमयं सः । हा तात, त्रायस्व (*सर्वे परस्परमालिङ्ग्य मोहं गच्छन्ति*)

कण्व—(*सविषादम्*) किमेतत्कष्टमापतितम् ।

अन्वय—सः मुनिः जात-अवस्था-उचितं कर्म यथाक्रमं विदधानः तयोः कुशलवौ [इति] नाम चकार ॥ १८ ॥

लक्ष्मण—आर्य की जय हो, रघुकुल खुशी से फले फूले ।

कुश/लव—पुत्र-जन्म पर महाराज को बधाई हो ।

राम—(अपने मन में) सम्भवतः वह कुश-लव ही हों ।

कण्व—उस मुनि ने जातक की अवस्था के योग्य जातकर्मादि सब संस्कार यथाविधि करते हुए उनका नाम कुश तथा लव रखा ॥१८॥

राम—क्या यही सीता के पुत्र हैं ? हा पुत्र कुश ! हा पुत्र लव !

लक्ष्मण—देवी सीता से उत्पन्न यह आपकी (ही) प्रतिछाया है ।

/लव- क्या यह हैं वह । हा पिता जी ! बचाओ ।

(सभी परस्पर गले मिल कर मूर्छित हो जाते हैं)

कण्व—(खेद के साथ) यह क्या आपत्ति आ पड़ी ।

मया तु मन्दभाग्येन भद्रं तु किल गायता ।
रघुप्रवीराश्चत्वारो हितेनैकेन पातिताः ॥१६॥

(*निर्वर्ण्य*) दिष्ट्या श्वासोद्गम इव । अहमेतं वृत्तान्तं भगवते देव्यै च निवेदयामि । (*इति निष्क्रान्तः*)

(*ततः प्रविशति वाल्मीकिः ससम्भ्रमं सीता च*)

वा०—वत्से, त्वरस्व मा परिलम्बिष्ठाः; अप्रतिक्रियमाणा मूर्च्छा निष्क्रान्तमापद्यते ।

सीता—कथय कथय परमार्थम्, अपि ध्रियन्ते राघवाः ?
कहेहि कहेहि परमत्थं, अवि धरन्ति राहवा ?

वा०—समाश्वसिहि, ध्रियन्ते राघवाः । किमेतान्न पश्यति भवत्युच्छ्वसितान् ?

अन्वय—मन्दभाग्येन मया भद्रं गायता एकेन हितेन चत्वारः रघुप्रवीराः पातिताः ॥१६॥

मुझ अभागे ने (अपने जाने) शुभ समाचार सुनाया पर (इस) एक हित की बात ने चारों रघुवीरों को धराशायी [मूर्च्छित] कर दिया । ॥१६॥

(देख कर) सौभाग्य से श्वास लेरहे हैं । मैं यह घटना भगवान् (वाल्मीकि) तथा देवी (सीता) को सुनाता हूँ ।
(चला जाता है)

(वाल्मीकि तथा उद्विग्न सीता का प्रवेश)

वाल्मीकि—पुत्र ! जल्दी करो, देरी मत करो; मूर्च्छा का प्रतिकार न करने पर मृत्यु हो जाती है ।

सीता—ठीक २ बताओ, राघव जीवित हैं ना ?

वाल्मीकि—धैर्य रखो, राघव जीवित हैं । क्या तुम देख नहीं रही (कि) ये श्वास ले रहे हैं ?

सीता—दृढं प्रत्यायितास्मि तातेन ।
दिढं पच्चाइदह्मि तादेण ।

वा०—(*अन्वेषणमभिनीय*)

मैथिलि प्रहिणु लोचने ततः साधु धैर्यमवलम्ब्य यत्नतः ।
त्वत्कथाप्रलयमातरिश्वना पश्य राघवकुलं निपातितम् ॥२०॥

सीता—(*सलज्जम्*) भगवन्, अननुज्ञातदर्शनाहमार्यपुत्रेण ।
भअव, अणणुण्णाददंसणा अहं अंअउत्तेण ।

वा०—(*सावष्टम्भम्*) मयि स्थिते को वा अभ्यनुज्ञायाः प्रतिषेधस्य वा । गच्छ, अभ्यनुज्ञातासि वाल्मीकिना मयैतद्दर्शने, उपसर्प निश्शङ्कमुपयन्तारम् ।

अन्वय—मैथिलि ! यत्नतः धैर्यं अवलम्ब्य ततः लोचने साधु प्रहिण । पश्य, त्वत् कथा-प्रलय-मातरिश्वना राघवकुलं निपातितम् ॥२०॥

व्याकरण—अवलम्बब्य—अव+√लम्व्+ल्यप् । प्रहिणु—√प्र+√हि, लोट् म० ए० । निपातितम्—नि+पत्+णिच्+क्त, प्र० ए० ।

सीता—आपने (मुझे) पूरा विश्वास दिला दिया ।

वाल्मीकि—(परीक्षण करने का अभिनय करके)

सीते ! यत्न पूर्वक धैर्य धारण करके [हृदय थाम कर] इधर दृष्टिपात करो। देखो, तुम्हारी कथारूपी प्रलय-पवन ने रघुकुल [राम, लक्ष्मण, कुश, लव] को (भूमि पर) गिरा दिया है ॥२०॥

सीता—(लज्जा से) आर्य पुत्र की ओर से मुझे (उनके) दर्शन करने की आज्ञा नहीं ।

वाल्मीकि—(दृढ़ता से) मेरे (यहां) होते आज्ञा देने वाला अथवा रोकने वाला कौन है । जाओ, मैं वाल्मीकि तुझे दर्शन करने की अनुमति देता हूं, निश्शङ्क भाव से पति के पास जाओ ।

सी०—(*विलोक्य*) किमेवं वर्तते, सर्वथा हतास्मि मन्दभाग्या।
किं एव्वं वट्ठदि, सव्वहा हदह्मि मन्दभाआ।
(*पतित्वा रोदिति*)

वा०—उत्तिष्ठ समाश्वासय, अहमपि रामलक्ष्मणावभ्युपपत्स्ये। वत्स राम, वत्स लक्ष्मण, समाश्वसिहि।

सी०—जात कुश, जात लव, समाश्वसिहि समाश्वसिहि। (*एवं सलिल-सेकं नाटयति*)
जाद कुश, जाद लव, समस्सस समस्सस।

राम—(*प्रत्यागम्य*) आर्य कण्व! अपि ध्रियते वैदेही?

वा०—पुरत एव वर्तते।

रा०—(*विलोक्य*) कथं भगवान् सम्प्राप्तः। (*लज्जां नाटयति*)

वा०—अलं लज्जया, कलत्रविषया खल्वनुकम्पा।

सीता—(देख कर) यह क्या मामला है, हाय! मैं अभागिन लूटी गई।
(गिर कर रोती है)

वाल्मीकि—उठो, धैर्य धारण करो; मैं भी राम-लक्ष्मण को सचेत करता हूं। वत्स राम! वत्स लक्ष्मण! धैर्य धारण करो।

सीता—वत्स कुश! वत्स लव! धीरज धरो, धीरज धरो [होश में आओ]
(जल छिड़कने का अभिनय करती है)

राम—(चैतन्य हो कर) आर्य कण्व! क्या (देवी) सीता जीवित है?

वाल्मीकि—सामने ही खड़ी है।

राम—(देख कर) क्या भगवान् (वाल्मीकि) आए हैं?
(लज्जा का अभिनय करता है)

वाल्मीकि—लज्जा मत करो, (यह तुम्हारा) पत्नी के प्रति दया का भाव स्वाभाविक ही तो है।

ल०—(आश्वस्य) अपि प्रत्यागतसञ्ज्ञ आर्यः स्यात् ?

रा०—प्रत्यागतोऽस्मि मन्दभाग्यः।

कुशलवौ—(समाश्वस्य) हा तात ! परित्रायस्व ।

(इति पादयोः पतित्वा रुदतः)

रामलक्ष्मणौ—(परिष्वज्य समाश्वासयतः) वत्सौ ! अलमावेगेन ।

वा०—हा तातदर्शनदुर्ललितौ ! कस्य कृ रुद्यते, प्रमृज्यतामश्रु ।

(कुशलवौ वाष्पं प्रमृज्य राममवलोकयन्तौ स्थितौ)

सी०—(अपवार्य) क एषः, यो युवाभ्यामेवं प्रेक्षितः ?

कों एसो, जो तुह्मोहिं एव्व पेक्खिदो ?

राम—अहो ! औदासीन्यं वैदेह्या यदियं चिरकालोपनतमस्मत्सान्निधानं मुखविकासेनापि न सम्भावयति ।

लक्ष्मण—(सचेत हो कर) आर्य स्वस्थ हो गए हो ?

राम—(मैं) अभागा प्रकृतिस्थ हूं ।

कुश/लव—(चैतन्य हो कर) हा पिता जी बचाईये ।

(चरणों में पड़कर रोते हैं)

राम/लक्ष्मण—(आलिंगन करके धीरज बन्धाते हैं) पुत्रो ! उद्विग्न मत होवो ।

वाल्मीकि—ओह ! पिता के दर्शन से व्याकुल (कुश-लव) ! किसके लिए रोते हो, आंसू पोंछो ।

(कुश तथा लव आंसू पोंछ कर राम को देखते हुए खड़े रहते हैं)

सीता—(एक ओर हटकर) यह कौन है जिसे तुम इस प्रकार देख रहे हो ?

राम—ओह ! सीता का व्यवहार कितना उदासीनता पूर्ण है, चिर पश्चात् मिले हुए हम लोगों का प्रफुल्ल-मुख से अभिनन्दन भी नहीं कर रही ।

वा०—(*सकोपम्*) हे राजन् धृतसौहार्द ! महाकुलीन ! समीक्ष्यकारिन् ! किं युक्तं तव प्रतिपादितां जनकेन, गृहीतां दशरथेन, कृतमङ्गलामरुन्धत्या, विशुद्धचारित्रां वाल्मीकिना, भावित-शुद्धिं विभावसुना, मातरं कुशलवयोः, दुहितरं भगवत्या विश्वम्भरायाः, देवीं सीतां जनापवादमात्रश्रवणेन निराकर्तुम् ?

रामः—(*वैक्लव्यं नाटयति*)

वा०—सौमित्रे युक्तमिदम् ? अथवा कस्तवोपालम्भः, नियोज्यस्त्वं कनीयान् । (*राममुद्दिश्य*) अथ दशग्रीववीरवधावसाने सीता-प्रतिग्रहं प्रति कः प्रमाणीकृतो देवः प्रमाणेन ?

व्याकरण—धृत सौहार्दम्—धृतं सौहार्दं येन, तत्सम्बुद्धौ । सुहृदो भावः सौहार्दम् । अण् । उभयपद वृद्धिः । महाकुलीन—महाकुले जातः । 'महाकुल' शब्द से खञ् (—इन) प्रत्यय हुआ । भावितशुद्धिम्—भाविता साधिता शुद्धि यस्याः, ताम् । विभावसुना—विभा—विशिष्टा भा वसु—धनं यस्य स विभावसुः (—अग्निः,) तेन ।

वाल्मीकि—(क्रोध से) हे राजन् ! हे दृढ़ मैत्री निभाने वाले ! हे उच्च कुलोत्पन्न ! हे विवेकशील ! जिसे जनक ने दिया, दशरथ ने स्वीकार किया, अरुन्धती ने जिसे सर्वमंगला बनाया, वाल्मीकि ने पवित्र चरित्र सम्पन्न घोषित किया, अग्नि देवता ने निष्कलंक सिद्ध किया; क्या कुश तथा लव की जननी (तथा) पृथ्वी माता की पुत्री उस सीता की लोक निन्दा सुनने भर से परित्याग कर देना तेरे लिए उचित था ?

(राम विकलता का प्रदर्शन करता है)

वाल्मीकि—लक्ष्मण ! क्या यह उचित था ? अथवा (इसमें) तुम्हारा

रा०— भगवान् वैश्वानरः ।

वा०—भोः प्रत्ययनिवृत्तः किं कारणम् ?

सी०—हा धिक्, हा धिक्, ममाधन्यायाः कुत एवमधिक्षिप्यत
हद्धि, हद्धि, मम अधण्णाए किदे एव्वं अदिक्खिअदि
आर्य पुत्रः ।
अअउत्तो ।

(कर्णौ पिदधाति)

वा०—*कुशलवजननीविशुद्धिसाक्ष्ये*
पवनसखा यदि देवता नियुक्ता ।

अन्वय—कुशलव जननी विशुद्धि साक्ष्ये यदि पवन सखा देवता नियुक्ता, अयं निरंकुशः पृथग् जनापवादः भवतः हृदि कथमिव निहितः नु ॥२१॥

क्या दोष ? तुम छोटे हो (तुम्हें) आज्ञा का पालन करना ही था ।

(राम को सम्बोधित करते हुए)

रावण को मारने के पश्चात् सीता को ग्रहण करने के विषय में किस देवता को प्रमाण माना था [साक्षी बनाया था] ?

राम—अग्नि देवता को ।

वाल्मीकि—अच्छा, तो विश्वास टलने का कारण ?

सीता—हा धिक्कार है, मुझ अभागिन के कारण (आर्य पुत्र को इस प्रकार दंड दिया जा रहा है [अथवा-आर्य पुत्र की इस प्रकार भर्त्सना की जा रही है] ।

(कान बन्द कर लेती है)

बाल्मीकि—कुश तथा लव की माता की (चरित्र) शुद्धि की परीक्षा में यदि अग्नि देवता को साक्षी माना था तो निरर्गल

कथमिव भवतो निरङ्कुशोऽयं
हृदि निहितो नु पृथग्जनापवादः ॥ २१ ॥

रामः—(*आयुज्यमानमिव*)

वा०—कथं वीरहस्तेन मामतिवाहयति ।

अनुकृतिसरले पृथग्जनानां
निवसति चेतसि संश्रितोऽनुरागः ।
नरपतिहृदये न जातमाल्यं (?)
न हि पुलिनेषु तिलस्य सम्भवोऽस्ति ॥ २२ ॥

वत्स ! किमनेन कण्डूयनेन, गृहाण कुशलवौ, गच्छामः स्वमाश्रमपदम् । (*इति परिक्रामति*)

रामलक्ष्मणौ—प्रसीदतु, गच्छतु भगवान् ।

अन्वय—अनुरागः पृथग् जनानां अनुकृति सरले चेतसि संश्रितः निवसति, जात माल्यं ? नरपति हृदये न । पुलिनेषु तिलस्य सम्भवः नास्ति ॥२२॥

जनापवाद को आपने हृदय में कैसे स्थान दिया [उच्छृङ्खल लोगों के आक्षेप पर क्यों विश्वास किया] ? ॥२१॥

(राम वाल्मीकि का अंग स्पर्श करता है)

वाल्मीकि—क्या (अपने) ऊर्जस्वी हाथों से मुझे दूर हटाता है ?

प्रेम प्राकृत [भोले भाले] जनों के सीधे सादे हृदय में स्थिर रहता है, राजाओं के कुटिल हृदय में नहीं (वह इसे कृत्रिम आभरण के रूप में धारण करते हैं)। रेतीले प्रदेश में तिल कभी पैदा नहीं सकते ॥२२॥

वत्स ! दुविधा में क्यों पड़े हो, कुश तथा लव को ग्रहण करो, हम अपने आश्रम को चलते हैं। (चलता है)

राम—भगवान् ! कृपा कीजिए, जाईये ।

वा०—(*प्रतिनिवृत्य*) वैदेहि, तपोवनगतानामपि दण्डं समाज्ञापयति, तत्परिशोध्यतामात्मा।

सीता—अहं किं परिशोधयामि।
अहं किं परिसोधेमि।

वा०—अपापा भवसि।

सी०—(*सलज्जम्*)जनमध्यगतैवं भणामि—मन्दभागिनी विदेह-
जणमज्झगदा एव्वं भणामि—मन्दभाइणी विदेह-
राजतनयाऽभिन्नचारित्रेति।
राअतनआ अहिरणचारित्तेत्ति।

वा०—समुद्घुष्यतां विकारानुरूपः प्रतिकार इति।

सी०—प्रभवति गुरुनियोगः। (*अञ्जलिं बध्वा दिशो विलोक्य*) शृण्वन्तु
पहवदि गुरुणिओओ। सुण्णंतु
भवन्तो लोकपाला गगनमध्यचारिणो देवता गन्धर्वसिद्धविद्या-
भवन्तो गोअपाला खअणमज्झचारिणो देवदाओ गन्धव्वसिद्धविज्झा

वाल्मीकि—(लौट कर) सीते! (यह तो) तपस्वियों को भी दण्ड का आदेश करता है, अतः अपनी पवित्रता (स्वयं) प्रमाणित करो।

सीता—मैं क्या कहूं?

वाल्मीक—(यही कि तुम) निष्पाप हो।

सीता—(लज्जा पूर्वक) सभा में खड़ी हो कर (मैं) कहती हूँ–'अभागिनी जनक राजपुत्री अखण्ड चारित्रा है।'

वाल्मीकि—रोग के अनुसार ही (उसकी) चिकित्सा की जानी चाहिए, अतः उच्च स्वर से (शपथ पूर्वक) घोषणा करो।

सीता—गुरूजी की आज्ञा मान्य है। (हाथ जोड़ कर तथा चारों दिशाओं में देखकर) पूज्य लोकपालको! गगन विहारी देवताओ! गांधर्वो, सिद्ध तथा विद्याधरो! अपनी शक्ति से समस्त

धरा ये च प्रभावप्रत्यक्षीकृतसर्वलोकरहस्या वाल्मीकिविश्वा-
धरा जो अ प्पवाहपच्चक्खीकिदसव्वलोअरहस्सा वम्मीइविस्स-
मित्रवसिष्ठप्रमुखा महर्षयः, एष सकललोकशुभाशुभकर्मसाक्षी
मित्तवसिट्ठाप्पमुहा महेसिणो, एसो सअललोअसुहासुहकम्मसक्खी
भगवान् राघवकुलपितामहः सहस्ररश्मिश्च सीताचारित्रशुद्धि-
भअवं राहबउलपिदामहो सहस्सरस्सि अ सीदा चारित्तसुद्धि-
मन्तरेणैवं सत्यापयति ।
अन्तरेण एव्वं सच्चावणदि ।

वा०—पश्यन्तु भवन्तः महाप्रभावाकृष्टमपि सीतामाहात्म्यसम्भूत-माश्चर्यम् ।

सर्वे—(*सविस्मयम्*) आश्चर्यमाश्चर्यम् एष हि देवीवचनस्य समनन्तरं दत्तावधान इव निःशब्दप्रशान्तो निवृत्तासर्वारम्भः कृत्स्न एव स्थावरजङ्गमो लोकः संप्रवृत्तः । तथा हि

जगत् का रहस्य जानने वाले वाल्मीकि, विश्वामित्र, वसिष्ठ आदि महर्षियो ! तथा हे सब प्राणियों के शुभ-अशुभ कर्मों को देखने वाले, रघुकुल के प्रवर्त्तक, भगवान् सूर्य ! आप सब सुनें—सीता शपथ ले कर कहती है कि उसका आचरण शुद्ध है ।

वाल्मीकि—आप, दैवीशक्ति की सहायता के बिना गौरवशालिनी सीता द्वारा सम्पादित, इस महान् आश्चर्य को देखिए ।

सब—(विस्मय पूर्वक) महान् आश्चर्य है, देवी (सीता) की उक्ति के तुरन्त पश्चात् सम्पूर्ण जड़-चेतन सृष्टि समस्त कार्य व्यापार छोड़ कर मानों (उधर ही) चित्त एकाग्र किए निश्शब्द तथा शान्त भाव से (स्तब्ध) खड़ी है । जैसे—

उदन्वन्तः शान्ताः स्तिमिततरकल्लोलवलया
निरारम्भो व्योम्नि प्रकृतिचपलोऽप्येष पवनः ।
प्रवृत्ता चैतस्मिन्निभृततरकर्णा गजघटा
जगत् कृत्स्नं जातं जनकतनयोक्तावहितम् ॥ २३ ॥

सी०—यदि मया सकललोकमहार्थप्रत्ययापूरितगुरुशासनमुन्मूलित-
जदि मए सअलल्लोअमहत्थपच्चआपूरिदगुसासणं उम्मुल्लिअ-

अन्वय—एतस्मिन् (समये) उतन्वन्तः स्तिमिततर कल्लोल-वलया शान्ताः, प्रकृति चपलः अपि एष पवनः व्योम्नि निरारम्भः, गजघटा निभृततरकर्णा: प्रवृत्ता । कृत्स्नं जगत् जनकतनयोक्तौ अवहितं जातम् ॥ २३ ॥

व्याकरण—स्तिमिततरकल्लोलवलया:—स्तिमिततरा: कल्लोलानां बलया: तेषां ते (बहुव्री०) । उदन्वन्त:—उदन्वत् प्र० ब० । शान्ता:—√शम् दिवा० + क्त, प्र० ब० । प्रकृतिचपल:—प्रकृत्या चपल: (सुप्सुपा) निरारम्भ: – निर्गत: आरम्भ यस्मात् स: (बहुव्री०) । निभृततरकर्ण—निभृततरा: कर्णा: यस्या: सा (बहुव्री०) । अवहितम्—अव + √धा + क्त, प्र० ए० । जातम् —√ज्ञन् + त्क प्र० ए० ॥ २३ ॥

इस (समय) लहरों के चक्रों के (उठने से) रुक जाने से समुद्र शान्त हो गए हैं, स्वभाव से चञ्चल [गतिशील] पवन भी आकाश में जहां का तहां ठहर गया है, दिग्गजों का समूह भी (सीता की शुद्धि का निर्णय सुनने केलिए) स्तब्धकर्ण हो गया है; समस्त जगत् सीता के वचन सुनने के लिए सावधान हो गया है ॥ २३ ॥

सीता—यदि मैंने समस्त लोक के कल्याण के निमित्त पिता की (वनवास रूप) आज्ञा का पालन करने वाले, सहस्रों महा-

महामहीधरसहस्रविरचितसेतुबन्धविभक्तमहासमुद्रं सुरासुर-
महामहीहरसहस्सविरइदसेदुबन्धविभत्तमहासमुद्द सुरासुर-
भुवनैकधनुर्धरं राघवकुलनन्दनं त्वामुज्झित्वा पतिव्रताविरुद्धेन
भुवणेक्कधणुद्धरं राहवकुलणंदणं तुमं उज्झिअ पइव्वदानिरुद्धेण
भावेनान्यः कोपि नयनाभ्यां निर्वर्णितः, वचनेनालापितः हृदयेन
भावेण अण्णो को विणओहिं णिव्वण्णिदो वअणेण आलविदो, हिअएण
वा चिन्तितः एतेनसत्यवचनेन सकललोकप्रत्यक्षदृश्यमान-
वा चिंतिदो सच्चवअणेण सअललोअवच्चक्खदीसमाण-
दिव्यरूपधारिणी भगवती महाप्रभावा चित्तशुद्धिं मे लोकस्य
दिव्वरूपधारिणी भअवदी महप्पहावा चित्तशुद्धिं मे लोअस्स
प्रकाशीकरोतु (*प्रकटीकरोतु*) ।
पआसीकरोतु (पअडीकरोदु) ।

(*सर्वे सम्भ्रमं नाटयन्ति*)

पर्वतों से उखाड़ी हुई विशाल चट्टानों से पुल बान्ध कर महा-समुद्र को (दो भागों में) विभक्त करने वाले, देव तथा असुर लोक के अद्वितीय धनुर्धर, रघुकुल भूषण [आह्लादक] तुझ (राम) से अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को पतिव्रताओं के आचरण के प्रतिकूल भाव से (इन) नेत्रों से (न) देखा हो, किसी से बात (न) की हो अथवा किसी का हृदय में चिन्तन (किया) हो, तो (मेरे) इस वचन की सत्यता प्रतिपादन करने के लिये सब लोगों को प्रत्यक्ष दीखने वाले दिव्य रूप को महाप्रभावशालिनी भगवती (पृथ्वी) समस्त जगत् के समक्ष प्रभावित करे कि मेरा मन पवित्र है।

(सभी असमञ्जस में पड़ जाते हैं)

वा०—किमेतदव्यक्तभीषणं लोकस्य रसान्तरमाविर्भूतम् ।

नादः पातालमूलात्प्रभवति तुमुलं पूरयन् व्योमरन्ध्रं
पातक्लिष्टा इवैते दिशि दिशि गिरयो मन्दमन्दाश्चरन्ति ।
बद्धानन्दाः समन्ताल्लवणजलधयो मथ्यमाना इवासन्
सीमामुल्लङ्घ्य वेगादुदनिधिसलिलैः स्वानि वेलावनानि ॥२४॥

अन्वय—व्योमरन्ध्रं तुमुलं पूरयन् नादः पातालमूलात् प्रभवति, पात क्लिष्टाः इव एते गिरयः दिशि दिशि मन्द मन्दाः चरन्ति, बद्धानन्दाः लवण जलधयः वेगात् सी माम् उल्लङ्घ्य उदधि सलिलैःस्वानि बेलावनानि मथ्यमानाः इव आसन् ॥२४ ॥

व्याकरण—पूरयन्—√पूर्+शतृ, प्र० ए० । क्लिष्टाः—√क्लिश्+क्त, प्र० ब० । बद्धानन्दाः—बद्धः आनन्दः यैः ते (बहुव्री०) । उल्लङ्घ्य—उद्+√लंघ भ्वा० आ०+ल्यप् । मथ्यमानाः—√मन्थ्(कर्मवाच्य)+शानच, प्र० ब० । आसन्—√अस्, लङ प्र० ब० । मन्थ् द्विकर्मक है । वेलावनोमि मुख्य कर्म है । अतः इस से द्वितीया हुई ॥ २४ ॥

वाल्मीकि—संसार में यह किस अस्पष्ट भयङ्कर तथा विलक्षण रस का आविर्भाव हो रहा है [अथवा कैसा अस्पष्ट, हो रहा है] । आकाशछिद्र को पूर्ण रूप से भरता हुआ एक भयङ्कर नाद [शब्द] पाताल के नीचे से आ रहा है गिरने की सम्भावना से खिन्न ये पर्वत चारों ओर कुछ २ हिल रहे हैं । (तथा) हर्षोन्मत्त लवण सागर (अत्यन्त) वेग से फैले हुए जलों से अपनी सीमा को उल्लांघकर तट के वनों का मन्थन पूर्वक उत्पादन करते हुए मालूम पड़ते हैं ॥ २४ ॥

सीते ! यह सब लक्षण तुम्हारे कारण प्रकट हो रहे हैं (अपना)

सीते ! त्वामुद्दिश्य प्रादुर्भूतानि सर्वलक्षणानि, पुनरप्यावर्ततां सत्यम् ।

(सीता *"जइ मए सअललोअ"* इत्यादि पठति)

(नेपथ्ये)

स्वस्ति गोभ्यः स्वस्ति ब्राह्मणेभ्यः, स्वस्ति राघवकुलाय ।

आकृष्टा मिथिलाधिराजतनया सत्येन पातालत-
स्तोयोन्मज्जनलीलया तनुमिमां हित्वात्मनः स्थावराम् ।
साक्षाल्लक्षितदिव्यमूर्तिमहिमा योगेन विश्वम्भरा
लोकं मध्यममम्बुराशिरशना देवी समारोहति ॥२५॥

अन्वय—अम्बुराशिरशना विश्वम्भरा देवी मिथिलाधिराज-तनया सत्येन पातालतः आकृष्टा स्थावराम् इमाम् तनुं हित्वा साक्षात्लक्षित-दिव्य मूर्ति- महिमा योगेन तोय-उन्मज्जन-लीलया मध्यमं लोकं समारोहति । २५ ।

व्याकरण—विश्वम्भरा—विश्वं बिभर्ति इति । संज्ञा में खच् प्रत्यय । अम्बुराशिरशना—अम्बुराशयः(समुद्राः) एव रशना यस्याः सा (बहुव्री०) । मिथिलाराजतनयांसत्येन—मिथिलाराजस्य तनयायाः सत्येन (ष० तत्पु०) । आकृष्टा —आ + √कृष् + क्त, प्र० ए० । हित्वा—√हि + क्त्वा ॥२५॥

शपथ वचन पुनः कहो

(सीता पूर्वोक्त वचन "यदि मैंने......"इत्यादि

पुनः बोलती है

(नेपथ्य में)

गौओं का कल्याण हो ब्राह्मणों का कल्याण हो रघुकुल का कल्याण हो । समुद्रमेखला भगवती पृथ्वी, जानकी की शपथ से

सर्वे०—(*आकर्ण्य विस्मयं नाटयन्ति*)

वा०—कथमदृष्टपूर्वोऽश्रुतपूर्वेयमाश्चर्यपरम्परावृत्तिः।

एतज्ज्योतिरुदेति नागभवनात्संवासयन्तश्चिरा-
न्माल्यैः शीतलपद्मगन्धसुभगाः पातालवाता दिशः।
एषाविर्भवति क्रमेण वसुधा राजन्! बधानाञ्जलिं
सौमित्रे! प्रणमादरात् कुशलवौ! पुष्पाञ्जलिः कीर्यताम् ॥२६॥

अन्वय—नागभुवनात् एतद् ज्योतिः उदेति, माल्यैः शीतल पद्मगन्ध सुभगाः पातालवाताः चिरात् दिशाः संवासयन्तः। एषा वसुधा क्रमेण आविर्भवति, राजन्! अञ्जलिं वधान। सौमित्रे! आदरात् प्रणाम, कुशलवौ पुष्पाञ्जलिः कीर्यताम् ॥२६॥

व्याकरण—माल्यै—माला एव माल्यम्, तानि माल्यानि, तै:। शीतलपद्मगन्धसुभगाः—शीतलः पद्मानां गन्धः येषां ते,ते च सुभगाः च। मूलपाठ में इकारान्त गन्धि शब्द है, सो स्पष्ट ही अशुद्ध है। इसी प्रकार कुछ पुस्तकों मे दधानाञ्जलिम् पाठ है। वह भी असंगत होने से त्याज्य है। भगवती विश्वम्भरा हाथ जोड़े आवे, इस में क्या युक्ति है। वस्तुत, बधानाञ्जलिम् पाठ ही युक्त है।

(प्रभावित हो) पाताल से खिंची जा कर अपने पार्थिव शरीर को त्याग कर योगशक्ति से साक्षात् दीख रहे दिव्य देह को धारण कर के जल में से निकलने की लीला करती हुई मध्यलोक (मर्त्य लोक) में आ रही है ॥२५॥

(सब लोक सुनकर आश्चर्य प्रकट करते हैं।

वाल्मीकि—इन अदृष्ट पूर्व तथा अश्रुतपूर्व [अनदेखे तथा अनसुने] चमत्कारों का क्या अर्थ है?

यह (सामने) पाताल लोक से ज्योति प्रकट हो रही है, मालाओं में गूँथे जाने योग्य शीतल कमलों की गन्ध से

(सर्वे यथोक्तं नाटयन्ति)

(ततः प्रविशति पातालोद्भेदं नाटयन्ती पुष्पवर्षाभिर्नारीभिः सह समानोदात्तोज्ज्वलवेषाभिश्च पृथ्वी)

सर्वे—(*कृताञ्जलयः*)

त्वं बिभर्षि जगत् कृत्स्नं शेषमूर्ध्ना त्वमुह्यसे ।
काम्यानभिमतान् देवास्त्वामेव दुदुहुः पुरा ॥ २७ ॥

अन्वय—त्वं कृत्स्नं जगत् बिभर्षि, शेष मूर्ध्ना उह्यसे, पुरा देवा अभिमतान् काम्यान् त्वां दुदुहुः ॥ २७ ॥

व्याकरण—बिभर्षि—√भृ (जुहो०) लट्, म० ए० । शेषमूर्ध्ना—शेषस्य मूर्ध्ना (ष० तत्पु०) । उह्यसे—√वह् (कर्मवाच्य), लट् प्र० ए० । दुदुहुः—√दुह्, (अदा०) लिट्, प्र० ब० । काम्याम् (अर्थात्) त्वाम् एव ।

सुवासित पाताल-पवन देर से दिशाओं को सुगन्धित कर रहे हैं। पृथ्वी देवी धीरे धीरे प्रकट हो रही हैं, हे राजन् हाथ जोड़ो। लक्ष्मण ! भक्ति भाव से प्रणाम करो, कुश तथा लव ! अञ्जलियां भर २ कर पुष्पवर्षा करो ॥२६॥

(सभी निर्देशानुसार करते हैं)

(पाताल फाड़ कर निकालने का अभिनय करती हुई पृथ्वी का उसके समान उत्तम तथा उज्ज्वल वेश धारण किए हुए पुष्प वर्षा करती हुई स्त्रियों के साथ प्रवेश)

सव—हे देवि ! तुम समस्त जगत् को धारण करती हो (और तुम्हें) शेषनाग ने सिर पर धारण किया हुआ, पुरातन काल में देवताओं ने अभीष्ट पदार्थ (गोरूपधरा) तुम्हीं से दोहे थे। ॥ २७ ॥

उन्नतौ विन्ध्यकैलासौ तव देवि ! पयोधरौ ।
जाह्नवी हारयष्टिस्ते समुद्रा रत्नमेखलाः ॥ २८ ॥
यज्ञाङ्गानां समुत्पत्त्यै वासवस्त्वां प्रवर्षति ।
रत्नानामोषधीनां च त्वां प्रसूतिं प्रचक्षते ॥ २९ ॥

नमो भगवत्यै विश्वम्भरायै । (*प्रणमन्ति*)

अन्वय—देवि ! उन्नतौ विन्ध्य कैलासौ तव पयोधरौ, जाह्नवी ते हारयष्टिः, समुद्राः रत्नमेखलाः सन्ति ॥ २८ ॥
वासवः यज्ञाङ्गानां समुत्पत्त्यै त्वां प्रवर्षति, (जनाः) त्वां रत्नानां ओषधीनां च प्रसूतिं प्रचक्षते ॥ २९ ॥

दुदुह—द्विकर्मक 'दुह्' धातु के प्रयोग में 'काम्यान्' तथा 'त्वाम् में कर्म होने से द्वितीया हुई। 'काम्य' शब्द का 'सामान्ये नपुंसकम्' इस भाष्येष्टि के अनुसार नपुंसक लिङ्ग में प्रयोग होना चाहिए था। उन्नतौ—उत्+√नम। +क्त, प्र० द्वि०। विन्ध्यकैलासौ—विन्ध्यश्च कैलासश्च तौ (द्वन्द्व०) ॥२८॥ पयोधरौ—पयसः धरः (अच् प्रत्यय) पयोधरः, तौ। जाह्नवी—जह्नोः अपत्यं स्त्री। बासवः—वसूनि सन्ति अस्य इति। अण् मत्वर्थे। ओषधि—यह नित्य स्त्रीलिङ्ग है। ओषः पाकः धीयते अस्याम् इति। यज्ञाङ्गानाम्—यज्ञस्य अङ्गानाम् (ष० तत्पु०)। प्रचक्षते—प्र+√चक्ष्, अदा० आ० लट्, प्र० ब० ।,२९॥

हे देवी ! अत्युच्च विन्ध्य तथा कैलाश पर्वत तुम्हारे (उन्नत) स्तन हैं, गङ्गा तुम्हारे (कण्ठ की) मुक्ता माला है (और) समुद्र रत्नजटित मेखला ॥ २८ ॥
इन्द्र यज्ञ के उपकरणों की उत्पत्ति के लिए तुम पर वर्षा करता है, (लोग) तुम्हें ही रत्नों तथा ओषधियों का उत्पत्ति स्थान कहते हैं ॥ २९ ॥
भगवती पृथ्वी को नमस्कार हो।

पृथ्वी—[*दिशो विलोक्य*] अहो ! अनतिक्रमणीयं शासनं प्रतिनिवृत्तानां पतिव्रतानाम् ।

व्याप्य द्यावापृथिव्यौ प्रतिहतगतयो यत्र भानोर्मयूखाः
गाम्भीर्याक्षीणवेगो नियमयति गतिं यच्च वोढुं गरुत्मान् ।
यत् स्थानं विप्रकर्षात् परिमिततपसां योगिनामप्यगम्यं
तस्मादाकृष्य साहं जनकतनयया दूरमारोपितास्मि॥ ३० ॥

अन्वय—द्यावा पृथिव्यौ व्याप्य भानोः मयूखा यत्र प्रतिहत गाय गम्भीर्य क्षीणवेगः गरुत्मान् यद् च वोढुं गतिं नियमयति, यद् स्थानं विप्रकर्षात् परिमित तपसां योगिनाम् अपि अगम्यम् तस्मात् सा अहं जनक तनयया आकृष्य बहु दूरम् आरोपिता अस्मि ।।३०।।

व्याकरण—द्यावापृथिव्यौ—द्यौः च पृथिवी च नौ (द्वन्द्व) । द्वन्द्व समास में 'दिव्' को 'द्यावा' आदेश होना है । प्रतिहतगतयः—प्रतिहता गतिः येषां ते (बहुव्री०) । गम्भीर्यक्षीणवेगः—गम्भीर्येण क्षीण वेगः यस्य सः (बहुव्री०), वोढुभ्—√बह् + तुमुन् । परिमित—परि + √मा + क्त । अगम्यम्—न + गम् + यत् । आरोपिता—आ + √रुह् + णिच् + क्त, टाप् प्र० ए० ।।३०।।

पृथ्वी—(चारों ओर देखकर) (विषयों से) निवृत्त (विमुख) पतिव्रताओं की आज्ञा का उलङ्घन नहीं किया जा सकता ।

पृथ्वी तथा आकाश को व्याप्त करने वाली सूर्य की किरणों की गति भी जहां कुण्ठित हो जाती है, गम्भीरता के कारण सर्वत्र तीव्र गति गरुड़ भी जहां जाते समय (अपनी) गति को नियन्त्रित [मन्द] कर लेता है तथा जहां परिमित (सीमित, अल्प) तपस्या वाले योगी भी नहीं पहुँच सकते, उस (लोक) से सीता मुझे खींच कर बहुत दूर इधर ले आई है ।।३०।।

तत्तामेवाभिभाषिष्ये । वत्से मैथिलि ! कर्त्तव्यतां केनार्थयसि ?

सीता—(*सविस्मयं विलोक्य*) भगवति ! का त्वम् ?

भअवदि ! का तुमं ?

पृथ्वी—किं न मां वेत्ति भवती ?

मामामनन्ति मुनयः प्रणवद्वितीयां
मत्तः प्रसूतिरखिलस्य चराचरस्य ।
मय्येव सिद्ध्यति तपोऽवनिदेवता त्वं
जानीहि जानकि ! तवान्तिकमागतां माम् ॥ ३१ ॥

अपि च वत्से ! ज्ञायतामिदमपि—

अभ्युद्धृतिश्च सहसाम मैवेयमनुष्ठिता ।
पुरा महावराहेण त्वत्प्रभावेन साम्प्रतम् ॥ ३२ ॥

अन्वय—मुनयः मां प्रणवद्वितीयाम् आमनन्ति, मत्तः अखिलस्य चराचरस्य प्रसूतिः, मयि एव तपः सिध्यति । जानकि ! तव अन्तिकम् आगतां मां त्वम् अवनिदेवतां जानीहि ॥ ३१ ॥

अन्वय—इयं मम अभ्युद्धृतिः पुरा महावराहेण सहसा अनुष्ठिता साम्प्रतं च त्वत् प्रभावेण ॥ ३२ ॥

तो उससे ही बात करती हूँ ।

बेटी सीता ! क्या चाहती हो ?

सीता—(विस्मय से देख कर) देवी! आप कौन हो ?

पृथ्वी—क्या तुम मुझे नहीं जानती ?

मुनिजन मुझे 'ओम्' की सहचरी शक्ति कहते हैं, मुझ से (ही) सकल चराचर जगत् की उत्पत्ति हुई है, मेरे ऊपर ही तप सिद्ध होता है । हे जनक दुलारी ! अपने पास आई हुई मुझ को तुम पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी जानो ॥ ३१ ॥

और बेटी ! यह भी जान लो कि—

सीता—(अंजलिं बध्वा) भगवति ! अनुकम्पामध्यास्य यथा त्वयैवं
भअबदि ! अणुकम्पं यज्झासिअ जह तुए एव्वं
चरित्राविकलत्वेनाभिलक्षिता तथा लोकस्य प्रकाश्यताम् ।
चरित्ताविकलत्तणेन अहिलक्खिदा तह लोकत्स पआसीअदु ।

पृथ्वी—तथास्तु । (*समन्तादवलोक्य*)

ऋषयो दानवाः सिद्धा यक्षगन्धर्वकिन्नराः ।
मानवा लोकपालाश्च भवन्त्ववहिताः क्षणम् ॥ ३३ ॥
रामं दाशरथिं मुक्त्वा न जातु पुरुषान्तरम् ।
मनसापि गता सीतेत्येवं विदितमस्तु वः ॥ ३४ ॥

अन्वय—ऋषयः, दानवाः, सिद्धाः, यक्ष-गन्धर्व-किन्नराः, मानवाः, लोकपालाः च क्षणं अवहिताः भवन्तु ॥ ३३ ॥

सीता दशरथिं रामं मुक्त्वा पुरुषान्तरं जातु मनसा अपि न गता इति एवं वः विदितमस्तु ॥ ३४ ॥

मुझे यह एकाएक ऊपर उठाने का कार्य प्राचीन काल में वराहावतार ने किया था और अब तुम्हारी चरित्र शक्ति ने ॥ ३२ ॥

सीता—(हाथ जोड़ कर) भगवती ! कृपा करके जैसे तुमने मुझे अखण्ड चरित्र सम्पन्न जाना है वैसे ही संसार के समक्ष घोषित कर दो।

पृथ्वी—बहुत अच्छा। (चारों ओर देख कर)

हे ऋषियो ! दानवो ! सिद्धो ! यक्षो ! गन्धर्वो ! किन्नरो ! मनुष्यो ! लोक पालको ! क्षण भर के लिए (इधर) ध्यान दो ॥ ३३ ॥

आप को ज्ञात हो कि सीता ने दशरथ के पुत्र राम को छोड़ अन्य पुरुष का कभी मन से भी ध्यान नहीं किया ॥ ३४ ॥

(आकाशात्पुष्पवृष्टिः दुन्दुभिध्वनयश्च)

सर्वे—(सहर्षम्) अहो विस्मयः । वसुन्धरासम्पादितशुद्धिमनुवर्तयन्ति बहुविधान्येतानि प्रादुर्भवन्ति—

आशामुखं त्रिदशदुन्दुभयो ध्वनन्ति
व्योम्नः पतन्ति कुसुमानि निरन्तराणि ।
आकस्मिकोऽप्युपरि धार्यत एव देव्याः
केनाप्यवध्यवितते गगने वितानः ॥ ३५ ॥

(नेपथ्ये)

जयति दशरथः स सत्यसन्धो
जयति तथैकधनुर्धरश्च रामः ।

अन्वय—आशा मुखे त्रिदशदुन्दुभयः ध्वनन्ति, व्योम्नः निरन्तराणि कुसुमानि पतन्ति, केन अपि देव्याः उपरि अवध्यवितते गगने आकस्मिकः वितानः धार्यते एव ॥ ३५ ॥

अन्वय—सः सत्य सन्धः दशरथः जयति तथा एकधनुर्धरः रामः च जयति । कलङ्कमुक्तं रघुकुलं जयति, चरित्र गुणोन्नता देवी च जयति ॥ ३६ ॥

(आकाश से पुष्प बर्षा होती है तथा दुन्दुभियां बजती हैं)

सब—(प्रसन्नता पूर्वक) महान् आश्चर्य है । यह अनेक (दिव्य लक्षण) पृथ्वी द्वारा स्थापित सीता की शुद्धि का अनुमोदन करने के लिए ही प्रकट हो रहे हैं—

चारों दिशाओं में दिव्य बाजे बज रहे हैं, आकाश से निरंतर पुष्प वर्षा हो रही है (तथा) किसी ने अकस्मात् देवी (सीता) के ऊपर अनन्त आकाश में वितान [चंदोवा] तान दिया है ॥३५॥

(नेपथ्य में)

जयति रघुकुलं कलङ्कमुक्तं
जयति चरित्रगुणोन्नता च देवी ॥ ३६ ॥

पृथ्वी—अपि शुद्धिमती वैदेही ?

सर्वे—(*कृताञ्जलयः*)

या स्वयं प्रकृतिनिर्मला सती
छाद्यतेऽन्यजनवारिदैः ।
जानकी भगवति ! त्वयाद्य सा
चन्द्रिकेव शरदा विशोधिता ॥ ३७ ॥ (*प्रणमन्ति*)

अपि नामाश्चर्यं मिथुनं भूयः संयुज्यते !

वा०—भो भोः कौसल्यामातः ! सम्भाव्यतां सीता परिशुद्धि परिग्रहेण ।

अन्वय—भगवति ! स्वयं प्रकृति निर्मला सती जानकी अन्य जनवाद वारिदैः छाद्यते, सा त्वया अद्य शरदा चन्द्रिका इव विशोधिता ॥ ३७ ॥

सत्यप्रतिज्ञ (महाराज) दशरथ की जय हो ! अद्वितीय धनुर्धारी (श्री) राम की जय हो निष्कलङ्क रघुकुल की जय हो ! तथा चारित्रिक गुण सम्पन्न देवी (सीता) की जय हो ॥ ३६ ॥

पृथ्वी—क्या सीता पवित्र है ?

सब—(हाथ जोड़ कर) हे देवी ! स्वभाव से ही पवित्र जो सीता लोकापवादरूप मेघों से ढकी थी उसे तूने शरद ऋतु की चन्द्रिका के समान अधिक निर्मल कर दिया है ॥ ३७ ॥

(प्रणाम करते हैं ।)

क्या हम आशा करें कि इन पति पत्नि का आश्चर्य-रूप पुनर्मिलन होगा ?

रामः—यदाज्ञापयन्ति गुरवः। वत्स लक्ष्मण! क्रियतां पादप्रणामः।

सीता—[*अञ्जलिं बध्वा सहर्षम्*] जयत्वार्यपुत्रः।
जेदु अंअउत्तो।

वा—अहो! उदात्तशालीनः प्रतिग्रहप्रकारः।

ल०—[*सहर्षं सलज्जं च*] आर्ये! वध्यः पातकी लक्ष्मणः प्रणमति।

सीता—कुतस्त्वयाऽऽत्मा निन्द्यते, एवमात्मगुरुनियोगवर्ती चिरं जीव।
कीस तुए अप्ला णिंदिअदि, एव्वं अप्पगुरुणिओअवट्टी चिरं जीव।

वा०—वत्स राम, अनेन गृहीता वैदेही। स्वयमाभाष्य पाणिना पाणौ सङ्गृह्य नियुज्यतां यज्ञाधिकारे।

रामः—(*लज्जां नाटयति*)

वाल्मीकि—हे राम! सीता की पवित्रता पर विश्वास करते हुए उसका सम्मान करो।

राम—जो गुरू की आज्ञा। प्रिय लक्ष्मण! चरण वन्दना करो।

सीता—(हाथ जोड़ कर, प्रसन्नता से) आर्य पुत्र की जय हो।

वाल्मीकि—कैसी प्रशस्त तथा नम्र वृत्ति से स्वीकार किया है।

लक्ष्मण—(प्रसन्नता तथा लज्जा पूर्वक) आर्ये! मृत्यु दंड का अधिकारी पापी लक्ष्मण प्रणाम करता है।

सीता—क्यों अपने आप को कोसते हो। इसी प्रकार अपने से बड़ों की आज्ञा का पालन करते हुए चिर तक जिओ [युग युग जिओ]।

वाल्मीकि—वत्स राम! तू ने अब सीता को अपना लिया है (अतः) स्वयं संबोधित कर के तथा (उस का) हाथ (अपने) हाथ में ले कर यज्ञ कर्म में नियुक्त करो।

(राम लज्जा का अभिनय करता है)

वा०—अलं लज्जया, यज्ञाङ्गं विना किं वाऽपूर्वं दाशरथेः सर्वसाक्षिकं पाणिग्रहणमिति ?

रामः—समाचारोऽयं गुरुनियोगश्च (*सीतां पाणौ गृहीत्वा*) भद्रे वैदेहि !

अपत्यमिष्टं च वदन्ति देवाः फलद्वयं दारपरिग्रहस्य ।
पूर्वं तयोस्त्वय्युदपादि हृद्यं वहस्व वासे भवने द्वितीयम् ॥ ३८ ॥

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति। उच्छ्वसितो मे आत्मा। प्रत्यागता मे प्राणाः।
जं अंअउत्तो आणवेदि। उच्लसिओ मे अप्पा। पच्छागदा मे पाणा।

अन्वय—देवाः दारपरिग्रहस्य फलद्वयं वदन्ति—अपत्यम् इष्टं च। तयोः पूर्वं हृद्यं (फलम्) त्वयि उदपादि, भवने वासे द्वितीयं वहस्व ॥३८॥

व्याकरण—दारपरिग्रहस्य—दाराणां परिग्रहः, तस्य। उदपादि—उद्+√पद्,लङ् कर्तरि, उत्पन्न हुआ।

वाल्मीकि—लज्जा मत करो। तूने सब के सामने आगे (सीता का) हाथ पकड़ा ही था (तो इस समय) यज्ञ विधि (का पालन करने के उद्देश्य से पाणि-ग्रहण करने)के अतिरिक्त इस में नई बात कौन सी है ?

राम—यह शिष्टाचार है तथा गुरु जी की आज्ञा भी है (सीता का हाथ पकड़ कर) कल्याणि सीते !

विद्वानों ने विवाह के दो फल कहे हैं—सन्तान तथा यज्ञ। इन में से पहला सुन्दर (लव कुश रूप में)तुम से (मुझे) मिल गया है, घर में रह कर (अब) दूसरा फल भी धारण करो ॥३८॥

पृथ्वी—*अविघ्नमस्तु यज्ञानां काले वर्षतु वासवः ।*
निरातङ्काः प्रजाः सन्तु सीतारामसमागमात् ॥ ३६ ॥
(अन्तर्धानं नाटयन्ती निष्क्रान्ता)

रामः – कथमन्तर्भूता वसुमती !

वा० — अनतिदीर्घसन्निधाना हि देवताः ।

रामः—भगवताहमप्यनुज्ञातो लक्ष्मणमभिषेक्तुमिच्छामि ।

ल०—(*अञ्जलिं बध्वा*) यदि प्रसन्नमार्येण, तेन तनयसङ्क्रामिणा युवराजशब्देन विभज्यतां चिरकालानुचरः सौमित्रिः ।

अन्वय—सीतारामसमागमात् यज्ञानां अविघ्नम् अस्तु, वासवः काले वर्षतु, प्रजाः निरातङ्काः सन्तु ॥३६॥

व्याकरण—सीतारामसमागमात्—सीता च रामः च तयोः समागमात् अविघ्नम्—विघ्नानाम् अभावः (अव्ययीभावः) । निरातङ्काः—निर्गतः आतङ्क. याभ्यः ताः (बहुव्रीहि) ।

सीता—जो आर्य पुत्र की आज्ञा । मैं पुनः जी उठी हूँ, मेरे प्राण लौट आए हैं ।

पृथ्वी—सीता तथा राम के मिलन से यज्ञों में कोई विघ्न न हो, समय पर वर्षा हो, प्रजा निरापद् एवं निर्भय हो ॥३६॥

(अन्तर्हित होने का अभिनय करती हुई चलती जाती है)

राम—क्या माता पृथ्वी अन्तर्हित हो गई !

वाल्मीकि—देवता दीर्घ काल तक नहीं ठहरते ।

राम—आप की अनुमति प्राप्त करके लक्ष्मण का अभिषेक करना चाहता हूँ ।

लक्ष्मण—यदि आप (मुझ पर) प्रसन्न हैं तो चिर—सेवक लक्ष्मण को पुत्र को प्राप्त होने वाली युवराज की उपाधि से पृथक् रखिये ।

वा०—इक्ष्वाकुकुलसदृशमभिहितम् ।

रामः—का गतिः, अनतिक्रान्तैव रामेण लक्ष्मणप्रार्थना । अवश्यं चेदिदं कर्म वत्सस्य, तदहमेव तत्प्रतिपत्स्ये । सौमित्रे ! आनीयतामभिषेकसम्भारः ।

ल०—आर्य, सम्पादितं सर्वमभिषेकसमयोचितं व्यग्रहस्ताभिर्देवताभिः । पश्य—

एतच्छत्रं वहति भगवान् वासवश्चन्द्रगौरं
देवी वालव्यजनयुगलं जह्नुकन्या शची च ।

अन्वय—एष भगवान् वासवः चन्द्र गौरं छत्रं वहति, देवी जह्नु कन्या शची च बालव्यजन युगलं वहतः । प्रजौघाः अम्भोगर्भान् कनककलशान् धारयति, तद्विधानां सम्पदः प्रणयसुलभाः । एतत् चित्रं न ॥४०॥

व्याकरण—अम्भोगर्भान्—अम्भांसि गर्भे येषां तान् । प्रजौघाः—प्रजानाम् ओघाः । प्रणयसुलभाः—प्रणयेन सुलभाः । तद्विधानाम्—सा विधा प्रकारः येषां तेषाम् (बहुव्री०) ।

लक्ष्मण—इक्ष्वाकु वंश (की परम्परा) के अनुकूल ही कहा है।

राम—क्या करूँ, राम लक्ष्मण की प्रार्थना अस्वीकार नहीं कर सकता । यदि यह कर्म अवश्य ही पुत्र के लिये करना है तो मैं स्वयम् इसे करूंगा । लक्ष्मण ! अभिषेक की सामग्री लाओ ।

लक्ष्मण—आर्य ! अभिषेक के लिए आवश्यक सामग्री देवता लोग (अपने) हाथों में ले आए हैं ।

देखो—

यह भगवान् इन्द्र (स्वयं कुश के ऊपर) चन्द्र के समान शुभ्र छत्र उठाए हुए हैं, भगवती गंगा तथा इन्द्राणी चंवर डुला रही

अम्भोगर्भान् कनककलशान् धारयन्ति प्रजौघा-
श्चित्रं नतत् प्रणयसुलभाः सम्पदस्तद्विधानां ॥ ४० ॥

रामः—आवयोस्तर्हि बेत्राधिकारः।

ल०—अनुगृहीताभियोगः संविभागः।

रामः—लक्ष्मण, वेत्रं धारय। (*वाल्मीकिमुद्दिश्य*) भगवन्नभिषिच्यतां नप्ता।

वा०—(*कलशमादायोपसर्पन्*) भो भोः साकेतनिवासिनः पौराः! नाना-दिगन्तवासिनो राजानः! विभीषणसुग्रीवहनुमत्प्रभृतयो महा-रथः! शृण्वन्तु भवन्तः—

व्याकरण—पुरन्दरस्य – पुर; – पुराणि दारयति इति। पूः सर्वयो र्दारिसहो:—इस सूत्र से खच् प्रत्यय हुआ। वाचंयमपुरन्दरौ इस सूत्र से 'मुम्' का निपातन हुआ। स्वर्गे—स्वः सुखविशेषः गम्यते प्राप्यते अत्र इति स्वर्गः।

हैं, प्रजा जन जल से भरे स्वर्ण कलश धारण किए हुए हैं। ऐसे महा पुरुषों को (सब) संपदाएँ स्नेह वश मिल जाती हैं, इस में कुछ भी आश्चर्य नहीं ॥४०॥

राम—तो हम दोनों द्वार पाल के कार्य पर डट जावें।

लक्ष्मण—कार्य की बांट में मुझे नियुक्त करते हुए आप ने बड़ी कृपा की है।

राम—लक्ष्मण! राज दण्ड उठाओ। (वाल्मीकि को सम्बोधित कर के) भगवन्! अपने पौत्र का अभिषेक कीजिए।

वाल्मीकि—(कलश उठा कर तथा समीप जा कर) हे साकेतवासी नागरिको! विभिन्न प्रदेशों के राजाओ! तथा विभीषण सुग्रीव, हनुमान आदि महारथियो! कृपया सुनो—

मैथिलीतनयः श्रेष्ठः कुशो नाम महारथः ।
अभिषिक्तोऽद्य साम्राज्ये मान्यतामस्य शासनम् ॥ ४१ ॥

पुरन्दरस्य यत् स्वर्गे पाताले यच्च वासुकेः ।
पृथिव्यां यच्च मान्धातुस्तदस्तु तव मङ्गलम् ॥ ४२ ॥

(नेपथ्ये कलकलः)

जय जय महाराज ।

सीता—प्रियं मे दिष्ट्या संवृत्तम् ।

प्रियं दिट्ठिआ संउत्तं ।

रामः—पूर्णास्ते लक्ष्मणस्य मनोरथाः ।

अन्वय—श्रेष्ठः महारथः कुशः नाम मैथिली तनयः अद्य साम्राज्ये अभिषिक्तः, अस्य शासनं मान्यताम् ॥४१॥

अन्वय—यद् मङ्गलं स्वर्गे पुरन्दरस्य, पाताले वासुकेः, पृथिव्यां मान्धातुः तत् तव अस्तु ॥४२॥

सीता के पुत्र, श्रेष्ठ महारथी कुश को आज सम्राट् के पद पर अभिषिक्त किया गया है, (अब से) इस की आज्ञा मानी जानी चाहिए ॥४१॥

जो मंगल स्वर्ग में इन्द्र को और पाताल में वासुकि (सर्पराज) को प्राप्त है तथा पृथ्वी लोक में (राजा) मान्धाता को प्राप्त हुआ वह (मंगल) तुझे भी मिले ॥४२॥

(नेपथ्य में कोलाहल होता है)

महाराज की जय हो ।

सीता—सौभाग्य से मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ ।

राम—लक्ष्मण ! तेरे मनोरथ भी पूरे हुए ।

सर्वे—(*हर्षं नाटयन्ति*)

रामः (*कुशमुद्दिश्य*) राजन् , त्वयाऽहमभ्यनुज्ञातो यौवराज्ये लव-
मभिषेक्तुमिच्छामि ।

कुशः—यदाज्ञापयति देवस्तातः ।

रामः—(*प्रकामं कलशमानीय*)

महाराजकुशस्यायं लवो नाम प्रियानुजः ।
मया तद्वचनादेव यौवराज्ये ऽभिषिच्यते ॥ ४३ ॥

सर्वे—(*यथोचितं हर्षं नाटयन्ति*)

वा०—किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ।

रामः—*त्वद्दर्शनेन विधिना परिशुद्धवृत्ति-*
र्जाता मयाध्वरसखी मम सैव पत्नि ।

अन्वय—महाराज कुशस्य लवः नाम अयं प्रियानुजः मया तद् वचनात् एव यौवराज्ये अभिषिच्यते ।४३।।

(सभी प्रसन्नता का अभिनय करते हैं)

राम—(कुश को सम्बोधित करके) राजन् ! आपकी आज्ञा से लव को
युवराज बनाना चाहता हूँ ।

कुश—जो पूज्य पिता जी की आज्ञा ।

राम—(प्रसन्नता पूर्वक कलश लाकर)

महाराज कुश के प्रिय भाई लव को मैं उन्हीं की आज्ञा से
युवराज पद पर अभिषिक्त करता हूँ ॥४३॥

(सभी प्रसन्नता का प्रदर्शन करते हैं)

वाल्मीकि—तुम्हारा और क्या हित करूँ ।

न्यस्तं च सूनुयुगलं भुवनाधिकारे
किं स्यादतः प्रियतमं गुरुणाभिधेयम् ॥ ४४ ॥

वा०—तथापीदमस्तु—

स्थाणुर्वेध स्त्रिधामा मकरवसतयः पावको मातरिश्वा
पातालं भूर्भुवस्स्वश्चतुरुदधिममाः साममन्त्राश्च वेदाः ।

अन्वय—विधिना त्वत्-दर्शनेन परिशुद्धवृत्तिः सा एव मम पत्नी महाध्वरसखी जाता। सूनुयुगलं भुवनाधिकारे न्यस्तम्, गुरुणा अभिधेयम् अतः प्रियतरं किं स्यात् ॥४४॥

अन्वय—स्थाणुः, वेधाः, त्रिधामा, मकरवसतयः, पावकः, मातरिश्वा, पातालं, भूर्भुवः स्वः, चतुरुदधिसमाः साममन्त्राः वेदाः च, सम्यक्-संसिद्धि-विद्या-परिणत-तपसः पीठिनः, तापसाः च अस्मिन् नरेन्द्रे श्रेयांसि विदधतु, गोकुलं च वर्धताम् ॥४५॥

व्याकरण—स्थाणुः—तिष्ठतीति। वेधाः—विदधाति इति। त्रिधामा —त्रीणि (भुवि अन्तरिक्षे दिवि च) धामानि (स्थानानि) यस्य सः (बहुव्री०) मकरवसतयः — मकराणां वसतयः (ष० तत्पु०) सम्यकसिद्धिविद्या परिणततपसः—सम्यक् संसिद्ध्या विद्यया च परिणतं तपः येषां ते (बहुव्री०)। विदधतु—वि+√धा, लोट्, प्र० बहु० वर्धताम्—√वृध्, लोट्, प्र० ए० ।४५।

राम—सौभाग्यवश आप के दर्शन से (सीता की) पवित्रता प्रमाणित हो गई (और) वही मेरी पत्नी महायज्ञ [अश्वमेध] में मेरी सहचरी होगई। दोनों पुत्रों को राज्यकार्य में नियुक्त कर दिया, इस से बढ़ कर और क्या प्रिय हो सकता है जो आप कहेंगे ॥४४॥

सम्यक्संसिद्धिविद्यापरिणततपसः पीठिनस्तापसाश्च
श्रेयांस्यस्मिन्नरेन्द्रे विदधतु सकलं वर्धतां गोकुलं च ॥ ४५ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

षष्ठोऽङ्कः ।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

कठिन शब्दार्थ—स्थाणु—शिव । वेधाः—ब्रह्मा । त्रिधामा—विष्णु । वामनावतार में भूलोक, अन्तरिक्षलोक, स्वर्लोक—इन तीन लोकों को तीन विक्रमों से व्याप्त करने से विष्णु का यह नाम हुआ । **मकरवसतयः**—समुद्र । **पावकः**—अग्नि । **मातरिश्वा (पु०)**—वायु । **पीठिनः**—कुल पति । **श्रेयांसि (नपुं०)**—कल्याण ॥४५॥

वाल्मीकि—शिव, ब्रह्मा, विष्णु, सागर, अग्नि, वाय, पाताल, भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, चार समुद्रों के समान साम सहित चारों वेद, सफल विद्या तथा सिद्ध तपस्या वाले कुलपति [आचार्य] तथा तपस्वी इस राजा का कल्याण करें और समस्त गो वंश की वृद्धि करें ॥४५॥

(सब निकल जाते हैं)

पष्ठ अङ्क समाप्त

परिशिष्ट भाग

परिशिष्ट १

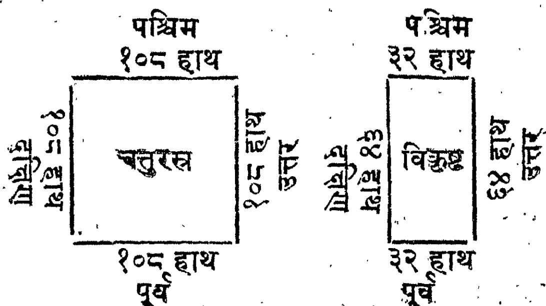
नाट्यशाला

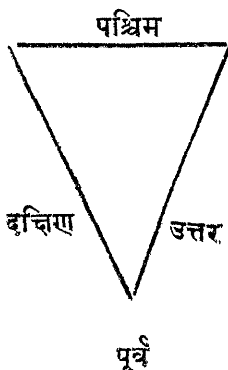
संस्कृत के सभी नाटक अभिनय योग्य होते हैं। उनकी प्रस्तावनाओं से स्पष्ट है कि वे खेले जाने के लिए ही लिखे गए थे तथा समुचित अवसरों पर उनका अभिनय हुआ भी।

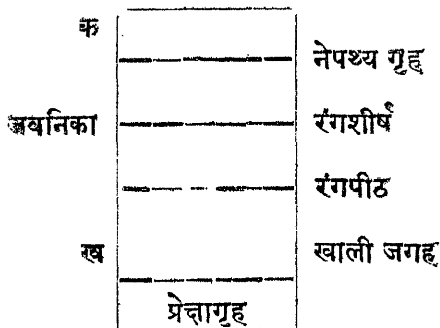
नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत मुनि ने नाट्य के अङ्गों का सविस्तार उल्लेख करने के साथ २ रंगमंच का भी पूर्ण विवेचन किया है।

नाट्यशास्त्र में तीन प्रकार की नाट्यशालाओं का उल्लेख है—चतुरस्र, विकृष्ट, त्रयस्य। चतुरस्र की लम्बाई चौड़ाई बराबर होती हैं, विकृष्ट की लम्बाई चौड़ाई से दुगनी और त्रयस्य त्रिकोण के आकार का होता है।

इनमें से विकृष्ट रंगमंच ही अधिक अच्छा माना जाता है, नीचे उसका बिस्तृत दिग्दर्शन कराया गया है :—







नेपथ्य गृह में नट अपनी वेशभूषा सजाते हैं तथा कोलाहल या जनरव यहीं से सुनाया जाता है।

रंगशीर्ष में पर्दों और खम्भों पर विभिन्न दृश्य तथा नाना प्रकार की चित्रकारी दिखाई जाती है। असली अभिनय रंगशीर्ष में ही दिखाया जाता है। रंगपीठ में ऐसे ऊपरी कृत्य होते थे जो दृश्य बदलने के समय किए जाते हैं। नृत्य आदि भी यहीं पर होते हैं तथा सूत्रधार भी अपनी सूचनाएँ यहीं से देता था।

रंगशीर्ष और रंगपीठ के बीच एक जवनिका (पर्दा) होती है।

उसके आगे कुछ स्थान खाली छोड़ दिया जाता है तथा कुछ अंतर पर दर्शकों के बैठने का स्थान होता है।

परिशिष्ट २
पारिभाषिक शब्द

नान्दी—

नाटक की निर्विघ्न समाप्ति के लिए संस्कृत नाटकों के प्रारम्भ में जो मंगलाचरण किया जाता है उसे नान्दी कहते हैं। इस में अपने इष्टदेव, सरस्वती अथवा ग्रन्थ के विषयानुरूप किसी देवता की स्तुति की जाती है तथा सामाजिकों के लिए आशीर्वाद के लिए प्रार्थना की जाती है।

कहीं कहीं नान्दी में नाटक की कथा वस्तु की ओर भी संकेत होता है और कहीं रचनाविशेष (मुद्रालङ्कार) द्वारा नाटक के मुख्य पात्रों का उल्लेख भी हो जाता है।

"कुन्दमाला" के प्रारंम्भ में आचार्य दिङ्नाग ने विघ्नविनाशक गणेश की स्तुति की है जो कि विषयानुकूल है।

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥
(विश्वनाथ)

आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोकः काव्यार्थसूचकः।
(मातृगुप्ताचार्य)

स्थापना—

'नान्दी' के पश्चात् जिस दृश्य में सूत्रधार, नटी अथवा विदूषक के परस्पर वार्तालाप द्वारा नाटक की कथावस्तु तथा उसके रचयिता आदि का परिचय मिलता है उसे स्थापना, आमुख अथवा प्रस्तावना कहते हैं।

यह नाटक का प्रवेश द्वार है।

'कुन्दमाला' में सूत्रधार ने नान्दी के पश्चात् शिव की स्तुति करके नाटक कर्ता दिङ्नाग का परिचय दिया है तथा अति सुन्दर नाटकीय विधि द्वारा सीता को वन में छोड़ने जाते हुए लक्ष्मण के परोक्ष वचनों द्वारा नाटक की कथावस्तु की ओर संकेत किया है।

प्रसाद्य रङ्गं विधिवत् कवेर्नाम च कीर्तयेत्।
प्रस्तावनां नटः कुर्यात् काव्यप्रख्यापनाश्रयाम् ॥
(भरतमुनि)

नेपथ्य—

नाट्यशाला के सब से पिछले भाग को नेपथ्य (Green Room) कहते हैं। इस में नट अपनी वेशभूषा सजाते हैं तथा यदि कोई कोलाहल अथवा रंगमंच पर उपस्थित हो कर न कही जा सकने वाली बात सुनानी होती है तो इसी में से सुनाई जाती है।

"कुन्दमाला" के प्रायः प्रत्येक अङ्क में उचित अवसरों पर नेपथ्य से जनरव अथवा नाटकीय सूचनायें सुनाई गई हैं। जैसे प्रथम अंक के प्रारम्भ में सूत्रधार के रंगमंच पर आते ही नेपथ्य से सीता के प्रति लक्ष्मण का 'इत इतो अवतरत्वार्या' वचन, द्वितीय अंक के अन्त में एक ऋषि द्वारा वाल्मीकि-आश्रम के तपस्वियों को राम द्वारा प्रारब्ध अश्वमेध की सूचना, छठे अंक में कुश के राज्याभिषेक के अवसर पर जयध्वनि आदि आदि।

कुशीलवकुटुम्बस्य स्थलं नेपथ्यमुच्यते।

प्रवेशक—प्रवेशक वह दृश्य है जिस में दो गौण पात्रों के कथोपकथन द्वारा रंगमंच पर न दिखाई जा सकने वाली पहले हो

चुकी अथवा बाद में होने वाली घटनाओं की सूचना दी जाती है। कथा का सूत्र जोड़ने के लिए यह दृश्य परमावश्यक होता है। प्रवेशक सदा दो अंकों के बीच में ही आता है तथा इसके पात्र निम्न श्रेणी के होने के कारण केवल प्राकृत बोलते हैं।

ऐसा ही एक दृश्य 'विष्कम्भक' नाम का होता है। यह नाटक के प्रारम्भ में भी आ सकता है तथा इस में मध्यम तथा निम्न श्रेणी के पात्र होते हैं।

'कुन्दमाला' में द्वितीय तथा तृतीय अङ्क के मध्यगत 'प्रवेशक' में वेदवती तथा प्रथमा (यज्ञवेदि) के संवाद द्वारा कुश-लव के जन्म की सूचना, तृतीय तथा चतुर्थ अंक के बीच आए 'प्रवेशक' में तापस द्वारा तपस्वियों के साथ कुश-लव की नैमिष वन में पहुंचने की सूचना तथा चतुर्थ और पंचम के बीच वेदवती और यज्ञवेदि के वार्तालाप द्वारा तिलोत्तमा का सीता का रूप धारण करके राम को धोखा देने की बात तथा विदूषक का उस मन्त्रणा को छिप कर सुनने का वर्णन एवं आश्रम-दीर्घिका पर स्थित स्त्रियों का वाल्मीकि के प्रभाव से पुरुषों को न दिखाई देने आदि रंगमंच पर अघटित घटनाओं का उल्लेख करके कथा के अनेक सूत्रों को परस्पर संबद्ध किया गया है।

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्यदर्शितः॥
प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्र प्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा॥

(विश्वनाथ)

भरतवाक्य——नाटक के अन्त में आशीर्वादात्मक शुभकामना सूचक श्लोक अथवा श्लोकों को भरतवाक्य कहते हैं। इस का

प्रयोग सर्व प्रथम नाट्यशास्त्र प्रणेता भरत मुनि ने किया था, अतः इस का नाम 'भरतवाक्य' पड़ गया। इस में राष्ट्र तथा जाति के कल्याण की भावना निहित होती है।

'कुन्दमाला' में वाल्मीकि भरतवाक्य में नवाभिषिक्त सम्राट् कुश, प्रजा तथा गोवंश की समृद्धि के लिए आशीर्वाद देते हैं।

सूत्रधार—नाटक का सूत्रपात करने वाले तथा नाटक के अभिनय का प्रबन्ध करने पाले पात्र को सूत्रधार कहते हैं। अंग्रेजी में इसे स्टेज मैनेजर कहा जाता है।

आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुनः।
रङ्गप्रसाधन—प्रौढः सूत्रधार इहोदितः॥

नटी—नाट्य प्रबन्ध में सूत्रधार की सहायिका एवं उसकी पत्नी को नटी कहते हैं।

विदूषक—अपने विलक्षणवेष, ऊटपटांग बातों आदि से सामाजिकों का मनोविनोद करने वाले पात्र को विदूषक कहते हैं। संस्कृत नाटकों में हास्य तत्त्व को इसी पात्र में केन्द्रस्थ कर दिया जाता था। यह प्रायः भोजन भट्ट ब्राह्मण होता था। वह राजा का विश्वास पात्र अभिन्नमित्र तथा सलाहकार भी होता था। विशेषतः प्रेम-कार्यों में। उसकी अन्तःपुर में भी गति होती थी। तथा रूठे राजा-रानी को मनाने का काम भी यही करता था। राजा इसे 'वयस्य' या 'मित्र' कह कर सम्बोधित करता था।

'कुन्दमाला' में कौशिक (आर्यहसित) नामक पात्र विदूषक का कार्य सम्पन्न करता है। इस नाटक में विदूषक हंसाने की अपेक्षा अधिकतर गम्भीर मन्त्रणा देता हुआ तथा विपत्ति के समय मित्र-

भाव से राजा की समुचित सहायता करता हुआ मिलता है।

कञ्चुकी—राज प्रसाद, विशेषकर अन्तःपुर का सम्यक् निरीक्षण तथा प्रबन्ध करने वाले व्यक्ति को कञ्चुकी कहते हैं। यह प्रायः वृद्ध ब्राह्मण होता है तथा राजपरिवार भी गुरु भाव से इसका सम्मान करता है। कञ्चुकी सदा सत्य बोलता है, ज्ञान-विज्ञान एवं लोकव्यवहार में कुशल होता है।

कञ्चुकी शब्द 'कचि' धातु से बना है जिसका अर्थ है बांधना या चमकना। कञ्चुकी कमर में चमकदार पेटी बांधे रहता है तथा क्योंकि यह कंचुक (चोगा) पहनता है। इस लिए इसे कंचुकी कहते हैं।

"अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥"

प्रकाशम—जो सब के सुनने के लिए हो उसे 'प्रकट' या 'प्रकाश' कहते हैं।

"सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्"
(विश्वनाथ)

आत्मगतम—जो दूसरे पात्रों के सुनने के लिए न हो उसे 'आत्मगतम्' या 'स्वगतम्' कहते हैं। यह एक प्रकार से मुखरित रूप से स्वयं विचार करना है।

"अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्"।
(विश्वनाथ)

अपवारित—जब एक पात्र इस ढंग से दूसरे पात्र से बात करता है कि केवल वह ही सुन सके तो वहां 'अपवारित' या

'अपवार्य' का प्रयोग होता है। ऐसे स्थानों पर जिस पात्र से बात छिपानी हो उस से मुँह फेर कर बात कही जाती है।

'तद्भवेदपवारितम्।
रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाशते ॥

(विश्वनाथ)

जनान्तिकम्——जनान्तिक में अंगूठा और कन अंगुली को छोड़ कर तीन अंगुलियों की पताका सी बनाकर उसकी ओट में कुछ पात्रों को छोड़ कर अन्य पात्रों से बात की जाती है।

"त्रिपताककरेणान्यानापवार्यान्तरा कथाम्।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात्तज्जनान्ते जनान्तिकम् ॥"

(विश्वनाथ)

———

परिशिष्ट ३

भौगोलिक, पौराणिक, ऐतिहासिक तथा अन्य शब्दों का संक्षिप्त विवरण।

भौगोलिक प्रदेश :—

अरारालपुर—अरारालपुर सुदूर दक्षिण भारत में स्थित एक नगर का नाम है। 'कुन्दमाला' के रचयिता दिङ्नाग का वासस्थान यही था।

कोसल—संयुक्त प्रांत के वर्तमान जिलों—रायपुर, बिलासपुर, सामलपुर, गोंड, भड़ौंच, फ़ैज़ाबाद तथा सरयू (घाघरा) नदी पर स्थित प्रदेश का प्राचीन नाम कोसल देश था। प्रागैतिहासिक काल में यहां इक्ष्वाकु वंश का राज्य था। कोसल देश की राजधानी अयोध्या थी।

चित्रकूट :—चित्रकूट बुंदेलखण्ड के उत्तर पूर्व की ओर प्रायः ५० मील पर स्थित वर्तमान छत्रकोट (चित्रकोट) जिला में यमुना नदी के दक्षिण भाग में विद्यमान एक पर्वत है।

श्री रामचन्द्र जी का वनवास-काल में पहला निवास स्थान चित्रकूट ही था। उन्होंने वनवास की अवधि का मुख्य भाग यहीं बिताया था। महर्षि वाल्मीकि की आश्रमभूमि भी चित्रकूट पर्वत थी।

दण्डक वन :—दण्डक वन नर्मदा तथा गोदावरी के मध्य स्थित एक गहन तथा निर्जन वन का नाम है। श्री रामचंद्र जी वनवास काल में लक्ष्मण-सीता समेत यहां दीर्घकाल तक रहे।

दक्षिणापथ :—दक्षिण भारत का प्राचीन नाम दक्षिणापथ है।

साकेत :—श्री रामचंद्र जी की जन्मभूमि अयोध्या का दूसरा नाम।

पर्वत :—

कैलाश—कैलाश पवत हिमालय के उपरितन भाग की एक शाखा तथा उच्च चोटी है। पुराणों में इसे शिव तथा कुबेर का निवास स्थान माना गया है।

विन्ध्य—मध्य भारत के बीचों बीच विद्यमान वर्तमान विन्ध्य पर्वत श्रेणी।

मलय—मलय पर्वत दक्षिण भारत में स्थित है। यहां चन्दन तथा सुपारी बहुलता से पाई जाती है। कविजन मलय पर्वत की शीतल तथा सुरभित समीर का वर्णन करते नहीं अघाते।

नदियां :—

गोमती—गोमती संयुक्त प्रांत की एक नदी का नाम है। 'कुन्दमाला' में, गंगा के सहस्रनामों में से एक होने के कारण, गंगा के अर्थ में यह नाम प्रयुक्त हुआ है। सीता प्रथम अंक में गङ्गा को प्रतिदिन अपने हाथों से गुथी हुई एक कुन्दमाला भेंट

करने की प्रतिज्ञा करती है तथा श्रीराम तृतीय अंक में गोमती के प्रवाह में उस कुंदमाला को बहते देखते हैं।

'गोमती गुह्यविद्या गौर्गो श्रीगगनगामिनी'

(गङ्गासहस्रनाम)

भागीरथी—गङ्गा का एक नाम। सगर के वंशज राजा भगीरथ के अनेक प्रयत्नों के फलस्वरूप निकलने के कारण गङ्गा को भागीरथी कहा जाता है।

जह्नुतनया—ऋषि जह्नु की पुत्री—जाह्नवी, गङ्गा। जह्नु एक ऋषि थे। जब राजा भगीरथ हिमालय से गंगा को नीचे ला रहे थे तो मार्ग में उनकी तपोभूमि को गंगा ने आप्लावित कर दिया था। जह्नु ने क्रोध-वश गंगा का सम्पूर्ण जल पी लिया अर्थात् रोक लिया था। तदनंतर देवताओं, ऋषियों तथा मुनियों के कहने पर उन्हों ने गंगाजल को कानों अथवा घुटने के रास्ते छोड़ दिया। तब से गंगा को जह्नु की पुत्री कहा जाने लग पड़ा।

पौराणिक लोक :—

नागभवन—पाताल देश को नागभवन अथवा नागलोक कहा जाता है। किंच यह नागजाति की वासभूमि है। श्री आप्टे के अनुसार नाग जाति यक्ष, गंधर्व, किन्नर आदि जातियों के समान एक देव जाति है। इनका मुख मनुष्य के समान तथा पूछ सांप की तरह होती है। पुराणों के अनुसार नागजाति का शक्ति-केंद्र ग्वालियर के निकटस्थ पद्मपवाय (प्राचीन नाम पद्मावती) नामक भू—प्रदेश पर राज्य रहा है।

भू—पृथ्वी मण्डल का नाम।

भुवर् —भूलोक तथा स्वर्लोक के बीच का लोक।

स्वर् —स्वर्गलोक।

देव जातियां :—

गंधर्व—देवताओं की एक गायक जाति। यही स्वर्ग की अप्सराओं को संगीत तथा नृत्य की शिक्षा देते हैं।

किन्नर—गाने बजाने वाली एक देव जाति। इनका मुख अश्व का तथा शेष शरीर मानव का वर्णित किया जाता है।

यक्ष—यक्ष भी एक देव जाति है। यह धनके देवता, कुबेर की निधि तथा उसके उपवनों के संरक्षक कहे जाते हैं।

दानव—राक्षसों की एक विशिष्ट पौराणिक जाति।

सिद्ध—अष्टसिद्धिप्राप्त एक मेध्य (अति पवित्र) देव जाति। ('अष्टसिद्धि' की व्याख्या के लिए देखिए -'सिद्धिक्षेत्र'।

विद्याधर—एक देव जाति। इस जाति का भी भू-प्रदेश पर राज्य रहा है।

राजा :—

दशानन—चारों वेदों तथा छः शास्त्रों का ज्ञाता होने के कारण तथा पांच ज्ञानेद्रियों व पांच कर्मेद्रियों का दास होने के कारण भी रावण को दशानन कहा जाता है।

इक्ष्वाकु—सूर्य का पौत्र, वैवस्वत मनु का पुत्र तथा सूर्य वंश का प्रथम राजा।

दिलीप—यह अंशुमत् का पुत्र तथा रघु का पिता था। सन्तान प्राप्ति के लिए राजा दिलीप की महर्षि वसिष्ठ की आज्ञा से नन्दिनी गौ की सेवा तथा उसे शेर के मुँह से बचाने के लिए आत्मबलिदान की उद्युक्तता की कथा सुप्रसिद्ध है।

रघु—महाराजा दिलीप तथा सुदक्षिणा का पुत्र। दिलीप ने वसिष्ठ मुनि की गौ, नन्दिनी की महान् सेवा के पश्चात् वरदान के रूप में पाया था। रघु सूर्यवंश का महान् राजा हुआ है। इस के गुणों की उत्कृष्टता तथा प्रभावशीलता के कारण वंश का नाम ही रघुवंश पड़ गया।

रघु शब्द/रघि अथवा/लघि धातु से बना है। जिसका अर्थ है 'जाना'। रघु के पिता ने पहले ही जान लिया था कि उसका पुत्र शस्त्र तथा शास्त्र विद्या पारङ्गत होगा और तदनुसार उसने उसका नाम रघु रखा।

दशरथ—रघुका पौत्र तथा अज और इन्दुमती का पुत्र एवं राम का पिता।

सगर—सगर सूर्य वंश का एक प्रमुख राजा हुआ है। सगर का शब्दार्थ है 'गरल (विष) सहित'। सगर के जन्म से पूर्व इसकी माता की सौतिन ने उसे विष दे दिया था तथा सगर का जन्म उस विष के समेत हुआ था, अतः इसे सगर कहा जाता है।

एक पुराण कथा के अनुसार सगर ने अनेक यज्ञ किए थे। जब वह सौवां यज्ञ कर रहा था तो इन्द्र ने अपना आसन छिन जाने के भय से उसके यज्ञ का घोड़ा चुरा कर पाताल में कपिल ऋषि के आश्रम में बन्धवा दिया था। सगर के साठ हज़ार पुत्र उस घोड़े को ढूंढते हुए कपिल ऋषि के आश्रम में पहुंचे। घोड़े को

वहां बन्धा देख कर उन्होंने कपिल को चोर ठहराया। इस पर क्रोधाभिभूत कपिल ने शाप दे कर सब को वहीं भस्म कर दिया। अन्ततः सगर के पौत्र अंशुमान् ने दक्षतापूर्वक घोड़े को प्राप्त किया एवं सगर के वंशज भगीरथ नामक राजा ने तपोबल से गंगा को हिमालय से लाकर उसके जलसिंचन से अपने पूर्वजों को जिला कर स्वर्ग में पहुंचाया।

जनक—सीता का पिता। जनक का वास्तविक नाम सीरध्वज था। जनक वंश का प्रवर्तक भी सूर्य माना जाता है।

कुशध्वज—सीरध्वज (जनक) का छोटा भाई। इसकी दो पुत्रियां थीं—श्रुतकीर्ति और मांडवी। इनका विवाह क्रमशः शत्रुघ्न तथा भरत से हुआ था।

मान्धाता—युवनाश्व का पुत्र तथा सूर्यवंश का विख्यात राजा। यह राजा सगर तथा हरिश्चन्द्र से पूर्व सत्ययुग में हुआ है।

ऋषि :—

प्राचेतस—वाल्मीकि मुनि का पैतृक नाम। वाल्मीकि प्रचेतस अथवा वरुणका बारहवां पुत्र था। वाल्मीकि आदि कवि था। यही प्रसिद्ध रामायण का कर्ता है। कहा जाता है कि वाल्मीकि युवावस्था में बड़ा उद्दण्ड तथा दुराचारी था।

वसिष्ठ—वसिष्ठ सूर्यवंश का कुल-परोहित था। यह कई वेद-मन्त्रों का ऋषि है तथा सप्तर्षियों में से एक है।

विश्वामित्र—विश्वामित्र राजा गाधि का पुत्र था। यह जन्म से क्षत्रिय था एक बार शिकार खेलते हुए यह वसिष्ठ मुनि के आश्रम में जा पहुंचा। वहां वसिष्ठ ने कामधेनु की सहायता से उस-

का तथा उसकी सेना का समुचित सेवा सत्कार किया। विश्वामित्र का कामधेनु पर मन ललचा गया परन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी उसे हर न सका। इस पर विश्वामित्र के मन में ब्रह्मतेज प्राप्त करने की इच्छा जागृत हुई और कठोर तपस्या से उसने ब्रह्मर्षि-पद को पा लिया।

देवताओं ने एक बार उसके तपोभंग के लिए मेनका नाम की अप्सरा को भेजा था। उससे विश्वामित्र ने शकुन्तला को जन्म दिया।

विश्वामित्र ने स्वर्ग में सदेह जाने के इच्छुक सूर्यवंश के एक राजा त्रिशंकु को स्वर्ग पहुंचाने का उपक्रम किया परन्तु इन्द्र ने उसे बीच में ही रोक लिया पर विश्वामित्र उसे नीचे न आने देता था। इस प्रकार वह बीच में ही लटकता रहा। कहते हैं कि वह अब तक उसी स्थिति में लटक रहा है और विश्वामित्र ने उस के लिए नवीन स्वर्ग लोक की रचना भी की थी।

राम तथा लक्ष्मण को धनुर्विद्या की शिक्षा भी विश्वामित्र ने दी थी और उनसे ताड़का को मरवाया था। विश्वामित्र को कौशिक भी कहा जाता है। यह उसका कुल का नाम है।

आत्रेय——अत्रि ऋषि का वंशज तथा ब्रह्मा का मनसिज पुत्र आत्रेय सती अनुसूया का पति तथा दत्तात्रेय एवं दुर्वासा का पिता था एक पौराणिक कथा के अनुसार चन्द्रमा की उत्पत्ति इसके नेत्र से हुई है तथा यह दस प्रजापतियों में से एक है। आत्रेय ऋषि के वंशज अतिप्रसिद्ध वैद्य तथा वैय्याकरण हुए हैं।

अरुन्धती——वसिष्ठ की पत्नी। यह आदर्श पतिव्रता मानी जाती है। विवाह संस्कार के समय इसका स्मरण तथा अशीर्वाद प्राप्त

करने के लिए आह्वान किया जाता है। अरुन्धति अपने पति वसिष्ठ के समान रघुकुल की स्त्रियों की मार्गदर्शिका थी। निर्वासन के पश्चात् यही सीता की संरक्षिका थी।

देवगणिका---स्वर्ग की अप्सरा। इन्हें देवदासी भी कहा जाता है। ये गन्धर्वों की स्त्रियां तथा इन्द्र की परिचारिकाएं हैं। कहा जाता है कि ये अपनी दिव्यशक्ति के प्रभाव से इच्छानुसार कोई भी रूप धारण कर सकती हैं।

उर्वशी---स्वर्ग की सर्व सुन्दरी अप्सरा। ऋग्वेद में बार २ इस का नाम आता है। पौराणिक कथाके अनुसार एक बार बदरिकाश्रम में नारायण नाम ऋषि की तपस्या से भयभीत हो कर इन्द्र ने उस के तप में विघ्न डालने के लिए कामदेव तथा वसन्त सहित स्वर्ग की सुन्दर अप्सराओं को भेजा। ऋषि ने झट उनका अभिप्राय जान लिया तथा तत्काल एक पुष्प अपनी जंघा पर रखा और क्षणभर में वह पुष्प उन सब दिव्य अप्सराओं से अधिक सुन्दर स्त्री के रूप में होगया। इस पर वह सब लज्जित हो कर लौट गई। वह अप्सरा उर्वशी थी। ऋषि ने उसे इन्द्र के पास भेज दिया।

इस सम्बन्ध में राजापुरुरवस तथा उर्वशी की प्रेमगाथा सुप्रसिद्ध है। तदर्थ देखिए—कालिदास का 'विक्रमोर्वशीयम्'।

तिलोत्तमा---स्वर्ग की एक अति सुन्दर अप्सरा।

शूर्पणखा---शूर्प (छाज) के समान नखों वाली, रावण की बहन।

देवता :—

उमा—हिमालय की कन्या, शिवकी पत्नी। इसने कठोर तथा दीर्घ तपस्या के पश्चात् शिव को पतिरूप में पाया था। कार्त्तिकेय तथा गणेश इसी (पार्वती) के पुत्र हैं।

शिव—त्रिदेवों में से एक। संहारकर्ता देवता।

लक्ष्मी—देवताओं तथा असुरों द्वारा किए गए समुद्र-मन्थन से प्राप्त चौदह रत्नों में से एक। यह धन की अधिष्ठात्री देवता है। लक्ष्मी को विष्णु की पत्नी कहा जाता है।

स्थाणु—स्थिर अविनश्वर तथा सदा एकरूप शिव।

त्रिधामा—तीनों भुवनों—पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग का स्वामी, विष्णु। विष्णु की नाभि में कमल होने के कारण इसे सरसिरुह भी कहते हैं।

हेरम्ब—पीछे अङ्क १ श्लोक १ के नीचे देखिए।

जम्भारि—पीछे अङ्क १ श्लोक १ के नीचे देखिए।

हुतवह—अग्नि। यज्ञ में दी गई आहुतियों को देवताओं तक पहुंचाने के कारण अग्नि को 'हुतवह' कहा जाता। इस दृष्टि से अग्नि देवताओं का दूत है।

शेष—पौराणिक गाथानुसार शेष एक महा सर्प है तथा उसके सहस्र फण हैं, इसी ने पृथ्वी को अपने सिर पर धारण किया हुआ है। चौमासे में भगवान् विष्णु शेषनाग की शय्या पर विश्राम करते हैं। शेषनाग को नागों का सम्राट् भी माना गया है।

वासुकि——सर्पों का राजा । शेष तथा वासुकि दो विभिन्न देवता हैं।

कन्दर्प——प्रेमका देवता, कामदेव । कामदेव के शस्त्र पुष्प का धनुष तथा पुष्प के बाण हैं। उसके कुल पांच बाण हैं जो कि अरबिंद, आम्र, नवमालिका नीलोत्पन्न तथा अशोक के बने कहे जाते हैं। रति काम की पत्नी है तथा बसन्त सखा है। मदन, अनंग, पंचसायक अनादि इसके अनेक नाम हैं।

भारती——वाणी की देवता, सरस्वती। सरस्वती को ब्रह्मा की पुत्री कहा जाता है।

मारुति——पवन-पुत्र हनुमान। इसकी माता का नाम अञ्जना था।

पुरन्दर——शत्रु के नगरों का विध्वंस करने वाला, इन्द्र देवता।

मधुसूदन——मधु नामक राक्षस का संहार करने बाला ——विष्णु।

महावाराह——भगवान् विष्णु के दस अवतारों में से तीसरा अवतार। हिरण्याक्ष नामक राक्षस जब पृथ्वी को पाताल में लेगया तो पृथ्वी का उद्धार करने के लिए विष्णु ने वाराह का रूप धारण किया था।

प्रजापति——त्रिदेवों-ब्रह्मा, विष्णु, महेश- में से एक। ब्रह्मा को सृष्टि का उत्पादक कहा जाता है। इसकी उत्पत्ति विष्णु के नाभि कमल से मानी जाती है। प्रजापति की सवारी हँस है। इसे वेधस् तथा पितामह भी कहते हैं। इसके पाँच मुख थे। परन्तु एक को शिव ने समाप्त कर दिया था।

पुराण पुरुष—आदि पुरुष विष्णु।

पशुपति—सभी जीवों का स्वामी, शिव।

नक्षत्र :—

तिष्य—एक नक्षत्र। कुल नक्षत्र सत्ताईस हैं, उनमें से आठवां तिष्य है। इसे पुष्य भी कहते हैं।

पुनर्वसु—अश्विनी नक्षत्र से सातवां नक्षत्र। संस्कृत में इसका सदा द्विवचन में प्रयोग होता है। परन्तु इस नाटक (कुन्दमाला) में पाणिनी के नियम के विरुद्ध एक वचन में प्रयोग हुआ है। वेद में यह एकवचन में प्रयुक्त है—

"छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम्"

विविध :—

ऐरावत—इन्द्र का हाथी

कलहंस—मधुर ध्वनि करने वाला हंस। पुराणों में हंस को ब्रह्मा की सवारी कहा गया है। हंस वर्षा ऋतु के प्रारंभ होते ही मानसरोवर को चले जाते हैं। कवि समयानुसार हंस दूध और पानी को अलग अलग करने में समर्थ होते हैं। इस कारण हंस को न्याय का देवता भी माना जाता है।

गुरुत्मान्—गरुड। यह कश्यप तथा विनता का पुत्र है। इस का छोटा भाई अरुण था। गरुड विष्णु की सवारी है। यह सांपों का महाशत्रु है।

चक्रवाकी—पीछे देखिए अङ्क तृतीय,

राजर्षि—पुरातन काल में राजा लोग वृद्धावस्था में राज्यभार अपने उत्तराधिकारी को सौंप कर आत्मिकोन्नति के लिए वनों में चले

जाते थे। तथा वहां विरक्त भाव से जीवन बिताते हुए तपः साधना करते थे। उन राजाओं को राजर्षि कहा जाता है।

ऋषि––प्रतिभा सम्पन्न कवि वा मुनि तथा मन्त्रद्रष्टा।

कुलपति––परिवार तथा आश्रम का मुखिया। स्मृतिकाल में दस हज़ार विद्यार्थियों को शिक्षा देने वाले तथा उनके निवास भोजनादि का प्रबंध करने वाले आचार्य को कुलपति कहते थे। उसकी पदवी वर्तमान विश्वविद्यालयों के चान्सलर के समकक्ष थी। अन्तर केवल इतना है कि उस काल की शिक्षाप्रणाली के अनुसार कुलपति छात्रों का सारा प्रबंध स्वयं करता था, आज कल शुल्क लिया जाता है।

मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादिपोषणात्।
अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः॥

लोकपाल––ब्रह्माण्ड के एक भाग को लोक कहते जाते हैं, वे हैं—स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल। चौदह लोकों का वर्णन भी मिलता है। उन में सात–भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः,सत्यं अथवा ब्रह्म–ऊर्ध्वलोक हैं, यह पृथ्वी से ऊपर क्रमशः एक के बाद दूसरे स्थान पर स्थित हैं, तथा सात—अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल-नीचे के लोक हैं। ये पृथ्वी से नीचे क्रमशः एक के बाद दूसरे स्थान पर अवस्थित हैं। ब्रह्मा द्वारा नियोजित, इन प्रदेशों अथवा लोकों के स्वामियों को लोक पाल कहा जाता है।

वस्तुतः लोकपाल दिशाओं के स्वामी हैं। अतएव इन्हें दिक्पाल भी कहा जाता है। दिशाएँ आठ हैं। तथा उनके स्वामी इस प्रकार हैं:- १. पूर्व-इन्द्र, २. आग्नेय्य-वह्नि, ३. दक्षिण-पितृपति, ४. नैर्ऋती-नैर्ऋत अथवा सोम, ५. पश्चिम- वरुण, ६. वायव्य-मरुत्, ७. उत्तर-कुबेर, ८. ईशान-सूर्य।

मंडल--ज़िला अथवा प्रदेश ।

विषय--राज्य (स्टेट) अथवा साम्राज्य । परन्तु 'कुन्दमाला' में 'विषय' शब्द का प्रयोग जनपद (बस्ती) के अर्थ में हुआ है क्योंकि सीता निर्वासित होने पर भी राम के राज्य के अन्तर्गत वाल्मीकि आश्रम में रहती थी।

अश्वमेध--प्राचीन समय में समस्त शत्रुओं को अपने अधीन करने की घोषणा के रूप में, चारों दिशाओं को जीतने वाले चक्रवर्ती सम्राट् अश्वमेध किया करते थे। इसको निष्पादित करने की विधि यूँ थी—दिग्विजिगीषु अथवा सम्राट् बनने का इच्छुक राजा कुछ सैनिकों के संरक्षण में एक घोड़ा प्रत्येक राज्य में घूमने के लिए छोड़ देता था। जिस राज्य का अधिपति उस घोड़े को अपनी स्वतन्त्र सत्ता की रक्षा के लिए पकड़ लेता था, घोड़े के संरक्षक सैनिक उस के साथ युद्ध करते थे तथा उसे विजित करके घोड़े को छुड़ाकर आगे बढ़ते थे। इस प्रकार सब राज्यों में से निर्बाध रूपेण विचार कर घोड़ा जब अपने स्वामी के राज्य में लौटता था। तो अश्वमेध सम्पन्न किया जाता था। इस अवसर पर प्रायः प्रत्येक राज्य के राजा अथवा उन के प्रतिनिधि यज्ञ करनें वाले राजा का एकाधिपत्य तथा अपनी अधीनता की स्वीकृति एवं राजभक्ति के प्रमाण स्वरूप उपस्थित होते थे!

इस परम्परा से पूव अश्वमेध सन्तान-प्राप्ति की कामनासे किया जाता था।

आहितयाग—प्रतिदिन अनवरत रूप से अग्निहोत्र करने वाले व्यक्ति को 'आहितयाग' कहते हैं। भारतीय संस्कृति के अनुसार विवाह संस्कार के समय जलाई गई यज्ञ की अग्नि को नूतन गृहस्थी

कभी बुझने न देते थे अर्थात् प्रतिदिन—सायं प्रातः—उसी अग्नि में यज्ञ किया करते थे।

निश्रेयस—इहलौकिक अथवा भौतिक उन्नति।

अभ्युदय—पारलौकिक उन्नति।

प्रणव—प्रणव का अर्थ है 'ओ३म्'। ओ३म् ब्रह्म का प्रतीक है, ईश्वर का नाम है।

पुंसवन—भारतीय संस्कृति के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के सोलह संस्कार किए जाते। पुंसवन प्रथम संस्कार है। यह गर्भ होने के पश्चात् तृतीय अथवा चतुर्थ मास में किसी शुभ दिन को पति-पत्नी मिल कर करते हैं।

दोहद—गर्भावस्था में स्त्री की जो इच्छा होती है उसे दोहद कहते हैं।

पाणिग्रहण—विवाह संस्कार। इस अवसर पर वरवधूका हाथ पकड़ता है अतः इसे पाणिग्रहण संस्कार पुकारा जाता है।

बडवानल—चट्टानों के टकराने अथवा अन्य पदार्थों के मिश्रण से समुद्र से उठने वाली अग्नि। अथवा समुद्र के नीचे दक्षिणी ध्रुव में 'बड़वा (घोड़ी) के मुख' नामक छिद्र से उठने वाली अग्नि को बडवानल कहते हैं।

योगचक्षु—योग-दृष्टि। योगशक्ति द्वारा प्राप्त दृष्टि से दूरस्थ एवं तीनों लोकों में होने वाली किसी भी परोक्ष घटना को प्रत्यक्षवत् देखा जा सकता है। आज के टैलीवीजन आदि यन्त्र उसके सामने हेच हैं।

सिद्धिक्षेत्र—सिद्धियां प्राप्त करने की तपोभूमि । सिद्धियां आठ हैं—

१. अणिमा—अणु जितना सूक्ष्मरूप धारण करने की शक्ति ।

२. लघिमा—इच्छानुसार अत्यधिक हल्कापन धारण करने की शक्ति ।

३. प्राप्ति—कोई भी पदार्थ पाने की शक्ति ।

४. प्राकाम्य—अदम्य संकल्प ।

५. महिमा—इच्छानुसार परिमाण बढ़ाने की शक्ति ।

६. ईशित्व—सर्वोपरि अधिकार ।

७. वशित्व—सब को वश में करने की शक्ति ।

८. कामावसायिता—इच्छा बल से काम-वासना का दमन करने की शक्ति ।

सौविदल्ल—कञ्चुकी । सुष्ठु विदन्तं विद्वांसमपि लान्ति वशवर्तिनं कुर्वन्ति इति सुविदल्लाः (स्त्रियः) तासां रक्षकः सौविदल्लः—अन्तःपुर का रक्षक तथा प्रबन्धक । कञ्चुकी का विस्तृत लक्षण परिशिष्ट (एक पृष्ठ ७) में देखिए ।

परिशिष्ट ४

प्राकृत से संस्कृत बनाने के नियम

संस्कृत और प्राकृत दो बहनें हैं तथा इन में पर्याप्त समानता है। जिस समय शिक्षित वर्ग की बोलचाल की भाषा तथा साहित्य की भाषा संस्कृत थी। उस समय साधारण लोगों की भाषा प्राकृत थी। बाद में प्राकृत भी साहित्यिक भाषा बन गई तथा उस में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हुई।

प्राकृत के महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, अवन्ती आदि अनेक रूप हैं। परन्तु नाटकीय प्राकृत के तीन रूप मिलते हैं—

महाराष्ट्री, शौरसेनी तथा मागधी।

संस्कृत नाटकों में मुख्य पुरुष पात्रों के अतिरिक्त सभी पात्रों से प्राकृत बुलवाई जाती हैं। उच्चवंश से सम्बन्धित तथा गुण सम्पन्ना स्त्रियां भी प्राकृत का ही प्रयोग करती हैं। इस से प्रतीत होता है कि उस समय स्त्रियां अशिक्षित होती थीं।

प्राकृत से संस्कृत बनाने का सुगम उपाय—प्राकृत अंशों का संस्कृत अंशों से मिलान करके बार बार पढ़ना ही है। जहां प्राकृत के वाक्य आएँ वहां उन्हें छोड़कर झट उनकी संस्कृत छाया की ओर दृष्टि नहीं दौड़ानी चाहिए। इस से अभ्यास में बाधा पड़ती है तथा अध्ययन त्रुटिपूर्ण रहता है। नीचे संस्कृत से प्राकृत बनाने के कुछ मुख्य नियम दिए गए हैं उनको जान लेने से प्राकृत से संस्कृत बनाने में भी विशेष सहायता मिल सकती है।

नियम

१. प्राकृत में निम्नलिखित वर्ण नहीं पाए जाते :—

ऋ, लृ, ऐ, औ, विसर्ग, न, श, ष

२. प्राकृत में ऋ के स्थान पर अ, इ, उ, रि मिलते हैं। जैसे—
गृहीत>गृहिद, दृष्टिन्>दिट्ठिं, ईदृशम्>ईदिसं, शृण्वन्तु>सुरगंतु, ईदृशेन>ईरिसेन।

(ख) यदि ऋ से पूर्व संयुक्त वर्ण हो तो उपर्युक्त परिवर्तनों के अतिरिक्त, उच्चारण की सुविधा के लिए अ का आगम होता है। जैसे—

स्मृत्वा>सुमरिअ।

३. (क) ऐ, औ को क्रमशः ए, ओ हो जाता है। जैसे—
नैमिष>ग्गेमिस, कौतूहल>कोदूहल।

(ख) ऐ, औ को क्रमशः अइ और अउ भी होता है। जैसे—
दैव>दइव, कौरव>कउरव।

४. न, श, ष क्रमशः ण, स, स में परिवर्तित हो जाते हैं। जैसे—
नदी>णई, निशा>णिसा, कुशलम<कुसलं, एषः>एसो।

५. (क) शब्द के आदि में य को ज हो जाता है। जैसे—
यदि>जदि (जइ), यशः>जसो।

(ख) शब्द के प्रथम या अन्त में य को अ हो जाता है। जैसे—
जय>जअ।

६. ख, घ, ध, थ, फ, भ को ह हो जाता है। जैसे—

मुखम्>मुहं। पथि>पहि। गाथा>गाहा। नामधेयम्>णामहेअं। राघव>राहव।

७. ट, ठ, को ड, ढ होते हैं जैसे—
नटः>नडो, पठ>पढ।

८. ड को ल हो जाता है। जैसे—
तडागः>तलाओ।

९. पदांत अथवा पद के बीच में प को ब हो जाता है। जैसे—
शापः>साबो।

१०. क, ग, च, ज, त, द, प, य, व यदि पद के मध्य या अन्त में हों तो इनका प्रायः लोप हो जाता है। जैसे—
सागरम्>साअरं, कपि>कइ आदि।

११. पद के हलन्त अक्षर का लोप हो जाता है। जैसे—
जगत्>जग, मनस्>मन।

१२. पद के अंत में म् को अनुस्वार हो जाता है। जैसे—
त्वम्>तुमं, भद्रम्>भद्दं।

१३. शब्द के अन्त में विसर्ग को उ हो जाता है तथा यह उ पूर्व-वर्ती अ से मिलकर ओ बन जाता है। जैसे—
पुरुषः>पुरिहो।

१४. (क) संयुक्त व्यञ्जनों के पूर्ववर्ती दीर्घस्वर ह्रस्व हो जाते हैं। जैसे—
पूर्ण<पुण्ण, आर्य>अज्ज, तीर्थ>तित्थ।

(ख) कहीं २ संयुक्त व्यञ्जनों में एकाक्षर लोप हो जाता है तथा दीर्घ स्वर बना रहता है। जैसे—
आर्जव>आजव।

१५. कहीं २ दीर्घ स्वर को ह्रस्व कर दिया जाता है तथा उस की हानिपूर्ति के लिए अनुवर्ती व्यञ्जन को द्वित्व कर दिया जाता है। जैसे—
बहूनाम्>बहुण्णम्, जानु>जण्णु।

१६. कई बार जहां किसी व्यञ्जन का लोप कर दिया जाता है

वहां उसकी हानिपूर्ति के लिए पूर्ववर्ती स्वर को अनुस्वारयुक्त कर दिया जाता है। जैसे—
शर्वरी>संवरी ।

१६ (क) अनुस्वार युक्त स्वरों के अनुस्वार का लोप करके प्रायः उस स्वर को दीर्घ कर दिया जाता है। जैसे—
सिंह>सीह ।

१७. संयुक्त अक्षरों के आदि में यदि क्, ग्, ड्, त्, द्, प्, ष् में से कोई हो तो उसका लोप हो जाता है और आगे के के वर्ण को द्वित्त्व हो जाता है। जैसे—भक्त>भत्त, अद्य> अज्ज, स्निग्ध>सिणिद्ध ।
भाषाविज्ञान में इस प्रक्रिया को समीकरण कहते हैं।

१८. संयुक्त अक्षरों में म् न् य् का लोप हो जाता है और उन से पूर्व वर्ण को द्वित्त्व। जैसे—
लग्न>लग्ग, युग्गम>जुग्ग, अधन्याम्>अधण्णां।

१९. संयुक्त अक्षर में ल्, व्, र् का लोप हो जाता है तथा उनके पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती वर्ण को द्वित्त्व हो जाता है। जैसे—
विक्लव>विक्कव, उज्ज्वल>उज्जल, सर्प>सप्पं।

२०. (क) त्य को च्च, थ्य को छ अथवा च्छः, ध्य को ज्झ, द्य को ज्ज हो जाता है। जैसे—
परित्यक्त>परिच्चत्त, नित्य>णिच्च, अध्ययन>अज्झअण।
(ख) ज्ञ को ग्ग हो जाता है। जैसे—
यज्ञ>जग्ग।
(ग) त्स को च्छ और प्स को च्च हो जाता है। जैसे—
वत्स>वच्छ, अप्सरसाम्>अच्चराणं।

२१. खलु, अपि, इव, अत्र, एव, पुनर्, प्रथमम् को क्रमशः खु, वित्र, एथ्थ, एव्व, उण, पुढमं आदेश होता है।

२२. प्राकृत में दो ही वचन होते हैं–एकवचन, बहुवचन। द्विवचन को बहुवचन हो जाता है।

२३. प्राकृत में केवल परस्मैपदी क्रियाएं होती हैं।

२४. प्राकृत में चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है।

परिशिष्ट ५

छन्द-परिचय

वर्ण-क्रम, मात्रा-संख्या, विराम, गति अथवा लय, तथा तुक आदि के नियमों से युक्त रचना को छन्द कहते हैं।

प्रत्येक छन्द के चार भाग होते हैं जिन्हें 'पाद' या 'चरण' कहते हैं। 'चरण' की रचना वर्णों अथवा मात्राओं की संख्या तथा उनके नियमित प्रयोग के अनुसार होती है।

छन्द में वर्णों या अक्षरों की गिनती स्वरों से होती है न कि व्यञ्जनों से। जैसे—'ओम्' में 'म्' व्यञ्जन नहीं गिना जायगा, इस में एक ही अक्षर है। हलन्त अथवा अर्ध-अक्षरों की गिनती नहीं होती।

वर्ण (अक्षर) के उच्चारण में जो समय लगता है उसे मात्रा कहते हैं। ह्रस्व स्वर एक मात्रा वाले हैं, जैसे—अ, इ, उ, ऋ, लृ। दीर्घ स्वर दो मात्रा वाले होते हैं, जैसे—आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ।

छन्दशास्त्र में ह्रस्व अक्षर 'लघु' कहलाते हैं। लघु का चिह्न [।] है, तथा दीर्घ अक्षर 'गुरु' कहलाते हैं। गुरु का चिह्न [ऽ] है। स्वर-बल के आधार पर कहीं गुरु को लघु तथा लघु को गुरु अक्षर माना जाता है।

गुरु-लघु के विशेष नियम :—

१. संयुक्त अक्षर से पूर्व ह्रस्व स्वर गुरु होगा, लघु नहीं।

कभी कभी इस नियम के अपवाद स्वरूप संयुक्ताक्षर से पहला वर्ण लघु ही माना जाता है। जब संयुक्ताक्षर से पूर्ववर्ती वर्ण को लम्बा करके (कुछ अधिक समय लगा कर) पढ़ा जाता हैं तब वह गुरु होता है, जब उच्चारण में कम समय लगे तब लघु होता है। जैसे 'तरङ्ग, चन्दन' आदि शब्दों में 'र' 'च' ह्रस्व स्वर हैं परंतु इनके आगे 'ङ्ग' 'न्द' संयुक्त अक्षर हैं अतः इन्हें गुरु (द्विमात्रिक वर्ण) माना जायगा। संयुक्ताक्षर—ङ्ग, न्द—स्वयं लघु ही गिने जायेंगे।

३. अनुस्वार तथा विसर्ग वाले लघु (ह्रस्व) स्वर भी गुरु (दीर्घ) मान लिए जाते हैं। जैसे—'विनयं, देवं, प्रातः, दुःख' में क्रमशः यं, वं, तः, दुः गुरु होंगे।

४. कहीं कहीं पाठविधि के कारण चरण का अंतिम वर्ण लघु होने पर भी छंद के नियम में गडबड़ी न होने देने के लिए गुरु मान लिया जाता है। उस के उच्चारण में गुरु अक्षर के समान लघु की अपेक्षा दुगना समय लगता है।

५. हलन्त वर्ण से पूर्ववर्ण गुरु माना जाता है। जैसे--
प्रदोषम्, राजन् में 'म्' तथा 'न्' गुरु हैं।

६. अनुनासिक अर्थात् चन्द्र बिन्दु (ँ) वाले अक्षर लघु ही रहते हैं। जैसे—सँशय, छँद, हँस में क्रमशः 'सँ, छँ, हँ' लघु हैं।

७. जहां संयुक्त अक्षर के पूर्व के ह्रस्व अक्षर पर दबाव नहीं पड़ता वहां वह लघु ही रहता है। (देखिए नियम २)

८. कभी कभी शब्द के प्रवाह के कारण दीर्घ अक्षर भी लघु की भाँति पढ़ा जाता है। उसके उच्चारण में एक मात्रा का समय लगता है

छन्दों के भेद--
छन्द दो प्रकार के हैं—१. वैदिक २. लौकिक
वेदमन्त्रों में प्रयुक्त छन्द वैदिक कहलाते हैं शेष लौकिक।

लौकिक छन्द के दो भेद हैं—एक वर्णिक या वर्णवृत्त, दूसरे मात्रिक या जाति।

वर्णिक या वर्णवृत्त--

जिस छन्द के पदों में वर्णों की संख्या तथा गुरु—लघु वर्णों के क्रम का नियमन रहता है उसे वर्णवृत्त कहते हैं।

मात्रिक---

जिस छन्द में मात्राओं की संख्या एवं क्रम का नियमन रहता है उसे मात्रिक छन्द कहते हैं।

वर्णिक तथा मात्रिक छन्दों के सम, अर्धसम तथा विषम नाम से तीन तीन भेद हैं। और समवृत्त में चारों पाद समान होते हैं, अर्धसममें पहला और तीसरा, दूसरा और चौथा पाद समान होतेहैं, विषम छन्द के चारों पाद एक दूसरे से भिन्न होते हैं।

गण—-

छन्द में कौन वर्ण लघु चाहिए और कौन कौन गुरु इस बात को सरलता से कहने व समझने के लिए गणों की कल्पना की गई है।

तीन अक्षरों का एक गण होता है। कुल गण आठ हैं। इस के नाम तथा रूप निम्न विधि में अंकित किए जाते हैं।

(१) मगण	S S S
(२) नगण	। । ।
(३) भगण	S । ।
(४) यगण	। S S
(५) जगण	। S ।
(६) रगण	S । S
(७) सगण	। । S
(८) तगण	S S ।

गणों को पहचानने तथा सुगम रीति से स्मरण करने के लिए निम्नलिखित सूत्र को ध्यान में रख लेना चाहिए—

"यमाताराजभान स लगा।"

इस सूत्र में पहले आठ अक्षर गणों के नाम के आदि अक्षर हैं। अन्तिम—ल और ग—'लघु' और 'गुरु' के सूचक हैं।

इस सूत्र से गणों का रूप अथवा लक्षण जानने के लिए गण के नाम के आदि अक्षर से लेकर तीन अक्षरों का एक समूह बना लेना चाहिए और उस पर गुरु (ऽ), लघु (।) की मात्राएँ लगा देने से उस वर्ण का रूप प्रकट हो जायगा। जैसे 'तगण' का रूप जानने के लिए इस के आदि अक्षर 'ता' से लेकर तीन वर्णों 'ताराज' पर मात्राएँ लगाने से तगण का रूप (ऽ ऽ ।) निकल आएगा।

गति—

प्रत्येक छंद में मात्राओं या वर्णों की संख्या या उन के क्रम के नियमित होने से ही काम नहीं चलता। उस में एक गति अथवा लय का होना आवश्यक है। उच्चारण के इस प्रवाह को ही गति कहते। लय रहित छंद दुष्ट छंद कहलाता है।

विराम (यति)—

छंद पढ़ते समय स्वरानुसार जहां विराम होता है वहां यति होती है। यति के कारण छंद में प्रवाह (लय) आता है तथा समझने में सुविधा रहती है।

'कुन्दमाला' में प्रयुक्त छन्द—

'कुन्दमाला' में कुल १५ छन्दों का प्रयोग किया गया है। प्रत्येक का लक्षण तथा श्लोक संख्यानुसार उनका पूर्व परिचय नीचे तालिका में दिया गया है।

	नाम	लक्षण	रूप	अङ्क	श्लोक संख्या
१—	अनुष्टुप अथवा श्ल‍ोक	श्लोके षष्ठं गुरुज्ञ यं सर्वत्र लघु पंचमम् द्विचतुः पादयोह्रस्वं, सप्तमं दीर्घ मन्ययोः ॥ अनुष्टुप छन्द के प्रत्येक पाद मे आठ अक्षर होते हें। पांचवां लघु तथा छोटा गुरु होता है। पहले तथा तीसरे पाद मे सप्तम अक्षर गुरु तथा दूसरे और चौथे में लघु होता है।	१—३ पाद= X × X × ISS X २—४ पाद= X X X X ISI X	प्रथम तृतीय चतुर्थ पंचम षष्ठ	१.८.१०.१३.१५. १६.२०.२८.३१.३२ २.१५.१६. २.१०.१२.१४.१७. २२. ९.१४. १-१४.१६-१९.२७- २९.३२-३४.३९. ४१-४३.
२—	आर्या	यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रा-स्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥	१—३—पाद=१२ मात्रा २—पाद =१८ मात्रा ४—पाद=१५ मात्रा	द्वितीय तृतीय चतुर्थ पंचम	१. ४. १३. १९. ६.
३—	इन्द्र वज्रा	स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः। प्रत्येक पाद में क्रमशः तगण, नगण, जगण, गुरु, गुरु। (११ अक्षर)	SSI SSI ISI SS	प्रथम	६. ११.

	नाम	लक्षण	रूप	अङ्क	श्लोक संख्या
४—	उपेन्द्र वज्रा	उपेन्द्र वज्रा जतजास्ततो गौ (११ अक्षर)	ISI SSI ISI SS	प्रथम प्रथम	४.९. १७.
५—	उपजाति	इन्द्र वज्रा तथा उपेन्द्र वज्रा के मिश्रण को उपजाति छन्द कहते है। (११ अक्षर)		तृतीय पंचम षष्ठ	९. २.५.८.१०.१११३ १५.३८.
६—	पुष्पिताग्रा	अयुजिनयुग रेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा। १ और ३ पाद में क्रमश; नगण, तगण, रगण, मगण तथा २ और ४ में नगण, जगण, जगण, रगण, गुरु।	१—३ पाद = III III SIS ISI (१२ अक्षर) २—४ पाद = III ISI ISI SIS S (१२ अक्षर)	तृतीय चतु पंचम षष्ठ	७. १.८.१८ २१. १.७.१२. २१.२२.३६.
७—	रथोद्धता	रान्नराविह रथोद्धता। प्रत्येक पाद में क्रमश; रगण, नगण, रगण, लघु, गुरु। (११ अक्षर)	SIS III SIS IS	षष्ठ	२०.३७.
८—	शालिनी	शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोब्धि लोकै। प्रत्यक पाद में क्रमश: मगण। तगण, तगण, गुरु, गुरु। चौथें अक्षर पर यति। (११ अक्षर)	SSS S, SI SSI SS	प्रथम	१९.२५.२६

		लक्षण	रूप	अंक	श्लोक संख्या
९	वंशस्थ	जतौ तु वंशस्थ मुदीरितं जरौ । प्रत्येक पाद में क्रमश: जगण, तगण, जगण, रगण । (१२ अक्षर)	ISI SSI ISI SIS	तृतीय	१०.
१०	वसन्त तिलका	उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग: । प्रत्येक पाद में क्रमश: तगण, भगण, जगण, जगण, गुरु, गरु । (१४ अक्षर)	SSI SII ISI ISI SS	प्रथम	३,५,१२,१४,१८, २१,२४,२७,२९
				द्वितीय	२.
				चतुर्थ	५,९,११,१३,२०,२३
				पंचम	३,४,१५,१६.
				षष्ठ	३१,३५,४४.
११	मालिनी	न न मयययुतेयं मालिनी भोगि लोकै: । प्रत्येक पाद में क्रमश: नगण, नगण, मगण, यगण, यगण । (१५ अक्षर)	III III SSS ISS ISS	तृतीय	१,५,१२.
				चतुर्थ	३,२४.
१२	शिखरिणी	रसै रुद्रैश्छिन्ना यमन सभला गा शिखरिणी । प्रत्येक पाद में क्रमश: यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु, गुरु । छठे अक्षर पर यति । (१७ अक्षर)	ISS SSS, III IIS SII IS	प्रथम	७.
				तृतीय	११.
				पंचम	१७.
				षष्ठ	२३.

	नाम	लक्षण	रूप	अंक	श्लोक संख्या
१३	मन्दाक्रान्ता	मन्दा क्रान्ता जलधि षडजैम्भौ नतौ ताद् गुरु चेत् । प्रत्येक पाद में क्रमश: मगण, भगण, नगण, तगण, तगण, गुरु, गुरु । चौथे तथा दसवें 'अक्षर' पर यति । (१७ अक्षर)	SSS SS, II III S,S: SSI SS	तृतीय षष्ठ	३.६. ४०
१४	शार्दूलवि-क्रीडित	सूर्याश्वैर्म-स-ज-स्त-ता: सगुरव: शार्दूल विक्रीडितम् । प्रत्येक पाद में क्रमश: मगण. सगण, जगण, सगण, तगण, तगण, गुरु बारहवें अक्षर पर । यति । (१९ अक्षर)	SSS IIS ISI IIS, SSI SSI S	प्रथम तृतीय चतुर्थ षष्ठ	२.३०. ८.१४.१७. ४.६.७. २५.२६.
१५	स्रग्धरा	स्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियति युता स्रग्धरा कीर्तितेयम् । प्रत्येक पाद में क्रमश: मगण, रगण, मगण, नगण, यगण, यगण, यगण, । सातवें तथा चौदहवें अक्षर पर यति । (२१ अक्षर)	SSS SIS S,II III IS,S ISS, ISS	चतुर्थ षष्ठ	२५. २४.३०.४५.

परिशिष्ट ६

व्याख्या के लिए प्रष्टव्य स्थल

प्रथम अङ्क

१. असंहार्य परिच्छदाः सुकृतिनः।

२. लोको निरङ्कुशः।

३. न हि तथान्यासक्ता पत्युः, स्त्रीजनस्य दुःखमुत्पादयति यथान्यासक्तः।

४. तिर्यग्गता वरम मी न परं मनुष्याः।

५. तत एव पूर्णचन्द्रान्मेऽशनि पातः।

द्वितीय अङ्क

१. अहो अविश्वसनीयता प्रकृति निष्ठुरभाषानां पुरुष हृदयाणाम्।

२. शोक परिहारेणापि शोकों वर्धते।

चतुर्थ अङ्क

१. प्रमादः सम्पदं हन्ति प्रश्रयं हन्ति विस्मयः।
व्यसनं हन्ति विनयं हन्ति शोकश्च धरीताम्॥

२. को जानाति दुर्विदग्धः प्रजापतिः कथं कथं क्रीडतीति।

३. सुलभ सादृश्यो लोक सन्निवेशः।

४. न खलु स जनः शोचनीयः, य एवं वल्लभेन शोच्यते।

५. दिवसावसानविनिवारितसमागमेव चक्रवाकी इहैव प्रवासे वर्तते।

तृतीय अङ्क

१. नास्ति दम्पत्योर्मम विरहसम उपदेश निपुण उपाध्यायः।

२. अभ्यन्तर स्थितमिवगूढगर्भमधिकतरं वाधते ।

३. तृषितेन मया मोहात् प्रसन्नसलिलाशया ।
अञ्जलिर्विहितः पातुं कान्तार मृगतृष्णिकाम् ॥

पञ्चम अङ्क

१. अन्यदम्पती विषय एव कारणानुरोधी प्रेमावेशः, सीतारामयोस्तु न तथा ।

२. निर्व्याजसिद्धो मम भावबन्धः ।

३. अन्तरिता अनुरागा भावा मम कर्कशस्य बाह्येन ।
तन्तव इव सुकुमाराः प्रच्छन्नः पद्मनालस्य ॥

४. भुवनमभितपन् सहस्ररश्मिर्जल गुरुभिर्व्यपनीयते हि मेघैः ।

५. ननु मूलस्वयोगमूल सकल पुरुषार्थ संवेदिनी ज्ञाननिष्पत्ति :

६. ज्योतिः सदाभ्यन्तरमाप्तपादै
रदीपितं नार्थगतं व्यनक्ति :
नालं तेजोऽप्यनलाभिधानं
स्वकर्मणो मारुतमन्तरेण ॥

७. न च गुरुनियोगा विचार मर्हन्ति ।

८. आपात मात्रेण कयापि युक्त्या
सम्बन्धिनः सन्नमयन्ति चेतः ।
विमृश्य किं दोषगुणानभिज्ञ
श्चन्द्रोदये श्च्योतति चन्द्रकान्तः ॥

९. स्थाने खलु परिक्रामन्ति तपोवनपराङ्मुखा गृहमेधिनः ।

१०. व्रजति हिमकरोऽपि बालभावात्पशु पतिमस्तककेतकच्छदत्वम् ।

११. प्रथमं परिणीतोऽयमर्थः ।

१२. अप्रतिहत वचन महत्त्वा हि ब्राह्मणजातिः ।

षष्ठ अङ्क

१. अप्रति क्रियमाणा मूर्च्छा निष्क्रान्तमापद्यते ।

२. अलं लज्जया, कलत्र विषया खल्वनुकम्पा ।

३. अनुकृति सरले पृथग्जनानां
निर्वासति चेतसि संश्रितोऽनुरागः ।
नरपतिहृदये न जात माल्य
न हि पुलिनेषु तिलस्य सम्भवोऽस्ति ॥

४. अनतिक्रमणीयं शासनं प्रतिनिवृत्तानां प्रतिव्रतानाम् ।

५. अनतिदीर्घ सन्निधाना हि देवताः ।

६. प्रणय सुलभाः सम्पदस्तद्विधानाम् ।

परिशिष्ट ६

आदर्श व्याख्या

परीक्षाओं में कुछ गद्य अथवा पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या पूछी जाती है। व्याख्या करते समय निम्नलिखित बातों की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए :—

(क) व्याख्येय भाग का भावार्थ अपने शब्दों में विस्तार पूर्वक स्पष्ट कर देना चाहिए। शब्दार्थ देना आवश्यक नहीं।

(ख) व्याख्येय उक्ति का पूर्वापर प्रसंग संक्षेप में देना आवश्यक है।

(ग) व्याख्या सदा Third Person (प्रथम पुरुष) में Indirect Speach में करनी होती है।

(घ) व्याख्येय अंश का प्रसंग तथा उसकी व्याख्या निम्न २ अनुच्छेदों (Paragraphs) में प्रस्तुत की जावे। यदि किसी शब्द पर टिप्पणी (Note) देना अभिप्रेत हो तो वह पृथक् अनुच्छेद में दी जाये।

नीचे, कुछ कठिन तथा प्रष्टव्य स्थलों की व्याख्या आदर्श रूप में दिखाई गई है। तदनुसार 'परिशिष्ट ६' में संगृहीत सब उक्तियों की व्याख्या करने का अभ्यास कर लेना चाहिए।

१—असंहार्य परिच्छदाः सुकृतिनः—

प्रस्तुत गद्यांश दिङ्नाग प्रणीत 'कुन्दमाला' के प्रथम अङ्क में से उद्धृत किया गया है। बनवास-काल में रावण के आश्रय में रहने के कारण सीता के चरित्र के विषय में प्रचलित लोकापवाद के

भय से राम ने सीता को निर्वासित करने का निश्चय कर लिया। सीता उस समय गर्भिणी अवस्था में थी तथा वह राम के उपर्युक्त निश्चय से पूर्व ही भगवती भागीरथी में स्नान करने तथा वन-विहार करने की इच्छा प्रकट कर चुकी थी। राम ने इस अवसर का लाभ उठा कर लक्ष्मण को सीता को वन में छोड़ आने के लिए आदेश दिया। लक्ष्मण अनिच्छापूर्वक ज्येष्ठ भ्राता की आज्ञा से सीता को वन में ले आया।

प्रस्तुत गद्यांश में लक्ष्मणने प्रकृति—शीतलवायु, सुखद छाया, कलनाद करते हुये पक्षियों—को सीता की सेवा में सखियों तथा दासियों के समान तत्पर देख कर कहता है कि पुण्यशाली व्यक्तियों को सुख-साधन की सामग्री सर्वदा एवं सर्वत्र प्राप्त हो जाती है। उन्हें कहीं पर किसी बात की कमी नहीं रहती।

उपरि लिखित उक्ति द्वारा लक्ष्मण ने सीता के अधिकार पूर्ण व्यक्तित्व की ओर संकेत किया है कि उसे राज-भवन के समान वन में भी प्रकृति की ओर से परिचारिका सखियां तथा मनो-विनोद के साधन प्राप्त हैं।

२—शोकोपरिहारेणापि शोको वर्धते :—

प्रस्तुत पङ्क्ति दिङ्नाग कृत 'कुन्दमाला' के द्वितीय अङ्क में से उद्धृत की गई है। लोकापवाद के कारण भयभीत राम की आज्ञा से लक्ष्मण जब सीता को वन में अकेली छोड़ गया तो महर्षि वाल्मीकि तथ्य ज्ञान के पश्चात् उसे अपने आश्रम में ले गए। वहां सीता को दो पुत्र उत्पन्न हुए। परित्याग दुःख से व्यथित सीता, आश्रम में सारा दिन चिंता में डूबी रहती थी। निर्वासन के कारण सीता की शोचनीय दशा से सहानुभूति रखने वाली आश्रम

वासिनी वेदवती एक दिन एकांत में बैठी अपनी सखी सीता को सान्त्वना देने गई तो उस ने उसे अत्यन्त दयनीय दशा में पाया।

वेदवती ने कुशलसमाचार पूछने के पश्चात् सीता को नि 'य-राम के लिए चिंतित एवं दुखित होने से रोका। परंतु सीता का तो राम के साथ दृढ़ अनुराग था वह कभी मन से भी ऐसा न सोच सकी थी कि राम का प्रेम उसके प्रति शिथिल हो सकता है।

सीता की दृढानुरागता से प्रभावित हो कर वेदवती ने उस के सन्ताप को शांत करने के विचार से उसका ध्यान उस के पुत्रों की ओर खींचा तथा पूछा कि क्या पुत्र प्राप्त कर लेने पर भी उस का प्रवास दुःख शांत नहीं हुआ। तो प्रस्तुत उक्ति द्वारा सीता ने कहा कि संताप के निवारण का उपाय होने पर भी उस का संताप बढ़ता ही जा रहा है, किंच अपने पुत्रों का मुखचन्द्र देखने पर उसे राम की याद अधिक सताती है तथा पुत्रों के बड़े हो जाने के साथ साथ उसके विषय में उसकी चिन्ता भी बढ़ती जा रही है।

३—दिवसावसान विनिवारित समागमेन चक्रवाकी इहैव प्रवासे वर्तते—

यह पंक्ति दिङ्नाग प्रणीत 'कुन्दमाला' के तृतीय अङ्क में से उद्धृत की गई है।

सीता को निर्वासित करने के पश्चात् अश्वमेध करने के लिए राम जब लक्ष्मण के साथ नैमिशारण्य में महर्षि वाल्मीकि आश्रम के समीप पहुंचे तो सीता भी वहीं उपस्थित थी। परन्तु वाल्मीकि के प्रभाव के कारण उस प्रदेश में पुरुष स्त्रियों को देख नहीं सकते थे। राम वहाँ पर लक्ष्मण के सम्मुख, सीता को विवाह-काल से लेकर दुःख ही दुःख देने के कारण अपने आप को कोस

रहा था और सीता अपने स्थान पर उस की बातों का उत्तर देती जाती थी।

जब राम ने उत्सुकता पूर्वक सीता का वास-स्थान जानने के लिए कहा तो सीता ने प्रत्युत्तर में, प्रस्तुत पंक्ति में कहा कि सूर्यास्त के पश्चात् अपने प्रियतम से मिलने को प्रतिषिद्ध चकवी के समान दुखित सीता उसके समीप ही प्रवासकाल बिता रही है।

कवि समयानुसार रात्रि को एक दूसरे के समीप होने पर भी चकवा-चकवी दैववश एक दूसरे से मिल नहीं सकते।

४—तृषितेन मयामोहात् प्रसन्नसलिलाशया ।
अञ्जलिर्विहतः पातुं कान्तार मृगतृष्णिकाम् ॥

यह श्लोक दिङ्नागप्रणीत 'कुन्दमाला' के चतुर्थ अङ्क में से उद्धृत किया गया है।

सीता निर्वासन के उपरांत अश्वमेध करने के लिए नैमिशारण्य में गए हुए राम ने जब वाल्मीकि के आश्रम के निकटस्थ बावड़ी में, वाल्मीकि के प्रभाव से साक्षात् रूप से अदृश्य सीता के प्रतिबिम्ब को देखा तथा उस के उत्तरीय को बलपूर्वक खींच कर पहचान भी लिया तो सीता के प्रत्यक्ष दर्शन न कर सकने के कारण वह अति व्याकुल हो उठा। इतने में उसका मित्र कौशिक (विदूषक) वहां आ पहुंचा और उस ने जब दिन को छिप कर सुना हुआ रहस्य राम से कहा कि एक अप्सरा (तिलोत्तमा) सीता का रूप धारण करके उसका उपहास करने आएगी तो राम को अपने ठगे जाने के कारण बड़ा पश्चाताप हुआ।

प्रस्तुत श्लोक में राम ने कहा है कि उस प्यासे ने तो निर्मल जल पीने की आशा से अर्थात् सीता के दर्शनों की अभिलाषा से

वन की मरीचिका को पीने के लिए अंजलि की अर्थात् सीता के धोखे में तिलोत्तमा को पकड़ना चाहा।

मृगमीचिका—सूर्य की किरणों की चमक के कारण भ्रमवश रेत आदि में जल की प्रतीति होना तथा प्यासे मृग आदि पशुओं का उसे पीने के लिए वहां भागना मृगमरीचिका अथवा मृग तृष्णा कहलाती है।

५–निर्व्याजसिद्धो मम भावबन्धः—

प्रस्तुत श्लोकांश दिङ्नागरचित 'कुन्दमाला' के पंचम अङ्क से उद्धृत किया गया है।

लोकापवाद के भय से अनिच्छापूर्वक सीता को निर्वासित कर देने के पश्चात् नैमिशारण्य में अश्वमेध करने के लिए गए हुए राम ने जब वाल्मीकि के आश्रम के समीप सीता के पदचिह्नों तथा बावड़ी में उसके प्रतिबिम्ब आदि को देखा तो उसे पाने के लिए अत्यधिक व्याकुल हो उठे। परन्तु वाल्मीकि के प्रभाव से वह सीता को प्रत्यक्ष न देख सकते थे। तथा च विदूषक ने जब उन्हें बताया कि वह सीता का प्रतिबिम्ब न था अपितु उन से उपहास करने के लिए एक अप्सरा सीता का रूप धारण करके आई थी तो वह और भी खीज उठे।

विदूषक के यह पूछने पर कि वह सीता को किस कारण इतना स्मरण कर रहे हैं—दोषों के कारण अथवा गुणों के। तो प्रस्तुत श्लोकांश में राम ने कहा कि सीता के प्रति उसका प्रेम दोष गुणानपेक्ष, विशुद्ध, सात्त्विक एवं अहैतुक था। इसी प्रकार का प्रेम सच्चा प्रेम होता है, कारण विशेष से किया गया प्रेम कृत्रिम कहलाता है।

६–भुवनमभितपन् सहस्ररश्मिर्जलगुरुभिर्व्यपनीते हि मेघैः—

यह श्लोकांश दिङ्नागप्रणीत 'कुन्दमाला' के पंचम अङ्क में से उद्धृत किया गया है।

अश्वमेध करने के लिए नैमिश-वन में आए हुए राम का हृदय, वाल्मीकि-आश्रम के समीप सीता के पदचिह्न, बावड़ी में उसके प्रतिबिम्ब तथा उत्तरीय आदि को देख कर सीता के प्रति प्रेम के आवेग से फूट पड़ा तथा निर्वासित सीता की दुर्दशा का चिंतन करने से अत्यधिक विकल हो उठा। राम की इस शोक विह्वल दशा को देख कर उस के मित्र कौशिक (विदूषक) को दया भी आई परन्तु साथ ही ताना मार कर उसने कह भी दिया कि वह (राम) हृदय से सीता को प्रेम नहीं करता। तो राम ने उसे कहा कि निस्सन्देह कर्त्तव्य पालन-वश वह ऊपर से कठोर है परन्तु भीतर से उसका हृदय कमल-नाल के समान अतिकोमल है तथा सीता के प्रति सौहार्दपूर्ण है। इस पर विदूषक ने उत्तर दिया कि उस (राम) जैसा गम्भीर तथा धैर्यवान् व्यक्ति ही इतने प्रबल सन्ताप को सह सकता है, वह तो सीता की विपद् दशा का स्मरण करने मात्र से मरा जा रहा है तो राम ने कहा कि यदि सीता के प्रति वह भी इतना सहानुभूतिपूर्ण था तो परित्याग करते समय उसे रोकता। तदनन्तर विदूषक ने स्पष्ट कह दिया कि परिजन तो प्रसन्न राजा को भी कुछ कहने का साहस नहीं कर सकते वह तो उस समय क्रोध से लाल था।

दुःखी राम ने फिर कहा कि उस जैसे व्यक्ति इस प्रकार क्रोध के अधीन होते नहीं कि वह मित्रों की बात की ओर ध्यान न दें, तथा च गुणवान् एवं हितैषी मन्त्रियों का यह कर्त्तव्य है कि

वह अन्यायपूर्ण आचरण करते हुए प्रचंड राजा को अत्याचार करने से रोकें।

प्रस्तुत श्लोकांश में अपने भाव की पुष्टि करते हुए राम ने कहा है कि जब प्रचंड सूर्य पृथ्वी को अधिक संतप्त करने लगता है तो जल से भरे हुए बादल उसे ढांप लेते हैं, रोकते हैं।

इस श्लोक में नाटककार ने सीता को निर्वासित करने के कारण राम के पश्चाताप पूर्ण हृदय के कोमल पक्ष का स्पष्ट चित्रण किया है।

७–न च गुरुनियोगा विचारमर्हन्ति—

यह वाक्य दिङ्नागकृत 'कुन्दमाला' के पञ्चम अङ्क में से उद्धृत किया गया है।

सीता–निर्वासन के पश्चात् राम ने जब नैमिशवन में अश्वमेध का आयोजन किया तो उसने देश-देशांतरों के सभी ऋषियों तथा मुनियों को निमन्त्रित किया था। प्रवासकाल में उत्पन्न राम के दोनों पुत्र—कुश तथा लव—भी वाल्मीकि के आदेश से रामायण सुनाने वहां गए। आश्रम से जाते समय सीता ने लव को कहा था कि दोनों भाई नम्रतापूर्वक महाराज राम को प्रणाम अवश्य करें। स्वाभिमानी कुश इस बात से सहमत न हुआ तथा वह कदाचित् किसी के सम्मुख झुकने को तैयार न था।

प्रस्तुत वाक्य में लव ने बड़े भाई कुश से कहा कि बड़ों की आज्ञा अविचारणीय होती है अतः उन्हें माता सीता के आदेशानुसार महाराज को प्रणाम करना ही चाहिए।

८–अनुकृतिसरले पृथग्जनानां इत्यादि—

यह श्लोक दिङ्नागकृत 'कुन्दमाला' के छठे अङ्क में से उद्धृत किया गया है।

वाल्मीकि के आदेश से अश्वमेध के अवसर पर कुश-लव द्वारा सीता निर्वासन तक रामायण की कथा सुनाने के पश्चात् महर्षि कण्व ने जब राम को बताया कि कुश तथा लव उसी की सन्तान हैं तो हर्षातिरेक से वह सब मूर्च्छित हो कर गिर पड़े। तत्पश्चात् बाल्मीकि ने उन्हें सचेत करके सीता के सम्मुख राम से कहा कि अग्नि देव द्वारा चरित्र की परीक्षा ले लेने पर केवल कुछ उच्छृंखल लोगों के कहने मात्र से सती सीता का परित्याग करके उस ने बहुत बुरा किया।

प्रस्तुत श्लोक में बाल्मीकि ने राम के आचरण की निन्दा करते हुए कहा है कि साधारण, भोले भाले लोगों के सरल एवं भावुक हृदय में ही प्रेम वास कर सकता है। राजाओं के हृदय में नहीं। उनका प्रेम कृत्रिम, अस्थायी तथा दिखलावे भर का हो जाता है। वह तो प्रदर्शन मात्र के लिए, आचरण के रूप में प्रेम को हृदयमें धारण करते हैं। अपने कथन की पुष्टि करते हुये वाल्मीकि कहते हैं कि रेत में तिल कैसे पैदा हो सकते हैं अर्थात् राजाओं के कठोर तथा असरल हृदय में प्रेम का स्थायी रूप से रहना सर्वथा असम्भव है।

वाल्मीकि इन कटु उक्तियों द्वारा राम के मर्म स्थानों पर आघात करके उसे सीता को पुनः ग्रहण करने के लिए तैयार कर रहे हैं।

कुन्दमाला में प्रयुक्त
सुभाषित तथा लोकोक्तियां

असंहार्य परिच्छदाः सुकृतिनः।

लोको निरंकुशः।

सर्वथाऽलं महिलात्वेन।

क्षते क्षारमिवाहितम्।

स्वरेणापि ....न दृश्यते ।
पूर्णे चन्द्रान्मे अशनिपातः ।
प्रासाद तलादधः अवतारः ।
अहो अविश्वसनीयता प्रकृति निष्ठुरभावानां पुरुष-हृदयाणाम् ।
असितपक्ष चन्द्रलेखेव दिने दिने परिहीयसे ।
आर्य पुत्रस्य हृदये प्रभवामि न पुनर्हस्ते ।
शोक परिहारेणापि शोको वर्धते ।
प्रमादः सम्पदं हन्ति प्रश्रयं हन्ति विस्मयः ।
व्यसनं हन्ति विनयं हन्ति शोकश्च धीरताम् ॥
सुलभ सादृश्यो लोक सन्निवेशः ।
प्रभवति सिद्धशासनम् ।
विपरीतः खलूपालम्भः ।
अभ्यन्तर स्थितमिव गूढगर्भ मधिकतरं बाधते ।
निर्व्याजसिद्धो मम भाव बन्धः ।
तुषार बिन्दुनिरवशेषं परिशुष्यामि ।
न खलु कश्चित् संविभागः ।
न च गुरुनियोगा विचारमर्हन्ति ।
आपातमात्रेण कयापि युक्तया संबन्धिनः संनमयन्ति चेतः ।
अपि नाम शरा मोघास्तपः सन्नद्ध मूर्तिषु ।
वासवस्यापि सुव्यक्तं कुण्ठां कुलिशकोटयः ॥
प्रथम परिणीतोऽयमर्थः ।
कलत्रविषया खल्वनुकम्पा ।
नहि पुलिनेषु तिलस्य सम्भवोऽस्ति ।
अनतिक्रमणीयं शासनं प्रतिनिवृत्तानां पतिव्रतानाम् ।
अनतिदीर्घ सन्निधाना हि देवताः ।

अकारादि क्रम से श्लोक सूची

आवश्यक प्रश्न

१. 'कुन्दमाला' का कर्ता कौन है ? युक्तियुक्त उत्तर दीजिए।

२. दिङ्नाग के जीवन के विषय में आप क्या जानते है ? उसके स्थिति काल का भी निर्देश कीजिए।

३. क्या नाटक का शीर्षक 'कुन्दमाला' उपयुक्त है ? अपने मत की पुष्टि के लिए युक्तियां दीजिए।

४. 'कुन्दमाला' की कथावस्तु का आधार क्या है ? उसमें नाटककार ने क्या परिवर्तन वा परिवर्धन किए हैं ?

५. दिङ्नाग की नाटकीय शैली की सोदाहरण विवेचला कीजिए।

३. 'कुन्दमाला' में छाया दृश्य का नाटकीय महत्त्व क्या है ?

७. रंग मंच की दृष्टि से 'कुन्दमाला' कहां तक सफल नाटक है ?

८. दिङ्नाग तथा भवभूति की उनकी कृतियों के आधार पर विवेचनात्मक तुलना कीजिए। इनमें से कौनसा नाटककार श्रेष्ठ है ?

९. 'कथोपकथन नाटक का प्राण है' इस उक्ति की विवेचना करते हुए स्पष्ट कीजिए कि 'कुन्दमाला' के कथोपकथन कहां तक नाटकोपयोगी हैं ?

१०. 'कुन्दमाला' का कौन सा अंक आपको अच्छा लगा है? कारण सहित उत्तर लिखिए।

११. भाव पक्ष तथा कला पक्ष की दृष्टि से 'कुन्दमाला' की तात्त्विक आलोचना कीजिए।

१२. 'कुन्दमाला' के अनुसार राम, लक्ष्मण, सीता, वाल्मीकि तथा कुश-लव का चरित्र चित्रण कीजिए।

१३. 'कुन्दमाला' में अंकित तात्कालीन धार्मिक तथा सामाजिक अवस्था का परिचय दीजिए।

नोट—इन प्रश्नों के उत्तर के लिए पीछे देखिए—'भूमिका'।



SE Assignm